भिक्षु वाङ्मय-१

आचार्य भिक्षु तत्त्व साहित्य

१

नव पदार्थ, अनुकम्पा री चौपइं

प्रवाचक
गणाधिपति तुलसी
आचार्य महाप्रज्ञ

प्रधान संपादक
आचार्य महाश्रमण

आचार्य भिक्षु एक कुशाग्र चर्चावादी भी थे। उनका अनेक उद्भट लोगों से चर्चा करने का काम पड़ा। यह सौभाग्य की बात है कि उन चर्चा-वार्ताओं को संकलित कर एक दूरदर्शिता का परिचय दिया गया। पर उन्होंने तत्त्वज्ञान को पद्यों में बांधने का जो प्रयत्न किया, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गद्य साहित्य पढ़ने में तो सरल रहता है पर उसे अविकल रूप से स्मृति में संजो पाना अत्यंत कठिन होता है। आचार्य भिक्षु ने पद्य साहित्य की रचना लोक गीतों की शैली में की, इसलिए आज भी अनेक लोग अपने अधरों पर उन गीतों को गुनगुनाते रहते हैं। गीत याद करने में भी सुगम होते हैं। इसलिए अपढ़ लोगों के लिए भी वे परम्परित बन जाते हैं।

आचार्य भिक्षु का कवित्व अत्यन्त प्राञ्जल एवं रससिद्ध था। उन्होंने दार्शनिक साहित्य के साथ-साथ आख्यान साहित्य लिख कर भी अपनी लेखनी की कुशलता का परिचय दिया है। उनके आख्यानों में तत्कालीन लोक संस्कृति के सुघड़ बिम्ब उभरे हैं। मानव मन की अतल गहराइयों को छूने में वे सिद्धहस्त कवि थे। उनके कवित्व पर विस्तार से चर्चा करने के लिए एक पूरे ग्रंथ की आवश्यकता है।

भिक्षु वाङ्मय १

आचार्य भिक्षु तत्त्व साहित्य

१

नव पदार्थ, अनुकम्पा री चौपई

प्रवाचक

गणाधिपति तुलसी

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रधान सम्पादक

आचार्य महाश्रमण

सम्पादन सहयोगी

मुनि सुखलाल

मुनि कीर्ति कुमार

अनुवादक

श्रीचंद रामपुरिया

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२२०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© **जैन विश्व भारती, लाडनूं**

आर्थिक सौजन्य : सुरेन्द्र कुमार पुष्पा देवी कोठारी एजूकेशन एण्ड चेरीटेबल ट्रस्ट एवं
मनीष, भुपेश कोठारी
सुपर ग्रुप ऑफ कम्नीज
● केलवा ● सांताक्रुज ● मुंबई

प्रथम संस्करण : २०११

मूल्य : २००/- (दो सौ रुपया मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा.लि., उदयपुर, फोन : ०२९४-२४१८४८२

सम्पादकीय

सत्य एक अगम विस्तार है। उसे अविकल रूप से समझ पाना सर्वज्ञता का ही विषय है। सर्वज्ञता एक अतीन्द्रिय अनुभूति है। उसे बौद्धिक या तार्किक दृष्टि से समझ पाना असंभव है। जब हम भगवान महावीर की वाणी का अनुशीलन करते हैं तो लगता है आगमों का ज्ञान एक अपार पारावार है। मैंने स्वयं भी आगमों की अनुप्रेक्षा की है तथा गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ की सन्निधि में आगम-सम्पादन के कार्य में भी मेरी भागीदारी रही है। इस सिलसिले में मैं आगमों की अपार ज्ञानराशि से अत्यन्त प्रभावित हुआ। मुझे ज्ञान के आनंत्य की एक झलक मिली। मैं केवल भगवती सूत्र की ओर दृष्टिपात करता हूं तो मुझे लगता है वह ज्ञान का विशाल खजाना है। उसमें अणु-परमाणु से लेकर समूचे लोक पर विस्तार से विचार किया गया है।

भगवान महावीर की वाणी प्राकृत भाषा में निबद्ध है। आचार्यश्री तुलसी ने उसे हिन्दी में अनूदित करने का बीड़ा उठाकर एक भागीरथ प्रयत्न किया है। आज प्राकृत को समझने वाले लोगों की संख्या अत्यंत अल्प है। सचमुच उसके हार्द को समझ पाना तो आचार्य महाप्रज्ञ जैसे कुछ विरले ही लोगों के लिए संभव है।

तेरापंथ परम्परा में पलने के कारण मैंने आचार्य भिक्षु के साहित्य को भी पढ़ा है। मैं उनकी प्रतिभा से भी अत्यन्त अभिभूत हूं। उन्होंने आगमों का मन्थन कर उसे अत्यंत कुशलता से राजस्थानी भाषा में गूंथ दिया। निश्चय ही महावीर को समझने में उन्होंने जो अर्हता प्राप्त की वैसी बहुत कम लोग कर पाते हैं। उनकी वाणी सहज ज्ञानी की वाणी है। वह स्वयं स्फुरित है। उसमें निर्मल रश्मियों एवं अनुभवों का प्रकाश है। उनकी दृष्टि स्पष्ट और सही सूझ-बूझ वाली है। उसमें जैन दर्शन के मौलिक स्वरूप पर दिव्य प्रकाश है तथा क्रांत वाणी की तीव्र भेदकता और उद्‌बोध है। स्व-समय और पर-समय का सूक्ष्म विवेक उनकी लेखनी के द्वारा जैसा प्रकट हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मिथ्या मान्यताओं

पर उन्होंने करारा प्रहार किया है। संस्कृत व्याख्या साहित्य की बात तो दूर है उन्हें मूल आगम भी बड़ी दुर्लभता से प्राप्त हुए होंगे। फिर भी थोड़े से समय में आगमों का गहन अध्ययन कर उन्होंने अपनी क्षीर-नीर बुद्धि का अप्रतिम परिचय दिया है।

आचार्य भिक्षु एक कुशाग्र चर्चावादी भी थे। उनका अनेक उद्भट लोगों से चर्चा करने का काम पड़ा। यह सौभाग्य की बात है कि उन चर्चा-वार्ताओं को संकलित कर एक दूरदर्शिता का परिचय दिया गया। पर उन्होंने तत्त्वज्ञान को पद्यों में बांधने का जो प्रयत्न किया, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गद्य साहित्य पढ़ने में तो सरल रहता है पर उसे अविकल रूप से स्मृति में संजो पाना अत्यंत कठिन होता है। आचार्य भिक्षु ने पद्य साहित्य की रचना लोक गीतों की शैली में की, इसलिए आज भी अनेक लोग अपने अधरों पर उन गीतों को गुनगुनाते रहते हैं। गीत याद करने में भी सुगम होते हैं। इसलिए अपढ़ लोगों के लिए भी वे परम्परित बन जाते हैं।

आचार्य भिक्षु का कवित्व अत्यन्त प्राञ्जल एवं रससिद्ध था। उन्होंने दार्शनिक साहित्य के साथ-साथ आख्यान साहित्य लिख कर भी अपनी लेखनी की कुशलता का परिचय दिया है। उनके आख्यानों में तत्कालीन लोक संस्कृति के सुघड़ बिम्ब उभरे हैं। मानव मन की अतल गहराइयों को छूने में वे सिद्धहस्त कवि थे। उनके कवित्व पर विस्तार से चर्चा करने के लिए एक पूरे ग्रंथ की आवश्यकता है।

फिर भी यह सही है कि आज राजस्थानी भाषा भी दुर्गम होती जा रही है। आचार्य भिक्षु निर्वाण द्विशताब्दी के अवसर पर १५ अक्टूबर २००४ को सिरियारी में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुझे फरमाया कि मैं भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी में अनुवाद करूं। मेरे लिए उनकी आज्ञा अत्यन्त आह्लादक थी। उसे शिरोधार्य कर मैंने उसी वर्ष दीपावली के दिन शुभ मुहूर्त्त देखकर अपराह्न में भिक्षु वाङ्मय के अनुवाद को प्रारंभ करने के लिए मंगल पाठ सुना। मेरे साथ कुछ और भी संत थे। मैंने संतों के साथ बैठकर एक रूपरेखा बनाई। तदनुसार मैंने कुछ साधु-साध्वियों को भी इस कार्य में जोड़ा। यह निर्णय किया कि अनुवाद की अंतिम निर्णायकता मेरी रहेगी। मेरे अवलोकन के बाद अनुवाद को अंतिम रूप दिया जा सकेगा।

आचार्य भिक्षु ने लगभग ३८ हजार पद्य परिमाण साहित्य लिखा है, ऐसा आकलन है। द्वितीय आचार्य भारमलजी ने अपने हाथ से उस साहित्य का लेखन

किया। हमने उसे ही प्रमाणभूत माना है। उस समय राजस्थानी में एक ही शब्द के अनेक पर्याय प्रचलित थे। उदाहरण के लिए हम आश्रव शब्द को लें। भिक्षु वाङ्मय में आश्रव के आसरव आसवर, आसव, आश्व आदि अनेक रूप स्वीकृत किए गए हैं। हमने भी उस मौलिकता की सुरक्षा करते हुए उन रूप पर्यायों को उसी रूप में मूल पाठ के रूप में स्वीकार किया है।

इसी प्रकार तात्कालीन राजस्थानी में अक्षरों के साथ बिन्दुओं का भी प्रयोग बहुलता से होता था। हमने भी मूल पाठ की इस मौलिकता को यथावत् स्वीकार किया है। हो सकता है वर्तमान में ऐसा प्रचलन नहीं है पर हमने उस समय की लिपि रूढ़ि तथा इतिहास को सुरक्षित रखने की दृष्टि से तथा मूल पाठ की सुरक्षा के लिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया।

भिक्षु वाङ्मय को हम चार भागों में बांट सकते हैं १. तत्त्वदर्शन २. आचार दर्शन ३. औपदेशिक ४. आख्यान साहित्य।

कुछ लोग राजस्थानी को एक बोलचाल की भाषा मानते हैं। पर इस भाषा के संपूर्ण वाङ्मय को देखा जाए तो लगेगा कि इसमें अभिव्यक्ति की अनुपम क्षमता है। जैनाचार्यों ने तमिल, तेलगु, कन्नड़, शूरसेनी, मराठी, गुजराती की तरह राजस्थानी भाषा में भी विपुल साहित्य लिखा है। यदि कोई विद्वान केवल तेरापंथी साहित्य का भी सम्यग् अनुशीलन करले तो उसे लगेगा कि राजस्थानी एक समृद्ध एवं समर्थ भाषा है। तेरापंथ के अनेक आचार्यों तथा साधु-साध्वियों ने भी राजस्थानी भाषा में अपनी लेखनी चलाई है। निश्चय ही वह राजस्थानी भाषा की महत्त्वपूर्ण सेवा है।

भिक्षु वाङ्मय के प्रथम खंड में हमने नव पदार्थ तथा अनुकम्पा री चौपई को शामिल किया है। दोनों ही ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

नव पदार्थ में जैन आगमों में निरुपित नौ तत्त्वों पर गहरा विवेचन किया गया है। अनेक लोगों ने अनेक भाषाओं में नौ तत्त्वों पर विवेचन किया है पर आचार्य भिक्षु की सूक्ष्म दृष्टि अपने आपमें अलौकिक है। नव पदार्थ द्रव्यानुयोग की दृष्टि से उनकी विशिष्टतम कृति है।

अनुकम्पा री चौपई तो आचार्य भिक्षु की प्रतिभा का अप्रतिम परिचय है। तेरापंथ दर्शन का यह अनमोल और आधारभूत ग्रंथ है। जिस संघ या सम्प्रदाय का सुनिश्चित दर्शन नहीं होता वह अपना लम्बा इतिहास नहीं बना सकता। तेरापंथ का अपना सुस्पष्ट दर्शन है। आचार्य भिक्षु ने जैन आगमों के आधार पर उसे सिद्ध करने का प्रयास किया है।

हमारे समाज में श्रीचंदजी रामपुरिया जैन दर्शन एवं तेरापंथ दर्शन के मर्मज्ञ श्रावक थे। उन्होंने आचार्य भिक्षु के अनेक ग्रंथों का अनुवाद ही नहीं किया है अपितु उन पर सविस्तार टिप्पण भी लिखे हैं। श्रावक समाज में अपनी तरह के वे एक विरले विद्वान् थे। उन्होंने इन दोनों ग्रंथों का अनुवाद किया था। हमने मुनि कुलदीपकुमारजी को नव पदार्थ के अनुवाद का निरीक्षण तथा शासन गौरव साध्वी राजीमतीजी को अनुकम्पा री चौपाई का अनुवाद कार्य सौंपा। दोनों ने ही परिश्रम से अपना कार्य किया। मैंने फिर उसका अवलोकन किया तथा उसमें अपेक्षित संशोधन भी किया। पहली बात तो यह है कि दोनों ही ग्रंथ अत्यन्त मौलिक हैं। इनकी तात्त्विक पृष्ठभूमि आगमों की गहराइयों को छूती है। उसे सम्यग् रूप से समझ पाना अत्यन्त कठिन है। भाषा की दृष्टि से भी उसे समझने में अनेक कठिनाइयां है। उदाहरण के लिए अजीव पदार्थ के अंतर्गत धर्मास्तिकाय के प्रसंग में आचार्य भिक्षु ने कहा है

धर्मास्ती काय तों सेंथालें पड़ी, तावड़ा छांही ज्यूं एक धार जी।
तिणरें वेंठों न वींटों कोइ नही, वले नही छें की सांध लिगार जी।।

यहां जो 'सेंथाले' शब्द आया है, उसका अर्थ हमने राजस्थानी शब्द कोश में देखा तो कहीं नहीं मिला। इसी प्रकार 'वेंठों न वींटो' का भी समुचित अर्थ नहीं मिला। काफी विचार-विमर्श के बाद हमें अपनी मति के अनुसार इसका अर्थ करना पड़ा। ऐसी कठिनाई अनेक जगह पर आई।

पहले हमारा विचार था कि हर खण्ड के साथ पारिभाषिक एवं कठिन शब्दों के परिशिष्ट भी दिए जाएं। पर जब देखा कि भिक्षु वाङ्मय में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका अर्थ राजस्थानी शब्द कोश में नहीं है तो हमने उन परिशिष्टों का विचार छोड़ दिया। यह तय किया कि भिक्षु वाङ्मय का एक अलग ही शब्द कोश तैयार किया जाए। इसीलिए इन खण्डों में हमने ग्रंथों का केवल अनुवाद ही उपलब्ध करवाने का निश्चय किया।

अनुवाद कार्य को निर्णायक स्थिति तक पहुंचाने में अणुव्रत प्राध्यापक तथा राजस्थानी भाषा के विज्ञ मुनिश्री सुखलालजी स्वामी तथा मुनि कीर्तिकुमार जी मेरे साथ जुड़े रहे। उससे यह कार्य मेरे लिए सुगम हो गया।

इस कार्य में मुनिश्री राजकरणजी स्वामी, मुनि मदनकुमारजी व मुनि भव्यकुमारजी का भी यथोचित सहयोग प्राप्त हुआ।

सरदारशहर **आचार्य महाश्रमण**

२५ जून २०१०

प्रकाशकीय

भिक्षु वाङ्मय का तेरापंथ के लिए आगम तुल्य महत्त्व है। आचार्य भिक्षु स्वयं आगमों को ही अपने विचार-चिन्तन का उत्स मानते हैं, पर कालक्रम से भगवान महावीर की विचार-धारा पर जो एक प्रकार की धुंध छा गई थी, उसे दूर करने में आचार्य भिक्षु का बहुत बड़ा योगदान है। इसीलिए उनका वाङ्मय तेरापंथ के लिए आगम साहित्य से कम नहीं है। वह तेरापंथ के रथ की धूरी के समान है।

एक संत दार्शनिक के रूप में आचार्य भिक्षु को जगत् के सामने लाने का श्रेय आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ को है। यद्यपि चतुर्थ आचार्य जयाचार्य भी आचार्य भिक्षुमय ही थे। इसलिए उन्हें दूसरा भिक्षु भी कहा जा सकता है। पर उन्होंने आचार्य भिक्षु पर जो कुछ लिखा वह केवल राजस्थानी में था तथा उसका यथेष्ट प्रचार-प्रसार भी नहीं हो सका। आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ ने आचार्य भिक्षु को पुनर्जन्म दिया। आपके प्रयासों से दार्शनिक जगत् में आचार्य भिक्षु के प्रति एक नया श्रद्धा भाव जागा। आचार्य भिक्षु की वाणी केवल वाङ्मय नहीं है अपितु अनुभवों का अखूट खजाना है। पर राजस्थानी भाषा में होने के कारण वह वर्तमान लोगों के लिए अगम्य बनती जा रही है। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपने गुरुदेव के इंगित की आराधना करते हुए भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी में अनुवादन करने का जो कार्य अपने हाथ में लिया वह अत्यंत सामयिक है। हम उनको शत-शत श्रद्धा नमन करते हैं।

राजस्थानी भाषा को राज्य मान्यता देने का एक प्रयास भी यदा-कदा होता रहता है। भिक्षु वाङ्मय इस प्रयास में एक मजबूत कड़ी बन सकता है। आचार्य भिक्षु को राजस्थानी के एक प्रबल संरक्षक के रूप में प्रस्थापित करने का भी यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि संपूर्ण भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी अनुवाद सामने आने से राजस्थानी भाषा का भी गौरव बढ़ेगा।

आचार्यश्री ने भिक्षु वाङ्मय के प्रकाशन के लिए जैन विश्व भारती को अवसर प्रदान किया यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। जैन विश्व भारती तेरापंथ की तो एक प्रतिनिधि संस्था है ही, जैन समाज में भी इसका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व भारती की अनेकविध गतिविधियां हैं। आगम साहित्य का प्रकाशन भी जैन विश्व भारती द्वारा हो रहा है। विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगमों को विद्वानों ने एक महार्घ्य महत्त्व प्रदान किया है। अन्य साहित्य का भी काफी समादर हुआ है। अब भिक्षु वाङ्मय का यह पहला खंड प्रकाशन में आ रहा है। यह बहुत प्रसन्नता की बात है।

भिक्षु वाङ्मय के सम्पादन में परम पूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी का अमूल्य समय तो लगा ही है पर उनके निर्देशन में मुनिश्री सुखलालजी एवं मुनिश्री कीर्तिकुमारजी ने भी श्रम किया है। उसके लिए हम उनके प्रति श्रद्धानत हैं।

प्रस्तुत भिक्षु वाङ्मय की साहित्य शृंखला तेरापंथ के अनुयायियों के लिए तो उपयोगी सिद्ध होगी ही पर अन्य जिज्ञासुजनों के लिए भी तत्त्व दर्शन में सहायक बनेगी। यही मंगलभावना है।

वाङ्मय प्रकाशन में आर्थिक सहयोगदाता व मुद्रक के प्रति भी हार्दिक आभार।

७ जुलाई २०१०

सुरेन्द्र चोरड़िया
अध्यक्ष
जैन विश्व भारती

नव पदार्थ

आमुख

जैन साधना पद्धति का मूल विचार है जीवाजीवविभक्ति जीव और अजीव का भेदज्ञान। जो जीव और अजीव को नहीं जानता वह संयम को कैसे जानेगा? आस्तिक और नास्तिक में यही मूल भेद है। अस्तिक जीव को मानता है, नास्तिक जीव का नहीं मानता। पर जीव और अजीव सह-अस्तित्व वाले पदार्थ हैं। जीव है तो अजीव होगा ही और अजीव है तो जीव भी होगा ही। जैन परम्परा में मूल तत्त्व दो ही माने गए हैं। साधना की दृष्टि से पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष को जोड़कर उनकी संख्या नौ मानी गई है। क्वचित् सात तत्त्वों का भी उल्लेख मिलता है, यह एक सापेक्ष दृष्टि है। पुण्य और पाप को अलग नहीं मान कर बंध के अंतर्गत ले लिया गया है। आचार्य भिक्षु ने नव पदार्थ में नौ तत्त्वों पर गहरा विश्लेषण किया है। पहली ढाल में उन्होंने जीव क्या है? उसका स्वरूप क्या है? वह कैसे कर्मों का बंध करता है? आदि पर चर्चा करते हुए कहा है

सासतों जीव द्रव्य साख्यात, कदे घटें नहीं तिलमात।
तिणरा असंख्यात प्रदेस, घटें वधें नहीं लवलेस।।

जीव द्रव्य है और वह शाश्वत है। वह असंख्य चैतन्यमय प्रदेशों का अकृत्रिम पिंड है। उसका एक प्रदेश भी न घटता है और न बढ़ता है। इस अपेक्षा से वह शाश्वत है।

जीव एक अरूपी तत्त्व है। इसलिए उसे इन्द्रिय से नहीं जाना जा सकता। यद्यपि जीव को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण दिए जाते हैं। पर अहं प्रत्यय से बढ़कर इसका कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

भगवती सूत्र के २०वें शतक में जीव के तेईस नाम बताए हैं। आचार्य भिक्षु ने उन एक-एक नाम का गुणानुरूप सूक्ष्म विवेचन करते हुए जीव द्रव्य का विशद विवेचन किया है। उन्होंने पांच भावों की चर्चा करते हुए द्रव्य जीव और भाव जीव पर भी गहरा प्रकाश डाला है।

दूसरी ढाल में अजीव तत्त्व पर विवेचन किया गया है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और पुद्‌गलास्तिकाय को अजीव के रूप में व्यक्त किया गया है। ये पांचों ही द्रव्य लोक रचना के मुख्य घटक हैं। आज तो वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन पर गहरा विचार किया जा रहा है। गति और स्थिति के लिए धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय का सहयोग आवश्यक है। वैसे ही अवगाह के लिए आकाशास्तिकाय की सहायता आवश्यक है। काल एक वैकल्पिक द्रव्य है। वह सब द्रव्यों पर वर्तता है इसलिए यह द्रव्य माना गया है। आइंस्टीन ने भी टाइम और स्पेश के रूप में काल और आकाश पर गणितीय तरीके से बहुत महनीय प्रकाश डाला है।

पुद्‌गलास्तिकाय एक अत्यंत रहस्यमय तत्त्व है। पुद्‌गल का अर्थ है वर्ण, गंध, रस और स्पर्शमय भौतिक तत्त्व। आज परमाणु की बहुत चर्चा है। पर जैन आगमों में २५०० वर्ष पूर्व पुद्‌गल परमाणु पर बहुत सूक्ष्म विवेचन किया गया है। पुद्‌गल स्कन्धों की रचना विचित्र होती है। बौद्धिक स्तर पर उनकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। अनन्त प्रदेशी स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश में समा जाता है। विस्तार होने पर वह पूरे लोक में फैल जाता है। परमाणु द्रव्य पुद्‌गल है। परमाणु कभी अपरमाणु नहीं होता। पांच शरीर आठ कर्म भी पुद्‌गल की परिणतियां हैं। छाया, धूप, कांति, प्रकाश आदि भी भाव पुद्‌गल है।[१] इस प्रकार अजीव तत्त्व के अंतर्गत पूरे विश्व-लोक का वर्णन समा गया है।

पुण्य तत्त्व पर दो ढालों में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आचार्य भिक्षु ने बताया है कि पुण्य का बंध स्वतंत्र रूप से नहीं होता। शुभ योग से निर्जरा के साथ पुण्य का बंधन होता है।[२]

पुण्य पदार्थ के विवेचन में नौ पुण्यों की चर्चा करते हुए यह भी बताया गया है कि अन्न, पानी, वस्त्र आदि स्वयं पुण्य नहीं है अपितु पुण्य बंध के अनन्तर हेतु हैं। शुद्ध साधु को अचित्त अन्न आदि देने की शुभ क्रिया से ये पुण्य बंध के अनन्तर हेतु बनते हैं। यह क्रिया कर्मागम का हेतु बनती है, उससे पुण्य का बंध होता है। जब वह जीव के शुभ रूप में उदय में आता है, तब भाव पुण्य बनता है।

कई ग्रंथकारों ने अनेक स्थानों पर कार्य-कारण को एक मान कर अन्न पुण्य, पान पुण्य आदि की व्याख्या की है, पर आचार्य भिक्षु ने सुपात्र को दान देने में शुभ कर्म का

१. नव पदार्थ, ढा. २.५६,५७

२. नव पदार्थ, ढा. ४.१

बंध माना है। तथा कर्म की उदीयमान अवस्था को पुण्य बताया है।

पांचवीं ढाल में पाप पदार्थ पर विवेचन किया गया है। जीव के सुख-दुःख के आधारभूत तत्त्व हैं पुण्य और पाप। पुण्य का उदय होता है तो जीव सुख को प्राप्त होता है और पाप का उदय होता है तो दुःख को प्राप्त होता है। पुण्य और पाप का बंधन कैसे होता है इस पर भी आचार्य भिक्षु ने गहरा प्रकाश डाला है।

जैन आगमों में पुद्गल में आठ स्पर्श माने गए हैं। पुद्गल संरचना का यह बहुत ही गहन विज्ञान है कि कर्म-पुद्गलों में चार स्पर्श ही पाए जाते हैं। आत्मा के असंख्य प्रदेश होते हैं। एक-एक प्रदेश पर अनन्त-अनन्त पाप-पुण्य के स्कन्धों का अवस्थान होता है। सचमुच आत्म तत्त्व को समझने के लिए पुण्य-पाप को समझना भी जरूरी है।

छठी-सातवीं ढाल में आश्रव पदार्थ का विश्लेषण किया गया है। उस समय आश्रव के संदर्भ में तीन मान्यताएं प्रचलित थी। कुछ लोग आश्रव को जीव मानते थे, कुछ लोग अजीव मानते थे तथा कुछ लोग जीव-अजीव दोनों मानते थे। आचार्य भिक्षु ने आश्रव को जीव के रूप में स्वीकार किया। जीव के अच्छे-बुरे परिणाम ही आश्रव हैं। उन्हीं के लिए कर्त्ता, करणी, हेतु और उपाय इन चार शब्दों का उपयोग किया गया है। अच्छे परिणामों के साथ शुभ योग का प्रवर्तन होता है। तब पुण्य का आस्रवण होता है तथा बुरे परिणामों के साथ अशुभ योग का प्रवर्तन होता है तब पाप का आस्रवण होता है।

आश्रव द्वार पांच हैं मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग। मन, वचन और काया की समुच्चय प्रवृत्ति का नाम है योग। योग अपने आपमें शुभ-अशुभ नहीं होता। मोह कर्म का संयोग होने से वह अशुभ बन जाता है तथा वियोग होने से शुभ हो जाता है।

योग आश्रव को विस्तार से समझने के लिए उसके पन्द्रह भेद कर दिए गए हैं। इस प्रकार आश्रवों की संख्या बीस हो जाती है। इनमें सोलह भेद एकांत सावद्य हैं। शुभ योग, शुभ मन, शुभ वचन और शुभ काय से पुण्य का बंधन होता है इसलिए वे निरवद्य हैं। तथा अशुभ योग, अशुभ मन, अशुभ वचन और अशुभ काय के द्वारा पाप का बंधन होता है इसलिए वे सावद्य हैं। इस प्रकार ये चारों सावद्य-निरवद्य दोनों हैं।

आठवीं ढाल में संवर का वर्णन है। आश्रव का निरोध ही संवर हैं। इस दृष्टि से

संवर भी मूलतः पांच ही हैं। अयोग संवर के पन्द्रह भेद होने से संवर के भी बीस भेद हो जाते हैं। आचार्य भिक्षु के अनुसार सम्यक्त्व और व्रत संवर मिथ्यात्व और अव्रत के प्रत्याख्यान से निष्पन्न होते हैं। अप्रमाद, अकषाय और अयोग संवर ये साधना से स्वतः निष्पन्न होते हैं, प्रत्याख्यान से नहीं।

इस ढाल में यह भी बताया गया है कि सर्व सावद्य योग का त्याग अयोग संवर नहीं है। वह व्रत संवर हैं। अयोग संवर चौदहवें गुणस्थान में योग का पूर्ण निरोध होने पर ही निष्पन्न होता है।

नवमी और दसवीं ढाल में निर्जरा तत्त्व पर चिन्तन किया गया है। निर्जरा विपाकी (सहज) भी होती है और अविपाकी (प्रयत्नजन्य) भी होती है। कालावधि का परिपाक होने पर जो कर्मों का सहज निर्जरण होता है, वह विपाकी (सहज) निर्जरा है तथा अनशन, ऊनोदरी आदि के रूप में बारह प्रकार से जो निर्जरा होती है, वह अविपाकी (प्रयत्नजन्य) निर्जरा है। निर्जरा और निर्जरा की करणी एक नहीं है। निर्जरा कार्य है और करणी उसका कारण है।

आचार्य भिक्षु ने उदीरणा, उदय और क्षय इन तीन पदों के माध्यम से निर्जरा की पूरी प्रक्रिया बताई है। तपस्या करने वाला कर्मों की उदीरणा कर उन्हें उदय में लाता है। उदय में आए हुए कर्मों का क्षरण होता है, वह निर्जरा है।

विपाकी निर्जरा में उदीरणा नहीं होती। तपस्या के द्वारा अविपाकी निर्जरा होती है, इसलिए वह उदीरणापूर्वक होती है।

आचार्य भिक्षु ने इस ढाल में सकाम और अकाम निर्जरा पर भी विशद विवेचन किया है। सकाम निर्जरा वह होती है जो कर्म काटने की दृष्टि से की जाती है। जहां कर्म काटने की दृष्टि नहीं होती केवल कष्टों को सहन किया जाता है, उससे जो कर्मों की निर्जरा होती है, वह अकाम निर्जरा है।

ग्यारहवीं ढाल में बंध पर प्रकाश डालते हुए आचार्य भिक्षु ने तालाब के एक रूपक का प्रयोग किया है। जीव एक तालाब है। बंध उसमें रहा हुआ जल है। पुण्य और पाप उसमें से निकलता हुआ जल है। आश्रव पानी आने का नाला है। नाले को रोकना संवर है। पानी को उलीचना निर्जरा है। खाली तालाब मोक्ष है।

कर्म का बंध जीव के किसी एक प्रदेश के साथ नहीं होता अपितु समग्र प्रदेशों के साथ होता है। आत्मा के साथ कर्म पुदगल स्कन्धों का संबंध प्रदेश बंध है। कर्म

के स्वभाव का निर्माण प्रकृति बंध है। उसके कालमान का निर्धारण स्थिति बंध है। उसके फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग बंध है।

बारहवीं ढाल में बताया गया है कि आत्मा की कर्मों से मुक्ति ही मोक्ष है। मोक्ष के सुख शाश्वत हैं। इन सुखों का कभी अंत नहीं होता। ये अनंत सुख जीव के स्वाभाविक गुण हैं।

देवों के सुख अत्यधिक और अपरिमित होते हैं। परन्तु तीनों काल के देव सुख एक सिद्ध भगवान के सुख के अनन्तवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते।[१]

इस ढाल में सिद्धों के पन्द्रह भेदों का भी वर्णन किया गया है। इससे जैन धर्म की सार्वजनिकता सिद्ध होती है। सिद्ध होने के लिए जैन साधु का वेष ही जरूरी नहीं है। अन्य वेष में भी साधु सिद्ध हो सकता है। यहां तक कि गृहस्थ वेष में भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

जीव का मोक्ष तो इस लोक में ही हो जाता है। वह यहीं सिद्ध बन जाता है, फिर एक ही समय में लोकांत तक पहुंच कर स्थिर हो जाता है।

तेरहवीं ढाल में आचार्य भिक्षु ने इस मत का खंडन किया है कि जीव और अजीव के अतिरिक्त अवशेष सातों पदार्थ जीव-अजीव दोनों हैं। उन्होंने कहा जीव जीव है, अजीव अजीव है। आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष जीव के भेद हैं। पुण्य, पाप और बंध अजीव के भेद हैं। यही सच्ची श्रद्धा है। जो नौ तत्त्वों को सम्यग् रूप से समझता है उसे ही सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

इस कृति में १३ ढालों में कुल ६४ दोहे और ६८० गाथाएं हैं।

---

१. नव पदार्थ, ढा. १२.२

१. जीव पदार्थ

दुहा

१. नमू वीर सासणधणी, गणधर गोतम सांम।
तारण तिरण पुरषां तणा, लीजें नित पत नांम।।

२. त्यां जीवादिक नव पदार्थ तणों, निरणों कीयों भांत भांत।
त्यांनें हलूकर्मी जीव ओळखे, पूरी मन री खांत।।

३. जीव अजीव ओळख्यां विनां, मिटें नहीं मन रो भर्म।
समकत आयां विण जीव नें, रूके नहीं आवता कर्म।।

४. नव ही पदारथ जू जूआ, जथातथ सरदें जीव।
ते निश्चे समदिष्टी जीवड़ा, त्यां दीधी मुगत री नींव।।

५. हिवे नव ही पदार्थ ओळखायवा, जूआ जूआ कहूँ छूं भेद।
पहिलां ओळखाऊं जीव नें, ते सुणजों आंण उमेद।।

ढाल : १

(लय विना रा भाव सुणें सुणें गुंजे ए)

१. सासतों जीव द्रव्य साख्यात, कदे घटें नहीं तिलमात।
तिणरा असंख्यात प्रदेस, घटें वधें नहीं लवलेस।।

२. तिण सूं दरबे कह्यों जीव एक, भाव जीव रा भेद अनेक।
तिणरों बहोत कह्यों विसतार, ते बुधवंत जांणें विचार।।

जीव पदार्थ

दोहा

१. जिनशासन के अधिपति श्री वीर प्रभु और गणधर गौतम स्वामी को नमस्कार करता हूं। इन तरण-तारण पुरुषों का प्रतिदिन स्मरण करना चाहिए।

२. इन पुरुषों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से जीव आदि नव पदार्थों का स्वरूप-निरूपण किया है। हलुकर्मी जीव उनकी पूरे मनोयोग पूर्वक ओलख (पहचान) करते हैं।

३. जीव-अजीव की पहचान हुए बिना मन का भ्रम नहीं मिटता। सम्यक्त्व आए बिना जीव के आने वाले कर्म नहीं रूकते हैं।

४. जो प्राणी नव ही पदार्थों में पृथक्-पृथक् रूप में प्रत्येक में यथातथ्य श्रद्धा रखते हैं, वे निश्चय ही सम्यग्दृष्टि जीव हैं। उन्होंने मुक्ति की नींव डाल दी है।

५. अब नव ही पदार्थ की पहचान के लिए उनके भिन्न-भिन्न प्रकार बतलाता हूं। पहले जीव पदार्थ की पहचान कराता हूं। उसे सहर्ष सुनें।

ढाल : १

१. जीव द्रव्य प्रत्यक्ष शाश्वत है। उसकी संख्या तिलमात्र भी कभी नहीं घटती। उसके असंख्यात प्रदेशों में लेशमात्र भी घट-बढ़ नहीं होती।

२. इसीलिए द्रव्यतः जीव एक कहा गया है। भाव जीव के अनेक भेद है। भगवान ने उसका बहुत विस्तृत वर्णन किया है। बुद्धिमान विचार कर द्रव्य जीव और भाव जीव को जान लेते हैं।

३. भगोती बीसमा सतक माहि, बीजें उदेशें कह्यों जिणराय।
जीवरा तेवीस नांम, गुण निपन कह्या छें तांम।।

४. जीवेतिवा जीवरो नांम, आउखा नें वले जीवें तांम।
ओ तों भावें जीव संसारी, तिणनें बुधवंत लीजों विचारी।।

५. जीवत्थिकाय जीवरो नांम, देह धरें छें तेह भणी आंम।
प्रदेसा रा समुह ते काय, पुदगल रा समुह झेलें छें ताहि।।

६. सास उसास लेवें छें तांम, तिणसु पाणेतिवा जीव नांम।
भूएतिवा कह्यों इण न्याय, सदा छें तिहु काल रें मांहि।।

७. सतेतिवा कह्यों इण न्याय, सुभासुभ पोतें छें ताहि।
विनूतीवा विषें रा जांण, सबदादिक लीया सर्व पिछांण।।

८. वेयातिवा जीव रो नांम, सुख दुख वेदें छें ठांम ठांम।
ते तो चेतन सरूप छें जीव, पुदगल रो सवादी सदीव।।

९. चेयातिवा जीवरों नांम, पुदगल नी रचणा करें तांम।
विवध प्रकारें रचें रूप, ते तों भूंडा ने भला अनूप।।

१०. जेयातिवा नांम श्रीकार, कर्म रिपू नों जीपणहार।
तिणरो प्राकम सकत अतंत, थोड़ा में करे करमां रो अंत।।

११. आयातिवा नाम इण न्याय, सर्व लोक फरस्यों छें ताहि।
जन्म मरण कीया ठांम ठांम, कठे पाम्यों नही आरांम।।

३. भगवती सूत्र के बीसवें शतक के द्वितीय उद्देशक में जिनेश्वर भगवान ने जीव के गुणानुरूप तेईस नाम बतलाए हैं, जो निम्न प्रकार हैं

४. जीव : जीव का यह नाम आयुष्य के बल से जीवित रहने के कारण है। यह संसारी जीव-भाव जीव है। बुद्धिमान विचार कर देखें।

५. जीवास्तिकाय : जीव का यह नाम देह धारण करने से है। प्रदेशों का जो समूह है, वह काय है। देह पुद्‌गल-प्रदेशों का समूह है। उसे यह धारण करता है।

६. प्राण : जीव का 'प्राण' नाम श्वासोच्छ्‌वास लेने के कारण है।

भूत : जीव को 'भूत' इसलिए कहा गया है कि यह तीनों काल में विद्यमान रहता है।

७. सत्त्व : जीव स्वयं शुभाशुभ का कारण है, इसलिए जीव 'सत्त्व' है।

विज्ञ : इन्द्रियों के शब्दादि विषयों का ज्ञान करने वाला (जानने वाला) होने से 'विज्ञ' है।

८. वेद : जीव का नाम 'वेदक' है। जीव स्थान-स्थान पर सुख-दुःख का अनुभव करता है। वह जीव चैतन्य स्वरूप है और सदा पुद्‌गल का स्वादी-उपभोग करने वाला है।

९. चेता : जीव पुद्‌गलों की रचना (चय) करता है। पुद्‌गलों का चय कर वह विविध प्रकार के अच्छे-बुरे रूप धारण करता है। इससे जीव का नाम 'चेता' है।

१०. जेता : कर्म रूपी शत्रुओं को जीतने वाला होने से जीव का यह उत्तम 'जेता' नाम है, जीव का पराक्रम उसकी शक्ति (वीर्य) अनन्त है, जिससे अल्प में ही वह कर्मों का अन्त कर देता है।

११. आत्मा : यह नाम इसलिए है कि जीव ने जगह-जगह जन्म-मरण किया है और सर्वलोक का स्पर्श किया है। किसी भी जगह इसे विश्राम नहीं मिला।

१२. रंगणेतिवा नांम मदमातो, राग धेष रूप रंगरातो।
तिणसूं रहें छें मोह मतवालो, आत्मा नें लगावें कालो।।

१३. हीडूतिवा जीवरो नांम, चिंहूगति माहे हींड्यों छें तांम।
कर्म हिलोलें ठांम ठांम, कठे पाम्यों नही विसरांम।।

१४. पोगलेतिवा जीवरो नांम, पुदगल ले ले मेल्या ठांम ठांम।
पुदगल माहे रचे रह्यों जीव, तिणसूं लागी संसार री नीव।।

१५. माणवेतिवा जीव रों नांम, नवों नहीं सासतों छें तांम।
तिणरी परजा तों पलटे जाय, द्रव्य तों ज्यूं रों ज्यूं रहें ताहि।।

१६. कतातिवा छें जीव रों नांम, करमां रो करता छें तांम।
तिणसुं तिणनें कह्यों छें आश्रव, तिणसूं लागें छें पुदगल दरब।।

१७. विकतातिवा नाम इण न्याय, कर्मा नें विधूणें छें ताहि।
आ निरजरा री करणी अमांम, जीव उजलों छें निरजरा तांम।।

१८. जएतिवा नांम तणो विचार, अति हि गमन तणो करणहार।
एक समे लोक अन्त लग जाय, एहवी सकत सभाविक पाय।।

१९. जंतूतिवा जीव रो नांम, जन्म पाम्यो छे ठांम ठांम।
चोरासी लख जोनि रे मांहि, उपज्यो ने निसर गयो ताहि।।

२०. जोणित्तिवा जीव कहिवाय, पर नो उत्पादक इण न्याय।
घट पट आदि वस्त अनेक, उपजावे निज सुविवेक।।

१२. रंगण : जीव राग-द्वेष रूपी रंग में रंगा रहता है, इसलिए वह मोह में मतवाला रहता है और आत्मा को कलंकित करता है। इससे इसका नाम 'रंगण' है।

१३. हिंडुक : कर्म रूपी झूलने में बैठकर जीव चारों गतियों में झूलता रहता है। कहीं भी विश्राम नहीं पाया। इससे जीव का नाम 'हिंडुक' है।

१४. पुद्गल : पुद्गलों को (आत्म-प्रदेशों में) जगह-जगह एकत्रित कर रखने से जीव का नाम 'पुद्गल' है। पुद्गल में लिप्त रहने से ही संसार की नींव लगी है।

१५. मानव : जीव कोई नया नहीं परन्तु शाश्वत है, इसलिए उसका नाम 'मानव' है। जीव का पर्याय पलट जाता है, परन्तु द्रव्य से वह वैसा का वैसा रहता है।

१६. कर्त्ता : कर्मों का कर्त्ता-उपार्जन करने वाला होने से जीव का नाम 'कर्त्ता' है। कर्मों का कर्त्ता होने से जीव को आश्रव कहा गया है। इस कर्तृत्व के कारण ही जीव के पुद्गल द्रव्य लगता रहता है।

१७. विकर्त्ता : कर्मों को बिखेरता है, इसलिए 'विकर्त्ता' नाम है। यह कर्म बिखेरना ही निर्जरा की करणी है। जीव का उज्ज्वल होना निर्जरा है।

१८. जगत् : जीव में एक समय में लोकान्त तक जाने की स्वाभाविक शक्ति पाई जाती है। इस प्रकार अत्यन्त शीघ्र गति से गमन करने वाला होने से जीव को 'जगत्' कहा गया है।

१९. जंतु : जीव जगह-जगह जन्मा है। चौरासी लाख योनियों में वह उत्पन्न हुआ और वहां से निकला है, इसलिए इसका नाम 'जंतु' है।

२०. योनि : जीव अन्य वस्तुओं का उत्पादक है। अपने बुद्धि-कौशल से वह घट, पट आदि अनेक वस्तुओं की रचना करता है। इससे 'योनि' कहलाता है।

२१. सयंभूतिवा छें जीव रों नांम, किण हि निपजायो नही तांम।
ते तो छें द्रव्य जीव सभावे, ते तो कदे नहीं विललावे।।

२२. सरीरेतिवा नांम एह, सरीर रें अंतर तेह।
सरीर पाछें नांम धरायों, कालो गोरादिक नांम कहायों।।

२३. नायएतिवा ते कर्मां रो नायक, निज सुख दुख छें दायक।
तथा न्याय तणों करणहार, ते तों बोलें छें वचन विचार।।

२४. अन्तरअपा ते जीव रों नांम, सर्व सरीर व्यापे रह्यों तांम।
लोलीभूत छें पुदगल मांही, निज सरूप दबे रह्यों त्यांही।।

२५. द्रव्य तो जीव सासतो एक, तिणरा भाव कह्या छें अनेक।
भाव ते लखण गुण परज्याय, ते तो भावे जीव छें ताहि।।

२६. भाव तों पांच श्री जिण भाख्या, त्यांरा सभाव जू जूआ दाख्या।
उदें उपसम नें खायक पिछांणों, खयउपसम परिणांमीक जांणो।।

२७. उदें तों आठ कर्म अजीव, त्यांरा उदा सूं नीपना जीव।
ते उदें भाव जीव छें तांम, त्यांरा अनेक छें जूआ जूआ नांम।।

२८. उपसम तों मोहणी कर्म एक, जब नीपजें गुण अनेक।
ते उपसम तो भाव जीव छें तांम, त्यांरा पिण छें जूआ जूआ नांम।।

२९. खय तों हुवे छें आठ कर्म, जब खायक गुण नीपजें परम।
ते खायक गुण छें भाव जीव, ते उजला रहें सदा सदीव।।

३०. बे आवरणी नें मोहणी अंतराय, ए च्यारूं कर्म खयउपसम थाय।
जब नीपजें खयउपसमभाव चोखो, ते पिण छें भाव जीव निरदोषो।।

२१. स्वयंभू : जीव किसी का उत्पन्न किया हुआ नहीं है। इसी से इसका नाम 'स्वयंभू' है। जीव स्वाभाविक द्रव्य है। वह कभी विलय को प्राप्त नहीं होता।

२२. सशरीरी : शरीर में रहने से जीव का नाम 'सशरीरी' है। काले, गोरे आदि की संज्ञा शरीर को लेकर ही है।

२३. नायक : कर्मों का नायक होने से अपने सुख-दुःख का स्वयं उत्तरदायी होने से जीव का नाम 'नायक' है तथा न्याय का करने वाला है, विचार कर बात बोलने वाला है।

२४. अन्तरात्मा : समस्त शरीर में व्याप्त रहने से जीव 'अन्तरात्मा' कहलाता है। जीव पुद्गलों में लोलीभूत (एकाकार) है, जिससे उसका (असली) स्वरूप दब रहा है।

२५. द्रव्य जीव शाश्वत और एक है। भगवान ने उसके भाव अनेक कहे हैं। वे लक्षण, गुण और पर्याय कहलाते हैं। वे (लक्षण, गुण व पर्याय) भाव जीव हैं।

२६. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इस तरह जिन भगवान ने पांच भाव बतलाए है। उनके स्वभाव अलग-अलग कहे हैं।

२७. आठ कर्मों का उदय तो अजीव है। उनके उदय से निष्पन्न होने वाला 'उदय-भाव जीव' है, उसके भिन्न-भिन्न अनेक नाम हैं।

२८. उपशम तो एक मोहनीय कर्म का होता है। उससे अनेक गुण निष्पन्न होते हैं, वह 'उपशम-भाव जीव' है। उसके भी भिन्न-भिन्न नाम है।

२९. क्षय तो आठ ही कर्मों का होता है। जब परम क्षायक गुण निष्पन्न होता है, वह क्षायक गुण भाव जीव है। वह सदा उज्ज्वल रहता है।

३०. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों का क्षयोपशम होता है, जब उज्ज्वल क्षयोपशम भाव निष्पन्न होता है। वह भी निर्दोष भाव जीव है।

३१. जीव परिणमें जिण जिण भाव मांहि, ते सगला छें न्यारा न्यारा ताहि।
पिण परिणामीक सारा छें तांम, जेहवा तेहवा परिणामीक नांम।।

३२. कर्म उदें सुं उदें भाव होय, ते तों भाव जीव छें सोय।
कर्म उपसमीयां उपसम भाव, ते उपसम भाव जीव इण न्याव।।

३३. कर्म खय सुं खायक भाव होय, ते पिण भाव जीव छें सोय।
कर्म खेंउपसम सुं खेंउपसम भाव, ते पिण छें भाव जीव इण न्याव।।

३४. ए च्यारूं इ भाव छें परिणांमीक, ओं पिण भाव जीव छें ठीक।
ओर जीव अजीव अनेक, परिणामीक विना नही एक।।

३५. ए पांचूइं भाव नें भाव जीव जांणों, त्यांनें रूड़ी रीत पिछांणों।
उपजें नें विलें हो जाय, ते भावे जीव तों छें इण न्याय।।

३६. कर्म संजोग विजोग सूं तेह, भावे जीव नीपनों छें एह।
च्यार भाव तो निश्चें फिर जाय, खायक भाव फिरें नही ताहि।।

३७. द्रव्य तो सासतो छें ताहि, ते तो तीनोइ काल रें मांहि।
ते तो विलें कदे नहीं होय, द्रव्य तो ज्यूँ रो ज्यूँ रहसी सोय।।

३८. ते तो छेद्यो कदे न छेदावें, भेद्यो पिण कदे नही भेदावें।
जाळ्यो पिण जळें नांही, बाळ्यों पिण न बळें अगन मांहि।।

३९. काट्यों पिण कटें नहीं कांइ, गाळें तों पिण गळें नांही।
बांट्यों तो पिण नही वंटाय, घसें तो पिण नही घसाय।।

३१. जीव जिन-जिन भावों में परिणमन करता है, वे सब भिन्न-भिन्न हैं। वे सभी पारिणामिक हैं। परिणाम के अनुसार उनके नाम हैं।

३२. कर्म के उदय से उदय-भाव होता है, वह भाव जीव है। कर्म के उपशान्त होने से उपशम-भाव होता है। इस न्याय से वह उपशम भाव जीव है।

३३. कर्म का क्षय होने से क्षायिक-भाव होता है, वह भी भाव जीव है। कर्म का क्षयोपशम होने से क्षयोपशम भाव होता है, इस न्याय से वह भी भाव जीव है।

३४. ये चारों (उदय, उपशम, क्षायक और क्षयापेशम) ही भाव पारिणामिक हैं। यह पारिणामिक भाव भी भाव जीव है। अन्य जीव, अजीव अनेक पदार्थ हैं। वे भी पारिणामिक भाव हैं।

३५. इन पांचों ही भावों को भाव जीव जानो। उनको अच्छी तरह पहचानो। वे उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं, इस न्याय से वे भाव जीव हैं।

३६. ये भाव जीव कर्मों के संयोग-वियोग से निष्पन्न होते हैं। चार भाव तो होकर निश्चय ही परिवर्तित हो जाते हैं। क्षायिक भाव परिवर्तित नहीं होता।

३७. द्रव्य तीनों कालों में शाश्वत होता है। उसका विलय (नाश) नहीं होता। वह द्रव्य रूप में सदा ज्यों-का-त्यों रहता है।

३८. वह छेदन करने पर नहीं छिदता (अच्छेद्य है), भेदन करने पर नहीं भिदता (अभेद्य है), और जलाने से जलता नहीं है और अग्नि में बालने से बलता भी नहीं है (अदाह्य है)।

३९. वह काटने पर नहीं कटता, गलाने पर नहीं गलता, बांटने पर नहीं बंटता और न घिसने पर घिसता है।

४०. द्रव्य असंख्यात प्रदेसी जीव, नित रों नित रहसी सदीव।
ते मास्यों पिण मरें नांही, वले घटें, बधे नही कांइ।।

४१. द्रव्य तो असंख्यात प्रदेसी ते तों सदा ज्यूँ रा ज्यूँ रहसी।
एक प्रदेस पिण घटें नांही, तीनूँइ काल रे मांही।।

४२. खंडायो पिण न खंडें लिगार, नित सदा रहें एक धार।
एहवो छें द्रव्य जीव अखंड, अखी थकों रहे इण मंड।।

४३. द्रव्य रा भाव अनेक छें ताहि, ते तों लखण गुण परजाय।
भाव लखण गुण परजाय, ए च्यारू भाव जीव छें ताहि।।

४४. ए च्यारूं भला नें भूंडा होय, एक धारा न रहें कोय।
केइ खायक भाव रहसी एक धार, नीपना पछें न घटें लिगार।।

४५. दरबे जीव सासतों जांणों, तिणमें पिण संका मूल म आंणों।
भगोती सातमा सतक रे माहि, दूजे उदेशें कह्यों जिणराय।।

४६. भावे जीव असासतों जाणों, तिणमें पिण संका मूल म आंणों।
ए पिण सातमा सतक रें माहि, दूजें उदेश कह्यों जिणराय।।

४७. जेती जीव तणी परजाय, असासती कही जिणराय।
तिणनें निश्चें भावे जीव जांणों, तिणनें रूड़ी रीत पिछांणों।।

४८. कर्मां रो करता जीव छें ताह्यों, तिणसूं आश्‍व नांम धरायो।
ते आश्रव छें भाव जीव, कर्म लागें ते पुदगल अजीव।।

४९. कर्म रोकें छें जीव ताह्यों, तिण गुण सुं संवर कहायो।
संवर गुण छें भाव जीव, रूकीया छें कर्म पुदगल अजीव।।

४०. जीव अंसख्यात प्रदेशी द्रव्य है। वह सदा नित्य रहता है। वह मारने पर नहीं मरता, और न थोड़ा भी घटता-बढ़ता है।

४१. जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है। उसके प्रदेश सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। तीनों ही काल में इसका एक प्रदेश भी न्यून नहीं हो सकता।

४२. खण्ड करने पर यह किंचित् भी खण्डित नहीं होता, यह सदा एक धार रहता है। ऐसा यह द्रव्य जीव अखण्ड पदार्थ है और इस सृष्टि में अक्षय बना रहता है।

४३. द्रव्य के अनेक भाव हैं। जैसे लक्षण, गुण और पर्याय। भाव, लक्षण, गुण और पर्याय ये चारों भाव-जीव हैं।

४४. ये चारों अच्छे और बुरे होते हैं। ये एक धार नहीं रहते। क्षायक भाव एक धार रहेगा, निष्पन्न होने पर फिर घटता नहीं।

४५. द्रव्य की अपेक्षा से जीव को शाश्वत जानो। ऐसा भगवान ने भगवती सूत्र के सातवें शतक के द्वितीय उद्देशक में कहा है। इसमें जरा भी शंका मत करो।

४६. भाव की अपेक्षा से जीव को अशाश्वत जानो। ऐसा भगवान ने भगवती सूत्र के सातवें शतक के द्वितीय उद्देशक में कहा है। इसमें जरा भी शंका मत करो।

४७. जीव के जितने पर्याय हैं, उन सबको भगवान ने अशाश्वत कहा है। इनको निश्चय ही भाव जीव समझो और भली-भांति पहचानो।

४८. जीव कर्मों का कर्त्ता है, इसलिए आश्रव कहलाता है। आश्रव भाव जीव है तथा जो कर्म जीव के लगते हैं, वे अजीव पुद्गल हैं।

४९. जीव कर्मों को रोकता है, इस गुण के कारण संवर कहलाता है। संवर गुण भाव जीव है तथा जो कर्म रुकते हैं वे अजीव पुद्गल हैं।

५०. कर्म तूटां जीव उजल थायों, तिणनें निरजरा कही जिणराय।
ते निरजरा छें भाव जीवो, तूटें ते कर्म पुदगल अजीव।।

५१. समस्त कर्मां सूं जीव मूकायों, तिणसूं तो जीव मोख कहायों।
मोख ते पिण छें भाव जीव, मूंकीया गया कर्म अजीव।।

५२. शबदादिक कांम नें भोग तेहनों करें संजोग।
ते तों आश्रव छें भाव जीव, तिणसूं लागे छें कर्म अजीव।।

५३. शबदादिक कांम नें भोग, त्यानें त्यागे नें पाड़ें विजोग।
ते तो संवर छें भाव जीव, तिणसूं रूकीया छें कर्म अजीव।।

५४. निरजरा नें निरजरा री करणी, अें दोनूंइ जीव नें आदरणी।
एकू दोनूं छें भाव जीव, तूटा नें तूटें कर्म अजीव।।

५५. काम भोग सूं पांमें आरांमो, ते संसार थकी जीव स्हांमो।
ते तों आश्रव छें भाव जीव, तिणसूं लागें छें कर्म अजीव।।

५६. काम भोग थकी नेह तूटों, ते संसार थकी छें अफूटों।
ते संवर निरजरा भाव जीव, जब रूकें तूटें कर्म अजीव।।

५७. सावद्य करणी सर्व अकार्य, अें तों सगला छें किरतब अनार्य।
ते सगलाइ छें भाव जीव, त्यांसूं लागे छें कर्म अजीव।।

५८. जिण आगन्या पालें छें रूड़ी रीत, ते पिण भाव जीव सुवनीत।
जिण आगन्या लोपे चाले कूरीत, ते तो छें भाव जीव अनीत।।

५९. सूरवीरा संसार रें मांही, किंणरा डराया डरें नांहीं।
ते पिण छें भाव जीव संसारी, ते तो हुवो अनंती वारी।।

५०. कर्मों के टूटने पर जीव उज्ज्वल होता है। जिन भगवान ने इसे निर्जरा कहा है। निर्जरा भाव जीव है और जो कर्म टूटते हैं, वे अजीव पुद्गल हैं।

५१. जीव का समस्त कर्मों से मुक्त हो जाना ही उसका मोक्ष कहलाता है। मोक्ष भी भाव जीव है, जीव का जिन कर्मों से छुटकारा हुआ, वे अजीव हैं।

५२. शब्दादिक कामभोगों का जो संयोग करता है व आश्रव भाव जीव है। इससे जो कर्म आकर लगते हैं, वे अजीव हैं।

५३. शब्दादिक कामभोगों को त्याग कर उन्हें अलग करना, वह संवर भाव जीव है। इससे अजीव कर्मों का प्रवेश रुकता है।

५४. निर्जरा और निर्जरा की करनी ये दोनों ही जीव के लिए आदरणीय हैं, यह दोनों भाव जीव हैं। जो कर्म टूटे हैं और टूट रहे हैं, वे अजीव हैं।

५५. जो जीव काम भोगों में सुखानुभव करता है, वह संसार के सम्मुख है। वह आश्रव भाव जीव है। इससे अजीव कर्म लगते हैं।

५६. कामभोगों से जिसका स्नेह टूट गया, वह संसार से विमुख है। वह संवर और निर्जरा भाव जीव है। संवर और निर्जरा से अजीव कर्म क्रमशः रुकते और टूटते हैं।

५७. सर्व सावद्य कार्य अकृत्य हैं। ये सब अनार्य कर्तव्य हैं। ये सभी भाव जीव हैं। इनसे अजीव कर्म लगते है।

५८. जो जिन की आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करता है, वह सुविनीत भाव जीव है और जो जिन की आज्ञा का उल्लंघन कर कु-राह पर चलता है, वह अनीतिमान भाव जीव है।

५९. संसार में वे शूरवीर कहलाते हैं जो किसी के डराए नहीं डरते। वे भी संसारी भाव जीव हैं। प्राणी अनन्त बार ऐसा वीर हुआ है।

६०. साचा सूरवीर साख्यात, ते तो कर्म काटें दिन रात।
ते पिण छें भाव जीव चोखों, दिन दिन नेड़ी करें छें मोखो।।

६१. कहि कहि नें कितोएक केहूं, द्रव्य नें भाव जीव छें बेहूं।
त्यांनें रूड़ी रीत पिछांणो, छें ज्यूं रा ज्यूं हीया मांहे जांणों।।

६२. द्रव्य भाव ओळखावण तांम, जोड़ कीधी श्री दुवारें सुठांम।
समत अठारें पचावनों वरस, चेत विद तिथ तेरस।।

६०. साक्षात् सच्चे शूरवीर वे हैं जो दिन-रात कर्मों को काटते हैं। वे शुभ भाव जीव हैं। वे दिन-प्रति-दिन मोक्ष को नजदीक कर रहे हैं।

६१. मैं कह कर कितना कह सकता हूं। द्रव्य जीव और भाव जीव दोनों को अच्छी तरह पहचानो और हृदय में यथातथ्य रूप से जानो।

६२. द्रव्य और भाव जीव को अवलक्षित कराने वाली यह जोड़ श्रीजीद्वार (नाथद्वारा) में सं. १८५५, चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को सम्पूर्ण की है।

२ : अजीव पदार्थ

दूहा

हिवे अजीव नें ओळखायवा, त्यांरा कहूं छूं भाव भेद।
थोड़ा सा परगट करूं, ते सुणजों आंण उमेद।।

ढाल : २

(लय मम करो काया माया कारमी)

ए अजीव पदारथ ओळखो।।

१. धर्म अधर्म आकास छें, काल नें पुदगल जांण जी।
ए पांचूइ द्रव्य अजीव छें, त्यांरी बुद्धवंत करों पिछांण जी।।

२. यांमें च्यार दरबां नें अरूपी कह्या, त्यांमें वर्ण गंध रस फरस नांहि जी।
एक पुदगल द्रव्य रूपी कह्यों, वर्णादिक सर्व तिण मांहि जी।।

३. ए पांचोइ द्रव्य भेला रहें, पिण भेल सभेल न होय जी।
आप आप तणों गुण ले रह्या, त्यांनें भेला कर सकें नही कोय जी।।

४. धर्म द्रव्य धर्मास्तीकाय छें, आसती ते छती वस्त ताहि जी।
असंख्यात प्रदेस छें तेहनां, काय कही छें इण न्याय जी।।

५. अधर्म द्रव्य अधर्मास्तीकाय छें, आ पिण छती वस्त ताहि जी।
असंख्यात प्रदेस छें तेहनां, तिणनें काय कही इण न्याय जी।।

अजीव पदार्थ

दोहा

१. अजीव पदार्थ की पहचान कराने के लिए उसके भावभेद संक्षेप में प्रकट करता हूं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनें।

ढाल : २

इन अजीव पदार्थों को पहचानें।

१. धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्‌गल को जानें। ये पांचों ही द्रव्य अजीव हैं। बुद्धिमान इनकी पहचान करें।

२. इनमें से प्रथम चार द्रव्यों को भगवान ने अरूपी कहा है। उनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं है, केवल पुद्‌गल द्रव्य को रूपी कहा है। उसमें वर्ण आदि चारों गुण मिलते हैं।

३. ये पांचों ही द्रव्य एक साथ रहते हैं, परन्तु इनमें मिलावट नहीं होती। एक साथ रहने पर भी प्रत्येक अपने-अपने गुणों को धारण किए हुए रहता है। उनको कोई मिला नहीं सकता।

४. धर्म द्रव्य धर्मास्तिकाय है। अस्ति अर्थात् जो वस्तु सत् है। उसके असंख्य प्रदेश हैं, इस न्याय से काय कहा गया है।

५. अधर्म द्रव्य अधर्मास्तिकाय है। यह भी सत् (अस्तित्ववान्) वस्तु है। उसके असंख्य प्रदेश हैं, इस न्याय से उसको काय कहा गया है।

६. आकास द्रव्य आकास्तीकाय छें, आ पिण छती वस्त छें ताहि जी।
अनंत प्रदेस छें तेहनां, तिणसूं काय कही जिणराय जी।।

७. धर्मास्ती अधर्मास्तीकाय तों, पेंहली छें लोक प्रमांण जी।
लोक अलोक प्रमांणें आकास्ती, लांबी नें पहली जांण जी।।

८. धर्मास्ती नें अधर्मास्ती, वले तीजी आकास्तीकाय जी।
ए तीनूं कही जिण सास्ती, तीनूइ काल रे मांहि जी।।

९. ए तीनूइ द्रव्य छें जू जूआ, जूआ जूआ गुण परजाय जी।
त्यांरी गुण परज्याय पलटें नहीं, सासता तीन काल रे मांहि जी।।

१०. ए तीनोइ द्रव्य फेली रह्या, ते तो हालें चालें नही ताहि जी।
हालें चालें ते पुदगल जीव छें, ते फिरे छें लोक रे मांहि जी।।

११. जीव नें पुदगल चालें तेहनें, साज धर्मास्तीकाय जी।
अनंता चाले त्यांनें साझ छें, तिणसूं अनंती कही परजाय जी।।

१२. जीव नें पुदगल थिर रहें, तिणनें साज अधर्मास्तीकाय जी।
अनंता थिर रहे त्यांनें साझ छें, तिणसूं अनंती कही परजाय जी।।

१३. जीव अजीव सर्व दरब नो, भाजन आकास्तीकाय जी।
अनंता रो भाजन तेहसूं, अनंती कही परज्याय जी।।

१४. चालवानें साझ धर्मास्ती, थिर रहेवानें अधर्मास्तीकाय जी।
आकास विकास भाजन गुण, सर्व द्रव्य रहें तिण मांहि जी।।

६. आकाश द्रव्य आकाशास्तिकाय है। यह भी सत् (अस्तित्ववान्) वस्तु है और इसके अनन्त प्रदेश हैं। इसलिए जिन भगवान ने इस को काय कहा है।

७. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक-प्रमाण विशाल हैं। आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण लम्बा और विशाल है।

८. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनों को भगवान ने शाश्वत कहा है। इनका अस्तित्व तीनों काल में रहता है।

९. ये तीनों द्रव्य अलग-अलग हैं। तीनों के गुण और पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। इनके गुण और पर्याय अपरिवर्तनशील हैं (एक के गुण पर्याय दूसरे के नहीं होते), ये तीनों काल में शाश्वत रहते हैं।

१०. ये तीनों ही द्रव्य फैले हुए हैं, ये हलन-चलन नहीं करते। हलन- चलन करने वाले पुद्गल और जीव हैं, वे लोक में फिरते रहते हैं।

११. जीव और पुद्गल गति करते हैं, उसमें धर्मास्तिकाय का सहारा रहता है। गमन करते हुए अनन्त जीव और पुद्गलों को सहारा देने से धर्मास्तिकाय के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१२. जीव और पुद्गल स्थिर रहते हैं। उनको अधर्मास्तिकाय का सहारा रहता है। स्थिर होते हुए अनन्त जीव और पुद्गलों का सहायक होने से अधर्मास्तिकाय के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१३. सर्व जीव अजीव द्रव्यों का भाजन (स्थान) आकाशास्तिकाय है। अनन्त पदार्थों का भाजन होने से इसके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१४. धर्मास्तिकाय चलने में और अधर्मास्तिकाय स्थिर रहने में सहायक है। आकाशास्तिकाय का विस्तार भाजन गुण है। सर्व द्रव्य उसी में रहते हैं।

१५. धर्मास्ती रा तीन भेद छें, खंध नें देस परदेस जी।
आखी धर्मास्ती खंद छें, ते उंणी नही लवलेस जी।।

१६. एक प्रदेस थी आदि दे, एक प्रदेस उंणो खंध न होय जी।
त्यां लग देस प्रदेस छें, तिणनें खंध म जाणजो कोय जी।।

१७. धर्मास्ती काय तों सेंथालें पड़ी, तावड़ा छांही ज्यूं एक धार जी।
तिणरें वेठों नें वीटों कोइ नही, वले नही छेकी सांध लिगार जी।।

१८. पुदगलास्ती सुं प्रदेस न्यारो पड्यो, तिणनें परमाणु कह्यो जिणराय जी।
तिण सूक्ष्म परमाणु थकी, तिणसूं मापी छें धर्मास्तीकाय जी।।

१९. एक परमाणूओं फरसें धर्मास्ती तिणनें प्रदेस कह्यों जिणराय जी।
इण मापा सूं धर्मास्ती काय ना, असंख्याता प्रदेस हुवे ताहि जी।।

२०. तिणसूं असंख्यात प्रदेसी धर्मास्ती, अधर्मास्ती पिण इमहीज जांण जी।
अनंता आकास्ती काय ना, प्रदेस इण रीत पिछांण जी।।

२१. काल पदारथ तेहना, द्रव्य कह्या छें अनंत जी।
नीपना नीपजें नें नीपजसी वली, तिणरो कदेय न आवसी अंत जी।।

२२. गयें काल अनंता समां हूआ, वरतमांन समों एक जांण जी।
आगमीयें कालें अनंता हुसी, ए काल द्रव्य पिछांण जी।।

२३. काल द्रव्य नीपजवा आसरी, सासतो कह्यों जिणराय जी।
ऊपजें नें विणसें तिण आसरी, असासतो कह्यों इण न्याय जी।।

२४. तिणसूं काल दरब नही सासता, अें तो उपजे छें जेम प्रवाह जी।
जे उपजे ते समों विणसें सही, तिणरो कदेय न आवे छें थाह जी।।

१५. धमास्तिकाय के तीन भेद हैं स्कन्ध, देश और प्रदेश। सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्कन्ध कहते हैं। वह जरा भी न्यून नहीं हैं।

१६. एक प्रदेश से लगाकर एक प्रदेश कम तक स्कन्ध नहीं, वहां तक देश और प्रदेश होते हैं। उसको कोई स्कन्ध न समझें।

१७. धर्मास्तिकाय धूप और छांह की तरह संलग्न रूप में फैली हुई है। न तो उसके चातुर्दिक कोई घेरा है और न कोई संधि (जोड़) ही।

१८. पुद्गलास्तिकाय से जो एक प्रदेश पुद्गल अलग हो जाता है उसको जिन भगवान ने परमाणु कहा है। उस सूक्ष्म परमाणु से धर्मास्तिकाय मापा गया है।

१९. एक परमाणु जितने धर्मास्तिकाय का स्पर्श करता है उतने को जिन भगवान ने प्रदेश कहा है। इस माप से धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश होते हैं।

२०. इस माप से धर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेशी द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय भी उतना ही है। इसी माप से आकाशास्तिकाय के अनन्त प्रदेश होते हैं।

२१. काल अजीव द्रव्य है। उसके अनन्त द्रव्य कहे गए हैं। वे उत्पन्न हुए, होते हैं और होंगे। उनका कभी भी अन्त नहीं आएगा।

२२. गत काल में अनन्त समय हुए हैं, वर्तमान एक समय है और आगामी काल में अनन्त समय होंगे। यह काल द्रव्य है। इसको पहचानो।

२३. भगवान ने काल द्रव्य को निरन्तर उत्पन्न होने की अपेक्षा से शाश्वत कहा है। यह उत्पन्न होता है और विनाश को प्राप्त होता है, इस दृष्टि से इसको अशाश्वत कहा है।

२४. काल द्रव्य शाश्वत नहीं है। यह प्रवाह की तरह निरन्तर उत्पन्न होता है। जो समय उत्पन्न होता है वह विनाश को प्राप्त होता है। प्रवाह रूप से काल का कभी अंत नहीं आता।

२५. सूरज ने चन्द्रमादिक नी चाल थी, समो नीपजें दगचाल जी।
नीपजवा लेखें तो काल सासतों, समयादिक सर्व अधाकाल जी।।

२६. एक समो नीपजें नें विणसे गयो, पछें बीजो समो हुवें ताहि जी।
बीजों विणस्यों तीजों नीपजें, इम अणुक्रमे नीपजता जाय जी।।

२७. काल वरते छें अढाइ धीप में, अढी धीप बारे काल नांहिं जी।
अढी द्वीप बारला जोतषी, एक ठांम रहें त्यांरा त्यांहि जी।।

२८. दो समयादिक भेला हुवे नहीं, तिणसूं काल नें खंध न कह्यों जिणराय जी।
खंध तो हुवें घणा रा समदाय थी, समदाय विण खंध न थाय जी।।

२९. अनंता गए काल समा हूआ, ते एकठा भेला नहीं हूआ कोय जी।
अें तों उपजे नें विणसे गया, तिण रो खंध किहां थकी होय जी।।

३०. आगमे कालें अनंता समां होसी, ते पिण एकठा भेला नहीं कोय जी।
ते तो उपजें ने विललावसी, तिणसूं खंध किसी पर होय जी।।

३१. वरतमांन समो एक काल रो, एक समा रो खंध न होय जी।
ते पिण उपजे नें विले जावसी, काल रो थिर द्रव्य न कोय जी।।

३२. खंध विना देस हुवें नहीं, खंद देस विना नहीं प्रदेस जी।
प्रदेस अलगों नही हुवें खंध थी, परमाणुओ न हुवें लवलेस जी।।

३३. तिणसूं काल नें खंध कह्यों नहीं, वले नहीं कह्यो देस प्रदेस जी।
खंध थी छूटे अलगों पर्यां विना, परमाणूओ कुण कहेस जी।।

२५. सूर्य और चन्द्रमा आदि की गति से समय निरन्तर जलप्रवाह की तरह उत्पन्न होता रहता है। इस उत्पत्ति की दृष्टि से काल शाश्वत है। समय आदि सर्व अद्धा काल की यही बात है।

२६. एक समय उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है कि दूसरा समय उत्पन्न हो जाता है, दूसरे का विनाश होता है कि तीसरा उत्पन्न हो जाता है। इस तरह समय एक के पीछे एक अनुक्रम से उत्पन्न होते जाते हैं।

२७. काल अढाई द्वीप में वर्तन करता है। उसके बाहर काल नहीं है। अढ़ाई द्वीप के बाहर के ज्योतिषी एक जगह स्थिर रहते हैं।

२८. दो आदि समय एकत्रित नहीं होते। इसलिए जिन भगवान ने काल के स्कन्ध नहीं कहा है। स्कंध बहुतों के समुदाय से होता है। समुदाय के बिना स्कंध नहीं होता।

२९. अतीत काल में अनन्त समय हुए हैं। वे तो उपजे और विनष्ट हो गए। वे कभी एक साथ इकट्ठे नहीं हुए, फिर उनका स्कंध कैसे हो?

३०. आगामी काल में भी अनन्त समय होंगे। वे भी एक साथ इकट्ठे नहीं होंगे। वे तो उत्पन्न होंगे और विलीन हो जाएंगे। इसलिए उनका स्कन्ध कैसे हो?

३१. काल का वर्तमान समय एक होता है और एक समय का स्कंध नहीं होता। और वह भी उत्पन्न होकर विलय को प्राप्त हो जाता है। काल का कोई स्थिर द्रव्य नहीं होता।

३२. स्कंध बिना काल के देश नहीं होता। स्कंध और देश के बिना प्रदेश नहीं होता। स्कंध से प्रदेश अलग नहीं होता। इसलिए काल के परमाणु भी नहीं होता।

३३. इसलिए काल के स्कंध नहीं कहा है और न देश और प्रदेश कहे हैं। स्कंध से छूटकर अलग हुए बिना उसको परमाणु कौन कहेगा?

३४. काल ने मापो थाप्यो तीर्थंकरां, चन्द्रमादिक री चाल विख्यात जी।
ते चाल सदा काल सासती, ते वधें घटें नहीं तिलमात जी।।

३५. तिणसुं मापो तीर्थंकर बांधीयो, जिगन समो थाप्यों एक जी।
जगन थित कार्य ने द्रव्य नी, तिणसुं इधका रा भेद अनेक जी।।

३६. असंख्याता समा री थापी आवली, पछें मोहरत पोहर दिन रात जी।
पख मास रित आयन थापीया, दोय अयना रो वरस विख्यात जी।।

३७. इम कहितां कहितां पल सागरू, उतसर्पणी नें अवसर्पणी जांण जी।
जाव पुदगल परावर्तन थापीयों, इम काल द्रव्य नें पिछांण जी।।

३८. इण विध गयो काल नीकल्यों, इम हीज आगमीयों काल जी।
वरतमांन समो पूछें तिण समें, एक समो छें अधाकाल जी।।

३९. ते समों वरतें छें अढी दीप में, तिरछों एती दूर जांण जी।
उंचो वरतें जोतष चक्र लगें, नवसों जोजन परमांण जी।।

४०. नीचो वरतें सहस जोजन लगें, माविदेह री दों विजय रें माहि जी।
त्यांमें वरतें अनंता द्रव्यां उपरें, तिणसुं अनंती कही छें परजाय जी।।

४१. एक एक द्रव्य रे उपरें, एक एक समो गिण्यों ताहि जी।
तिणसुं एक समा नें अनंता कह्या, काल तणी परजाय रे न्याय जी।।

४२. वले कहि कहि नें कितरो कहूं, वरतमांन समो सदा एक जी।
तिण एकण नें अनंता कह्या, तिणनें ओलखों आण विवेक जी।।

४३. ए काल द्रव्य अरूपी तणों, कह्यों छें अलप विस्तार जी।
हिवें पुद्गल द्रव्य रूपी तणों, विस्तार सुणों एक धार जी।।

३४. तीर्थंकरों ने काल का माप चन्द्रमादिक की विख्यात गति से स्थापित किया है। गति सदा शाश्वत रहती है। वह तिलमात्र भी घटती-बढ़ती नहीं।

३५. तीर्थंकरों ने इस गति से काल का माप बांधा है और जघन्य काल एक 'समय' स्थापित किया है। 'समय' कार्य और काल द्रव्य की जघन्य स्थिति है। उससे अधिक काल की स्थिति के अनेक भेद हैं।

३६. असंख्य समय की आवलिका फिर मुहूर्त्त, प्रहर, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और दो अयनों का वर्ष स्थापित किया है।

३७. इस तरह कहते-कहते पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पणी, अवसर्पणी, यावत् पुद्गल परावर्तन स्थापित किए हैं। इस तरह काल द्रव्य को पहचानें।

३८. इस तरह अतीत काल व्यतीत हुआ है। आगामी काल भी इसी तरह व्यतीत होगा। वर्तमान समय में, जब कि पूछा जा रहा हो, एक समय अद्धाकाल है।

३९. वह समय अढाई द्वीप में वर्तन करता है, वह तिरछा अढ़ाई द्वीप प्रमाण तथा ऊंचा ज्योतिष चक्र तक नौ सौ योजन प्रमाण वर्तन करता है।

४०. वह नीचे महाविदेह की दो विजय तक सहस्त्र योजन प्रमाण वर्तन करता है। इन सब में काल अनन्त द्रव्यों पर वर्तन करता है। इससे काल के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

४१. एक-एक द्रव्य पर एक-एक समय गिना गया है। इसलिए काल के पर्याय के न्याय से एक समय को अनन्त कहा गया है।

४२. कह कर मैं कितना बतला सकता हूं। वर्तमान समय सदा एक है। इस एक को ही अनन्त कहा है। उसे विवेक पूर्वक पहचानें।

४३. अरूपी काल द्रव्य का यह संक्षेप में विवेचन किया है। अब रूपी पुद्गल द्रव्य का विस्तार ध्यान पूर्वक सुनो।

४४. पुदगल रा द्रव्य अनंता कह्या, ते द्रव्य तों सासता जांण जी।
भावें तों पुदगल असासतों, तिणरी बुधवंत करजों पिछांण जी।।

४५. पुदगल रा द्रव्य अनंता कह्या, ते घटें वधें नही एक जी।
घटें वधें ते भाव पुदगलु, तिणरा छें भेद अनेक जी।।

४६. तिणरा च्यार भेद जिणवर कह्या, खंध नें देस प्रदेस जी।
चोथो भेद न्यारों परमाणुओं, तिणरों छें ओहीज विशेस जी।।

४७. खंध रे लागो त्यां लग परदेस छें, ते छूटेनें एकलो होय जी।
तिणनें कहीजे परमांणूओं, तिणमें फेर पड्यों नही कोय जी।।

४८. परमाणु नें प्रदेस तुल छें, तिणरी संका मूल म आंण जी।
आंगल रें असंख्यातमें भाग छें, तिणनें ओळखो चतुर सुजांण जी।।

४९. उतकष्टों खंध पुदगल तणों, जब सम्पूर्ण लोक प्रमांण जी।
आंगुल रें भाग असंख्यातमें, जगन खंध एतलों जांण जी।।

५०. अनंत प्रदेसीयो खंध हुवें, एक प्रदेस खेत्र में समाय जी।
ते पुदगल फेंल मोटों खंध हुवें, ते सम्पूर्ण लोक रे माहि जी।।

५१. समचे पुदगल तीन लोक में, खाली ठोर जायगा नही काय जी।
ते आंमा स्हांमा फिर रह्या लोक में, एक ठांम रहें नही ताहि जी।।

५२. थित च्यारूंइ भेदां तणी, जगन तों एक समों छें तांम जी।
उतकष्टी असंख्याता काल नी, ए भावे पुदगल तणा परिणाम जी।।

५३. पुदगल नों सभाव छें एहवों, अनंता गळें नें मिल जाय जी।
तिण सुं पुदगल रा भाव री, अनंती कही परजाय जी।।

४४. पुद्गल के द्रव्य अनन्त कहे गए हैं। उन द्रव्यों को शाश्वत समझें। भावतः पुद्गल अशाश्वत हैं। बुद्धिमान् द्रव्य और भाव पुद्गल की पहचान करें।

४५. पुद्गल के द्रव्य अनन्त कहे गए हैं। वे एक भी घटते-बढ़ते नहीं। घट-बढ़ तो भाव पुद्गलों की होती है, उसके अनेक भेद हैं।

४६. पुद्गल द्रव्य के जिन भगवान ने चार भेद कहे हैं (१) स्कंध (२) देश (३) प्रदेश (४) परमाणु। परमाणु की विशेषता यह है कि

४७. स्कंध से लगा रहता है तब तक प्रदेश होता है और वही प्रदेश जब स्कंध से छूट कर अकेला हो जाता है तब उसको परमाणु कहा जाता है। प्रदेश और परमाणु में केवल इतना-सा ही भेद है और कुछ फर्क नहीं।

४८. परमाणु और प्रदेश तुल्य हैं। उसमें जरा भी शंका न करें। परमाणु अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना होता है। उसको चतुर और विज्ञ लोग पहचानें।

४९. पुद्गल का उत्कृष्ट स्कंध सम्पूर्ण लोक प्रमाण होता है और जघन्य स्कंध अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना होता है।

५०. अनन्त प्रदेशी स्कंध एक आकाश प्रदेश क्षेत्र में समा जाता है और वही पुद्गल स्कंध फैलकर विस्तृत हो सम्पूर्ण लोक प्रमाण हो जाता है।

५१. समष्टि (समुच्चय) रूप में पुद्गल तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त है। कोई भी स्थान नहीं जो पुद्गल से खाली हो। वे पुद्गल लोक में इधर-उधर संचरण कर रहे हैं। वे एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते।

५२. इन चारों ही भेदों की कम-से-कम स्थिति एक समय की और अधिक से अधिक असंख्य काल की है। पुद्गलों के ये परिणाम भाव पुद्गल हैं।

५३. पुद्गल का स्वभाव ही ऐसा है कि अनन्त बिछुड़ते और परस्पर मिल जाते हैं। इसी कारण इन पुद्गलों के भावों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

५४. जे जे वस्तु नीपजें पुदगल तणी, ते ते सगळी विललाय जी।
त्यांनें भावे पुदगल जिणवर कह्या, द्रव्ये तो ज्यूं रा ज्यूं रहें ताहि जी।।

५५. आठ कर्म नें शरीर असासता, अें नीपना हूआ छें ताहि जी।
तिणसूं भाव पुदगल कह्या तेहनें, द्रव्य तों नीपजायों नही जाय जी।।

५६. छाया तावड़ो प्रभा कंत छें, ए सगळा भाव पुदगल जांण जी।
वले अंधारो नें उद्योत छें, ए पुदगल भाव पिछांण जी।।

५७. हळको भारी सुहालो खरदरो, गोल वटादिक पांच संठांण जी।
घड़ा पड़हा नें वस्त्रादिक, ए सगळा भावे पुदगल जांण जी।।

५८. घ्रत गुलादिक दसूं विगें, भोजनादि सर्व वखांण जी।
वले सस्त्र विवध प्रकार ना, ए सगळा भावे पुदगल जांण जी।।

५९. सइकडां मण पुदगल बळ गया, पिण द्रव्ये तों बळ्यों नहीं अंस मात जी।
ए भावे पुदगल उपना हुता, ते भावे पुदगल विणस जात जी।।

६०. सइकडां मण पुदगल उपनां, पिण द्रव्य तों नही उपनो लिगार जी।
उपना तेहीज विणससी, पिण द्रव्य नों नही विगाड़ जी।।

६१. द्रव्य तो कदेइ विणसें नही, तीनोइ काल रे माहि जी।
उपजें नें विणसें ते भाव छें, ते पुदगल री परजाय जी।।

६२. पुदगल नें कह्यों सासतो असासतो, द्रव नें भावे रे न्याय जी।
कह्यों छें उतराधेन छतीस में, तिणमें संका म आंणजो काय जी।।

६३. अजीव द्रव्य ओळखायवा, जोड़ कीधी श्री दुवारा मजार जी।
संवत अठारे पचावनें, वैसाख विद पांचम बुधवार जी।।

५४. पुद्गल से जो वस्तुएं बनती हैं, वे सभी विनाश को प्राप्त हो जाती हैं। इनको भगवान ने भाव पुद्गल कहा है। द्रव्य पुद्गल तो ज्यों-के-त्यों रहते हैं।

५५. आठ कर्म और पांचों शरीर अशाश्वत हैं क्योंकि ये निष्पन्न हुए हैं। इसीलिए इनको भाव पुद्गल कहा गया है। द्रव्य पुद्गल निष्पन्न नहीं किया जा सकता।

५६. छाया, धूप, प्रभा, कान्ति इन सबको भाव पुद्गल जानें। इसी प्रकार अंधकार और उद्योत इनको भी भाव पुद्गल पहचानें।

५७. लघु, गुरु, स्निग्ध और रुक्ष ये चार स्पर्श, गोल, वृत्त आदि पांच संस्थान तथा घट, नगाड़ा और वस्त्र आदि इन सबको भाव पुद्गल जानें।

५८. घृत, गुड़ आदि दसों विकृतियां, भोजन आदि सर्व वस्तुएं तथा नाना प्रकार के शस्त्र इन सबको भाव पुद्गल जानें।

५९. सैंकड़ों मन पुद्गल जल गए, परन्तु द्रव्य पुद्गल तो जरा भी नहीं जला। उत्पन्न और विनष्ट होने वाले भाव पुद्गल होते हैं।

६०. सैंकड़ों मन पुद्गल उत्पन्न हुए, परन्तु द्रव्य पुद्गल किंचित् भी उत्पन्न नहीं हुआ। जो उत्पन्न हुए हैं वे ही विनाश को प्राप्त होंगे परन्तु द्रव्य पुद्गल का विनाश नहीं होगा।

६१. द्रव्य का तीन ही काल में कभी विनाश नहीं होता। जो उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, वे भाव हैं, वे पुद्गल के पर्याय हैं।

६२. उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन में द्रव्य और भाव के न्याय से पुद्गल को शाश्वत और अशाश्वत कहा गया है। उसमें कुछ भी शंका न करें।

६३. अजीव द्रव्य को अवलक्षित कराने के लिए श्रीजीद्वार (नाथद्वारा) में सं. १८५५, वैशाख कृष्णा पंचमी, बुधवार को यह जोड़ सम्पूर्ण की है।

३ : पुन पदार्थ

दुहा

१. पुन पदार्थ छें तीसरो, तिणसूं सुख मानें संसार।
काम भोग शबदादिक पामें तिण थकी, तिणनें लोक जांणे श्रीकार।।

२. पुन रा सुख छें पुदगल तणा, कांम भोग शबदादिक जांण।
ते मीठा लागें छें कर्म तणें वसें, ग्यांनी तों जांणें जेंहर समांन।।

३. जेंहर सरीर में त्यां लगे, मीठा लागें नींब पांन।
ज्यूं कर्म उदें हुवें जीव रें जब, लागे भोग इमरत समांन।।

४. पुन तणा सुख कारमा, तिणमें कला म जांणो काय।
मोह कर्म वस जीवड़ा, तिण सुख में रह्या लपटाय।।

५. पुन पदार्थ तो सुभ कर्म छें, तिणरी मूल न करणी चाहि।
तिणनें जथातथ परगट करूं, ते सुणजों चित्त ल्याय।।

ढाल : ३

(लय रे जीव मोह अनुकम्पा नाणी)

पुन पदारथ ओळखों।।

१. पुन तों पुदगल री परजाय छें, जीव रें आय लागे तांम रे लाल।
ते जीव रें उदें आवे सुभ पणे, तिणसु पुदगल रों पुन छें नांम रे लाल।।

पुण्य पदार्थ

दोहा

१. तीसरा पदार्थ पुण्य है। उससे संसार सुख मानता है। उससे शब्द आदि काम-भोग प्राप्त करते हैं। अतः लोग इसे उत्तम समझते हैं।

२. पुण्य से प्राप्त सुख पौद्गलिक होते हैं। वे कामभोग-शब्द आदि रूप हैं। कर्म की अधीनता के कारण जीव को ये सुख मीठे लगते हैं। ज्ञानी पुरुष इन्हें जहर के समान समझते हैं।

३. जिस तरह जब तक शरीर में विष व्याप्त रहता है तब तक नीम के पत्ते मीठे लगते हैं, उसी तरह कर्म के उदय से जीव को कामभोग अमृत के समान लगते हैं।

४. पुण्य से निष्पन्न होने वाले सुख अर्थहीन हैं। इनमें जरा भी वास्तविकता मत समझो। मोह कर्म की अधीनता से बेचारे जीव नाशवान सुखों में आसक्त हैं।

५. पुण्य पदार्थ शुभ कर्म है। उसकी जरा भी कामना नहीं करनी चाहिए। उसे मैं यथातथ्य प्रकट कर रहा हूं। उसे चित्त लगाकर सुनें।

ढाल : ३

पुण्य पदार्थ को पहचानें।

१. पुण्य पुद्गल का पर्याय है। जो आकर जीव के लगता है। वह जीव के शुभरूप में उदय में आता है। इसलिए पुद्गल का पुण्य नाम है।

२. च्यार कर्म ते एकंत पाप छें, च्यार कम छें पुन नें पाप हो लाल।
पुन कर्म थी जीव नें साता हुवें, पिण न हुवें संताप हो लाल।।

३. अनंता प्रदेस पुन तणा, ते जीव रें उदें हुवें आय हो लाल।
अनंतो सुख करें जीव रें, तिणसु पुन री अनंती परज्याय हो लाल।।

४. निरवद जोग वरतें जब जीव रें, सुभ पणें लागे पुदगल तांम हो लाल।
त्यां पुदगल तणा छें जू जूआ, गुण परिणामें त्यांरा नांम हो लाल।।

५. साता वेदनीय पणें परणम्या, साता पणें उदें आवें तांम हो लाल।
ते सुखसाता करें जीव नें, तिण सूं सातावेदनी दीयों नांम हो लाल।।

६. पुदगल परणम्यां सुभ आउखा पणें, घणो रहणो वांछें तिण ठांम हो लाल।
जाणे जीविये पिण न मरजीये, सुभ आउखो तिणरो नांम हो लाल।।

७. केइ देवता नें केइ मिनख रों, सुभ आउखों पुन ताहि हो लाल।
जुगलीया तिर्यच रो आउखो, दीसें छें पुन रे माहि हो लाल।।

८. सुभ नाम पणे आए परणम्यां, ते उदें आवे जीव रें ताहि हो लाल।
अनेक वांना सुध हुवें तेहसूं, नाम कर्म कह्यों जिणराय हो लाल।।

९. सुभ आउखा रा मिनख नें देवता, त्यांरी गति नें आणपूर्वी सुध हो लाल।
केइ जीव पचिंद्री विसुध छें, त्यांरी जात पिण पुन विसुध हो लाल।।

१०. पांच शरीर छें सुध निरमला, त्यांरा निरमला तीन उपंग हो लाल।
ते पामें शुभ नाम उदें हूआं, सरीर न उपंग सुचंग हो लाल।।

२. चार कर्म एकान्त पाप हैं और चार कर्म पुण्य और पाप दोनों हैं। पुण्य कर्म से जीव को साता मिलती है, कभी दुःख नहीं होता।

३. पुण्य के अनन्त प्रदेश हैं। वे जब जीव के उदय में आते हैं तो उसको अनन्त सुख प्रदान करते हैं। इसलिए पुण्य के अनन्त पर्याय होते हैं।

४. जब जीव के निरवद्य योग का प्रवर्तन होता है तो उसके शुभ रूप में पुद्गलों का बंध होता है। उन पुद्गलों के गुणानुसार अलग-अलग नाम हैं।

५. जो कर्म-पुद्गल साता वेदनीय रूप में परिणमन करते हैं और साता रूप में उदय में आते हैं, वे जीव को सुख-साता प्रदान करते हैं, इसलिए उनका नाम 'साता वेदनीय' रखा गया है।

६. जब पुद्गल शुभ आयु में परिणमन करते हैं तो जीव अपने शरीर में दीर्घ काल तक जीवित रहने की इच्छा करता है और सोचता है कि मैं जीता रहूं, मरूँ नहीं, ऐसे कर्म-पुद्गलों का नाम 'शुभ आयुष्य' है।

७. कई देवता और कई मनुष्यों के शुभ आयुष्य होता है जो पुण्य की प्रकृति है। यौगलिक तिर्यंचों का आयुष्य भी पुण्य रूप प्रतीत होता है।

८. जो कर्म शुभ नाम रूप में परिणत होते हैं तथा विपाक अवस्था में शुभ नाम रूप से उदय में आते हैं उनसे अनेक बातें शुद्ध होती हैं। इसलिए जिन भगवान ने इसको 'शुभ नाम कर्म' कहा है।

९. शुभ आयुष्यवान मनुष्य और देवताओं की गति और आनुपूर्वी शुद्ध होती है। कई पंचेन्द्रिय जीव विशुद्ध होते हैं। उनकी जाति भी पुण्य और विशुद्ध होती है।

१०. शुद्ध निर्मल पांच शरीर और इन शरीरों के तीन निर्मल उपाङ्ग ये सब शुभ नाम कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं। सुन्दर शरीर और उपाङ्ग इसी से होते।

११. पेला संघयण ना रूड़ा हाड छें, पहलों संठाण रूड़ें आकार हो लाल।
ते पामें सुभ नाम उदे थकी, हाड नें आकार श्रीकार हो लाल।।

१२. भला भला वर्ण मिले जीव नें, गमता गमता घणां श्रीकार हो लाल।
ते पामें सुभ नाम उदें हूआं, जीव भोगवें विविध प्रकार हो लाल।।

१३. भला भला मिले गंध जीव नें, गमता गमता घणा श्रीकार हो लाल।
ते पामें सुभ नाम उदे थकी, जीव भोगवे विविध प्रकार हो लाल।।

१४. भला भला मिलें रस जीव नें, गमता गमता घणा श्रीकार हो लाल।
ते पामें सुभ नाम उदें थकी, जीव भोगवें विविध प्रकार हो लाल।।

१५. भला भला मिलें फरस जीव नें, गमता गमता घणा श्रीकार हो लाल।
ते पामें सुभ नाम उदें थकी, जीव भोगवें विविध प्रकार हो लाल।।

१६. तस रो दस कों छें पुन उदें, सुभ नाम उदें सुं जांण हो लाल।
त्यांनें जूआ जूआ करे वरणवूं, निरणों कीजों चतुर सुजांण हो लाल।।

१७. तस नाम शुभ कर्म उदय थकी, तसपणों पामें जीव सोय हो लाल।
बादर सुभ नाम कर्म उदें हूआं, जीव चेतन बादर होय हो लाल।

१८. प्रतेक सुभ नांम उदें हूआं, प्रतेक सरीरी जीव थाय हो लाल।
प्रज्यापता सुभ नांम थी, प्रज्यापतो होय जाय हो लाल।।

१९. सुभ थिर नाम कर्म उदें थकी, सरीर ना अवयव दिढ थाय हो लाल।
सुभ नाम थी नांभ मस्तक लगें, अवयव रूड़ा हूवें ताहि हो लाल।।

२०. सोभाग नाम सुभ कर्म थी, सर्व लोक नें वलभ होय हो लाल।
सुस्वर सुभ नाम कर्म सूं, सुस्वर कंठ मीठो हुवें सोय हो लाल।।

११. पहले संहनन के हाड़ अच्छे (मजबूत) और पहले संस्थान का आकार सुन्दर होता है। वे उत्तम हाड़ और आकार शुभ नाम कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं।

१२. अच्छे-अच्छे, मनोनुकूल और उत्तम वर्ण जीव को शुभ नाम कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं, जिन्हें जीव विविध प्रकार से भोगता है।

१३. अच्छी-अच्छी, मनोनुकूल और उत्तम गंध जीव को शुभ नाम कर्म के उदय से ही प्राप्त होती है, जिन्हें जीव विविध प्रकार से भोगता हैं।

१४. अच्छे-अच्छे, मनोनुकूल और उत्तम रस जीव को शुभ नाम कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं, जिन्हें जीव विविध प्रकार से भोगता है।

१५. अच्छे-अच्छे, मनोनुकूल और उत्तम स्पर्श जीव को शुभ नाम कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं, जिन्हें जीव विविध प्रकार से भोगता है।

१६. शुभ नाम कर्म के उदय से त्रस का दशक पुण्य रूप में उदय में आता है। मैं उसका अलग-अलग वर्णन करता हूं, सुज्ञ और चतुर लोग तत्त्व का निर्णय करें।

१७. 'त्रस शुभ नाम कर्म' के उदय से जीव त्रसावस्था को पाता है। बादर शुभ नाम कर्म के उदय से जीव बादर होता है।

१८. 'प्रत्येक शुभ नाम कर्म' के उदय से जीव प्रत्येक शरीरी होता है। 'पर्याप्त शुभ नाम कर्म' से जीव पर्याप्त होता है।

१९. 'स्थिर शुभ नाम कर्म' के उदय से शरीर के अवयव दृढ़ होते हैं 'शुभ नाम कर्म' से नाभि से मस्तक तक के अवयव सुन्दर होते हैं।

२०. 'सौभाग्य शुभ नाम कर्म' से जीव सर्व लोक-प्रिय होता है, 'सुस्वर शुभ नाम कर्म' से जीव का कंठ सुस्वर और मधुर होता है।

२१. आदेज वचन सुभ करम थी, तिणरों वचन मानें सहू कोय हो लाल।
जस किती सुभ नाम उदें हूआं, जस कीरत जग में होय हो लाल।।

२२. अगरलधू नाम कर्म सूं, सरीर हलकों भारी नही लगात हो लाल।
परघात सुभ नाम उदें थकी, आप जीते पेलों पामें घात हो लाल।।

२३. उसास सुभ नाम उदें थकी, सास उसास सुखे लेवंत हो लाल।
आताप सुभ नाम उदें थकी, आप सीतल पेंलो तपंत हो लाल।।

२४. उद्योत सुभ नाम उदें थकी, सरीर नों उजवालो जांण हो लाल।
सुभ गइ सुभ नाम कर्म सूं, हंस ज्यूं चोखी चाल वखांण हो लाल।।

२५. निरमांण सुभ नाम कर्म सूं, सरीर फोड़ा फूलंगणा रहीत हो लाल।
तीर्थंकर नाम कर्म उदे हूआं, तीर्थंकर हुवें तीन लोक वदीत हो लाल।।

२६. केइ जुगलीयादिक तिरयंच नी, गति नें आंणपूर्वी जांण हो लाल।
ते तों प्रतक दीसें पुन तणी, ग्यांनी वदें ते परमांण हो लाल।।

२७. पेहलो संघेण संठाण वरज नें, च्यार संघेण च्यार संठाण हो लाल।
त्यांमें तो भेल दीसे छें पुन तणो, ग्यांनी वदें तो परमांण हो लाल।।

२८. जे जे हाड छें पहिला संघेण में, तिण मांहिला च्यारा माहि हो लाल।
त्यांनें जाबक पाप में घालीयां, मिलतों न दीसें न्याय हो लाल।।

२९. जे जे आकार पहिला संठाण में, तिण माहिला च्यारां माहि हो लाल।
त्यांनें जाबक पाप में घालीयां, ओ पिण मिलतों न दीसें न्याहि हो लाल।।

२१. 'आदेय वचन शुभ नाम कर्म' से जीव के वचन सबको मान्य होते हैं। 'यश कीर्ति नाम कर्म' के उदय से जगत में यश-कीर्ति प्राप्त होती है।

२२. 'अगुरुलघु शुभ नाम कर्म' से शरीर हल्का या भारी अनुभव नहीं होता है। 'पराघात शुभ नाम कर्म' के उदय से जीव स्वयं विजयी होता है और दूसरा हारता है।

२३. 'श्वासोच्छ्वास शुभ नाम कर्म' के उदय से प्राणी सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लेता है। 'आतप शुभ नाम कर्म' के उदय से जीव स्वयं शीतल होते हुए भी दूसरा (सामने वाला) आतप (तेज) का अनुभव करता है।

२४. 'उद्योत शुभ नाम कर्म' से शरीर शीत प्रकाश युक्त होता है। 'शुभ गति नाम कर्म' से हंस जैसी सुन्दर चाल प्राप्त होती है।

२५. 'निर्माण शुभ नाम कर्म' से शरीर फोड़े फुन्सियों से रहित होता है। 'तीर्थंकर नाम कर्म' के उदय से मनुष्य तीन लोक प्रसिद्ध तीर्थंकर होता है।

२६. यौगलिक आदि कुछ तिर्यंचों की गति और आनुपूर्वी प्रत्यक्ष पुण्य की प्रकृति प्रतीत होती है। फिर जो ज्ञानी कहे वह प्रमाण है।

२७. पहले संस्थान और पहले संहनन के सिवा शेष चार संहनन और संस्थान में पुण्य का मिश्रण प्रतीत होता है। फिर जो ज्ञानी कहे वह प्रमाण है।

२८. जो-जो हाड़ पहले संहनन में है, उनमें से ही जो शेष चार संहननों में है, उनको एकान्त पाप में डालना न्याय संगत प्रतीत नहीं होता।

२९. जो-जो आकार पहले संस्थान में है, उनमें से ही जो आकार बाकी के चार संस्थानों में है, उनको भी एकान्त पाप में डालना न्याय संगत प्रतीत नहीं होता।

३०. उंच गोत पणे आय परणम्या, ते उदें आवें जीव रे तांम हो लाल।
उंच पदवी पामें तिण थकी, उंच गोत छें तिण रों नांम हो लाल।।

३१. सघळी न्यात थकी उंची न्यात छें, तिणमें कठें न लागें छोत हो लाल।
एहवा छें मिनख नें देवता, त्यांरो कर्म छें उंच गोत हो लाल।।

३२. जे जे गुण आवें जीव रे सुभ पणें, जेहवा छें जीव रा नाम हो लाल।
तेहवाइज नांम पुदगल तणा, जीव तणें संयोगें तांम हो लाल।।

३३. जीव सुध हूओ पुदगल थकी, तिणसूं रूड़ा रूड़ा पाया नांम हो लाल।
जीव नें सुध कीधों पुदगलां, त्यांरा पिण सुध छें नांम तांम हो लाल।।

३४. ज्यां पुदगल रा प्रसंग थी, जीव वाज्यों संसार में उंच हो लाल।
ते पुदगल उंच वाजीया, त्यांरो न्याय न जांणे भूंच हो लाल।।

३५. पदवी तिथंकर नें चक्रवत तणी, वासुदेव बलदेव महंत हो लाल।
वले पदवी मंडलीक राजा तणी, सारी पुन थकी लहंत हो लाल।।

३६. पदवी दविंद्र नें नरिंद्र नी, वले पदवी अहमिंद्र वखांण हो लाल।
इत्यादिक मोटी मोटी पदवीयां, सहु पुन तणें परमांण हो लाल।।

३७. जे जे पुदगल परणम्यां सुभ पणें, ते तों पुन उदा सुं जांण हो लाल।
त्यां सुं सुख उपजें संसार में, पुन रा फल एह पिछांण हो लाल।।

३८. बाला विछड़ीया आए मिलें, सेंणां तणों मिलें संजोग हो लाल।
ते पिण पुन तणा परताप थी, सरोर में न व्यापें रोग. हो लाल।।

३०. जो पद्गल-वर्गणा आत्म-प्रदेशों में आकर उच्च गोत्र रूप परिणमन करती हैं और उसी रूप में उदय में आती हैं और जिससे उच्च पदों की प्राप्ति होती हैं, उसका नाम 'उच्च गोत्र कर्म' है।

३१.सबसे उच्च और जिसके कहीं भी छूत नहीं लगी हुई हैं, ऐसी जाति के जो मनुष्य और देवता हैं, उनके उच्च गोत्र कर्म है।

३२. जो-जो गुण जीव के शुभ रूप से उदय में आते हैं, उनके अनुरूप ही जीवों के नाम हैं और जीव के साथ संयोग से वैसे ही नाम पुद्गलों के हैं।

३३. जीव पुद्गल से शुद्ध होकर नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे नाम प्राप्त करता है। जिन पुद्गलों से जीव शुद्ध होता है, उन पुद्गलों के नाम भी शुद्ध हैं।

३४. जिन पुद्गलों के संग से जीव संसार में उच्च कहलाता है, वे पुद्गल भी उच्च कहलाते हैं। इसका न्याय अज्ञानी नहीं समझते।

३५. तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव तथा माण्डलिक राजा की महान पदवियां सब पुण्य के ही कारण मिलती हैं।

३६. देवेन्द्र, नरेन्द्र और अहमिन्द्र आदि की बड़ी-बड़ी पदवियां सब पुण्य के प्रमाण से मिलती हैं।

३७. पुद्गलों का शुभ परिणमन पुण्योदय से ही प्राप्त होता है। पुद्गलों के शुभ परिणमन से संसार में सुख की प्राप्ति होती है। इस तरह सारे सुख पुण्य के ही फल है, यह पहचानें।

३८. पुण्य के ही प्रताप से बिछुड़े हुए प्रियजनों का मिलाप होता है, स्वजनों का संग मिलता है और यह भी पुण्य का ही कारण है कि शरीर में रोग नहीं व्यापता।

३९. हाथी घोड़ा रथ पायक तणी, चोरंगणी सेन्या मिलें आंण हो लाल।
रिध विरध ने सुख संपत मिलें, ते पुन तणें परिमांण हो लाल।।

४०. खेतू वत्थू हिरण सोवनादिक, धन धांन नें कुबीं धात हो लाल।
दोपद चोपदादिक आए मिलै, ते तो पुन तणें परताप हो लाल।।

४१. हीरा मांणक मोती मूंगीया, वले रत्नां री जात अनेक हो लाल।
ते सारा मिलें छें पुन थकी, पुन विना मिलें नहीं एक हो लाल।।

४२. गमती गमती विनेवंत अस्त्री, ते अपछर रे उणीयार हो लाल।
ते पुन थकी आए मिले, वले पुत्र घणा श्रीकार हो लाल।।

४३. ते सुख पांमें देवतां तणा, ते तो पूरा कह्या न जाय हो लाल।
पल सागरां लग सुख भोगवे, ते तो पुन तणे पसाय हो लाल।।

४४. रूप सरीर नों सून्दरपणों, तिणरों वर्णादिक श्रीकार हो लाल।
ते गमतो लागे सर्व लोग नें, तिणरो बोल्यों गमे वारुंवार हो लाल।।

४५. जे जे सुख सगला संसार ना, ते तों पुन तणा फल जांण हो लाल।
ते कहि कहि नें कितरों कहूं, ते बुधवंत लेजों पिछांण हो लाल।।

४६. अें तो पुन तणा सुख वरणव्या, संसार लेखें श्रीकार हो लाल।
त्यांनें मोख सुखां सूं मींढीयें, तों अें सुख नहीं मूल लिगार हो लाल।।

४७. पुदगलीक सुख छें पुन तणा, ते तों रोगीला सुख ताहि हो लाल।
आतमीक सुख छें मुगत नां, त्यांनें तो ओपमा नहीं काय हो लाल।।

४८. पांव रोगी हुवे तेहनें, खाज मीठी लागें अतंत हो लाल।
ज्यूं पुन उदें हूवें जीव नें, सबदादिक सर्व गमता लागंत हो लाल।।

३९. पुण्य के ही प्रताप से हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की चतुरंगिनी सेना प्राप्त होती है। और सब तरह की ऋद्धि, वृद्धि और सुख-सम्पत्ति भी उसी के परिणाम से मिलती है।

४०. क्षेत्र (खुली भूमि), वस्तु (घर आदि), हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, कुंभी धातु, द्विपद, चतुष्पद आदि ये पुण्य के प्रताप से मिलते हैं।

४१. पुण्य से ही हीरे, माणिक, मोती, मूंगे तथा नाना तरह के रत्न प्राप्त होते हैं। बिना पुण्य के इनमें से एक की भी प्राप्ति नहीं होती।

४२. पुण्य से ही मनोनुकूल व विनीत और अप्सरा के सदृश रूपवती स्त्री मिलती है और अनेक उत्तम पुत्र प्राप्त होते हैं।

४३. पुण्य के प्रसाद से ही देवताओं के अनिर्वचनीय सुख मिलते हैं और जीव पल्योपम सागरोपम तक उन्हें भोगता है।

४४. पुण्यवान के रूप-शरीर की सुन्दरता होती है। उसके वर्ण आदि श्रेष्ठ होते हैं। वह सबको प्रिय लगता है। उसका बार-बार बोलना अच्छा लगता है।

४५. संसार में जो-जो सुख हैं उन सबको पुण्य के फल जानें। मैं कह-कह कर कितना वर्णन कर सकता हूं, बुद्धिमान स्वयं पहचान लें।

४६. पुण्य के जो ये सुख बतलाए गए हैं, वे लौकिक (सांसारिक) दृष्टि की अपेक्षा से उत्तम हैं। मुक्ति-सुखों से इनकी तुलना करने से ये बिल्कुल भी सुख नहीं ठहरते।

४७. पुण्य के सुख पौद्गलिक हैं और वे रोगयुक्त हैं। मुक्ति के सुख आत्मिक हैं। उनके लिए कोई उपमा नहीं है।

४८. पाम के रोगी को खाज अत्यन्त मीठी लगती है, उसी तरह पुण्य के उदय होने पर इन्द्रियों के शब्द आदि विषय जीव को प्रिय लगते हैं।

४९. सर्प डंक लागां जहर परगम्यां, मीठा लागे नीब पांन हो लाल।
ज्यूं पुन उदें हूवां जीव नें, मीठा लागें भोग परधांन हो लाल।।

५०. रोगीला सुख छें पुदगल तणा, तिणमें कला म जांणो लिगार हो लाल।
ते पिण काचा सुख असासता, विणसंता नही लागें वार हो लाल।।

५१. आतमीक सुख छें सासता, त्यां सुखां रो नही कोइ पार हो लाल।
ते सुख सदा काल सासता, ते सुख रहें एक धार हो लाल।।

५२. पुन तणी वंछा कीयां, लागें छें एकंत पाप हो लाल।
तिणसु दुख पांमें संसार में, वधतों जाअे सोग संताप हो लाल।।

५३. जिणसु पुन तणी वंछा करी, तिण वांछीया कांम नें भोग हो लाल।
त्यांनें दुःख होसी नरक निगोद ना, वले वाला रा पड़सी विजोग हो लाल।।

५४. पुन तणा सुख असासता, ते पिण करणी विण नहीं थाय हो लाल।
निरवद करणी करे तेहनें, पुन तो सेंहजां लागे छें आय हो लाल।।

५५. पुन री वंछा सु पुन न नीपजें, पुन तों सहजें लागें छें आय हो लाल।
ते तो लागें छें निरवद जोग सूं, निरजरा री करणी सूं ताहि हो लाल।।

५६. भली लेश्या नें भला परिणांम थी, निश्चेंइ निरजरा थाय हो लाल।
जब पुन लागें छें जीव रें, सहजें सभावें ताहि हो लाल।।

५७. जे करणी करें निरजरा तणी, पुन तणी मन में धार हो लाल।
ते तों करणी खोएनें बापड़ा, गया जमारो हार हो लाल।।

५८. पुन तों चोफरसी कर्म छें, तिणरी वंछा करें ते मूंढ हो लाल।
त्यां कर्म नें धर्म न ओळख्यों, करे करे मिथ्यात नीं रूढ हो लाल।।

४९. सर्प के डंक मारने से विष फैलने पर नीम के पत्ते मीठ लगते हैं, उसी तरह पुण्य के उदय होने पर जीव को भोग मीठे और प्रधान लगते हैं।

५०. पुण्य के सुख रोगयुक्त हैं। उनमें जरा भी सार न समझें। वे सुख भी अनित्य और अशाश्वत हैं। इन्हें नष्ट होते देर नहीं लगती।

५१. आत्मिक सुख शाश्वत होते हैं। इन सुखों का कोई अंत नहीं है। ये सुख सर्वकाल में शाश्वत हैं और सदा एक समान रहते हैं।

५२. पुण्य की वांछा करने से एकान्त (केवल) पाप लगता है, जिससे इस लोक में दुःख पाना पड़ता है और जीव के शोक-संताप बढ़ता जाता है।

५३. जिसने पुण्य की वांछा-कामना की है उसने काम भोगों की कामना की है। उसके नरक-निगोद के दुःख होंगे और प्रिय वस्तुओं का वियोग होगा।

५४. पुण्य के सुख अशाश्वत हैं परन्तु वे भी करनी बिना प्राप्त नहीं होते। जो निरवद्य करनी करते हैं उनके पुण्य तो सहज ही आकर लगते हैं।

५५. पुण्य की कामना से पुण्य प्राप्त नहीं होते, पुण्य तो सहज ही आकर लगते हैं। पुण्य निरवद्य योग से तथा निर्जरा की करनी से संचित होते हैं।

५६. भली लेश्या और भले परिणाम से निश्चय ही निर्जरा होती है और निर्जरा के साथ-साथ पुण्य सहज ही स्वाभाविक तौर पर आकर लग जाते हैं।

५७. जो पुण्य की कामना से निर्जरा की करनी करते हैं, वे बेचारे उस करनी को व्यर्थ ही खोकर मनुष्य-जन्म को हारते हैं।

५८. पुण्य चतुःस्पर्शी कर्म है। जो उसकी कामना करते हैं, वे मूढ हैं। मिथ्यात्व की रूढ़ता के कारण उन्होंने कर्म और धर्म के अन्तर को नहीं पहचाना है। केवल मिथ्यात्व की रूढ़ि में पड़े हैं।

५९. जे जे पुन थी वस्त मिलें तके, त्यांनें त्याग्यां निरजरा थाय हो लाल।
जो पुन भोगवें ग्रिधी थकों, तो चीकणा कर्म बंधाय हो लाल।।

६०. जोड़ कीधी पुन ओलखायवा, श्रीजी दुवारा सहर मझार हो लाल।
संवत अठारे पचावनें, जेठ विद नवमी सोमवार हो लाल।।

५९. पुण्य से जो-जो वस्तुएं मिलती हैं, उनको त्यागने से निर्जरा होती है। जो पुण्य फल को गृद्ध होकर भोगता है, उसके चिकने कर्मों का बंध होता है।

६०. यह जोड़ पुण्य तत्त्व का बोध कराने के लिए श्रीजीद्वार (नाथद्वारा) में सं. १८५५, ज्येष्ठ कृष्णा नवमी, सोमवार को की है।

दुहा

१. नव प्रकारे पुन नीपजें, ते करणी निरवद जांण।
बयालीस प्रकारे भोगवें, तिणरी बुधवंत करजों पिछांण।।

२. पुन नीपजें तिण करणी मझे, तिहां निरजरा निश्चें जांण।
तिण करणी री छें जिण आगना, तिण मांहे संक म आंण।।

३. केई साधू वाजे जैन रा, त्यां दीधी जिण मारग नें पूठ।
पुन कहें कुपातर नें दीयां, त्यांरी गई अभिंतर फूट।।

४. काचो पांणी अणगल पावें तेहनें, कहें छें पुन नें धर्म।
ते जिण मारग सूं वेगला, भूला अग्यांनी भर्म।।

५. साध विना अनेरा सर्व नें, सचित अचित दीयां कहे पुन।
वले नांव लेवें ठांणा अंग रो, ते तो पाठ विना छें अर्थ सुन।।

६. किणही एक ठांणा अंग मझे, घाल्यों छें अर्थ विपरीत।
ते पिण सगळी ठांणा अंग में नहीं, जोय करों तहतीक।।

७. पुन नीपजें छें किण विधें, जोवो सूतर माहि।
श्री वीर जिणेसर भाषीयो, ते सुणजो चित्त ल्याय।।

दोहा

१. पुण्य नौ प्रकार से निष्पन्न होता है। उस करनी को निरवद्य जानें। पुण्य बयांलीस प्रकार से भोग में आता है। बुद्धिमान् उसकी पहचान करें।

२. जिस करनी से पुण्य निष्पन्न होता है, उसमें निर्जरा निश्चित होती है, यह जानें। निर्जरा की करनी में जिन-आज्ञा है, इसमें जरा भी शंका न करें।

३. कुछ साधु जैन कहलाते हैं। उन्होंने जिन-मार्ग को पीठ दे दी है। वे कुपात्र को दान देने में पुण्य बतलाते हैं। उनकी आभ्यन्तर आंखे फूट गई है।

४. जो बिना छाना हुआ कच्चा पानी पिलाने में पुण्य और धर्म बतलाते हैं, वे जिन मार्ग से दूर हैं। वे अज्ञानवश भ्रम में भूले हुए हैं।

५. साधु के अतिरिक्त अन्य सबको सचित्त-अचित्त देने में वे पुण्य कहते हैं और (अपने कथन की पुष्टि में) स्थानाङ्ग सूत्र का नाम लेते हैं, परन्तु मूल में ऐसा पाठ न होने से ये अर्थ शून्य-व्यर्थ हैं।

६. ऐसा विपरीत अर्थ भी स्थानाङ्ग की किसी एक प्रति में घुसा दिया गया है, परन्तु सब प्रतियों में नहीं है। देखकर जांच करें।

७. पुण्य उपार्जन किस प्रकार होता है यह सूत्र में देखें। वीर जिनेश्वर ने जो कहा है, उसे चित्त लगाकर सुनें।

ढाल : ४

(लय श्रावक श्री विरधमांन रे लाल......)

पुन नीपजें सूभ जोग सूं रे लाल।।

१. पुन नीपजें सुभ जोग सूं रे लाल, सुभ जोग जिण आगना माहि हो। भवकजण
ते करणी छें निरजरा तणी रे लाल, पुन सहिजां लागें छें आय हो।।भवकजण।।

२. जे करणी करें निरजरा तणी रे लाल, तिणरी आगना देवें जगनाथ हो।
तिण करणी करतां पुन नीपजें रे लाल, ज्यूं खाखलो गोहां रे हुवें साथ हो।।

३. पुन नीपजें तिहां निरजरा हुवें रे लाल, ते करणी निरवद जांण हो।
सावद्य करणी में पुन नही नीपजें रे लाल, ते सुणजो चतुर सुजांण हो।।

४. हिंसा कीयां झूठ बोलीयां रे लाल, साधु नें देवें असुध आहार हो।
तिणसूं अल्प आउखो बंधे तेहनें रे लाल, ते आउखो पाप मझार हो।।

५. लांबो आउखों बंधे तीन बोल सू रे लाल, लांबो आउखो छें पुन माहि हो।
ते हिंसा न करें प्रांणी जीवरी रे लाल, वले बोलें नही मूसावाय हो।।

६. तथारूप श्रमण निग्रंथ नें रे लाल, देवे फासू निरदोष च्यांरू आहार हो।
यां तीनां बोलां पुन नीपजें रे लाल, ठाणा अंग तीजा ठाणा मझार हो।।

७. हिंसा कीयां झूठ बोलीयां रे लाल, साधू नें हेलें निंदें ताहि हो।
आहार अमनोग नें अपीयकारी दीये रे लाल, तो उसभ लांबो आउखो बंधाय हो।।

ढाल : ४

पुण्य शुभ योग से निष्पन्न होता है।

१. शुभ योग जिन-आज्ञा में है। वह निर्जरा की करनी है, उससे पुण्य सहज ही आकर लगते हैं।

२. जिस करनी में निर्जरा होती है, उसकी आज्ञा स्वयं जिन भगवान देते हैं। निर्जरा की करनी करते समय पुण्य अपने आप उत्पन्न (संचय) होता है, जिस तरह गेहूं के साथ भूसा।

३. जहां पुण्य निष्पन्न होता है, वहां निर्जरा होती है। उस करनी को निरवद्य जानें। सावद्य करनी में पुण्य निष्पन्न नहीं होता। चतुर व विज्ञ जन उसे सुनें।

४. हिंसा करने से, झूठ बोलने से तथा साधु को अशुद्ध आहार देने से इन तीन बातों से जीव के अल्प आयुष्य का बंध होता है। यह अल्प आयुष्य पाप कर्म की प्रकृति है।

५-६. जीवों की हिंसा न करना, झूठ नहीं बोलना और तथारूप श्रमण-निर्ग्रन्थों को चारों प्रकार के प्रासुक निर्दोष आहार देना इन तीनों बातों से दीर्घ आयुष्य का बंध होता है। पुण्य निष्पन्न होता है। यह ठाणं सूत्र के तीसरे स्थान (सू. १७-१८) में उल्लिखित है।

७. हिंसा करने से, झूठ बोलने से, साधुओं की अवहेलना और निंदा कर उनको अप्रिय, अमनोज्ञ (अरुचिकर) आहार देने से अशुभ दीर्घ आयुष्य का बंध होता है।

८. सुभ लांबो आउखो बंधे इण विधे रे लाल, ते पिण आउखो पुन माहि हो।
ते हिंसा न करें प्रांणी जीव री रे लाल, वले बोलें नही मूंसावाय हो।।

९. तथारूप समण निग्रंथ नें रे लाल, करें वंदणा नें नमसकार हो।
पीतकारी वेहरावें च्यारू आहार नें रे लाल, ठांणा अंग तीजा ठांणा मझार हो।।

१०. एहीज पाठ भगोती सूतर मझे रे लाल, पांचमें सतक षष्ठम उदेश हो।
संका हुवें तों निरणों करो रे लाल, तिणमें कूड़ नही लवलेश हो।।

११. वंदणा करतां खपावे नीच गोत नें रे लाल, उंच गोत बंधे वले ताहि हो।
ते वंदणा करण री जिण आगना रे लाल, उतराधेन गुणतीसमां माहि हो।।

१२. धर्म कथा कहें तेहनें रे लाल, बंधे किल्याणकारी कर्म हो।
उतराधेन गुणतीसमां अधेन में रे लाल, तिहां पिण निरजरा धर्म हो।।

१३. करें वीयावच तेहनें रे लाल, बंधे तीर्थंकर नाम कर्म हो।
उतराधेन गुणतीसमां अधेन में रे लाल, तिहां पिण निरजरा धर्म हो।।

१४. वीसां बोलां करेनें जीवड़ो रे लाल, करमां री कोड़ खपाय हो।
जब बांधे तीथंकर नाम कर्म नें रे लाल, गिनाता आठमाधेन माहि हो।।

१५. सुबाहू कुमर आदि दस जणा रे लाल, त्यां साधां नें असणादिक वेंहराय हो।
त्यां बांध्यो आउषो मिनख रो रे लाल, कह्यों विपाक सुतर रे मांय हो।।

१६. प्राण भूत जीव सत्व नें रे लाल, दुःख न दें उपजावें सोग नाहि हो।
अझूरणया नें अतीप्पणया रे लाल, अपिट्टणया परिताप नहीं दे ताय हो।।

१७. ए छ प्रकारें बंधें साता वेदनी रे लाल, उलटा कीधां असाता थाय हो।
भगोती सतखंध सातमें रे लाल, छठा उदेसा माहि हो।।

८-९. हिंसा न करना, मृषा न बोलना और तथारूप श्रमण-निर्ग्रंथ को वन्दन-नमस्कार कर चारों प्रकार का प्रीतिकर आहार देना इन तीन कारणों से शुभ दीर्घ आयुष्य का बंध होता है। वह आयुष्य पुण्य के अन्तर्गत है। यह ठाणं सूत्र के तीसरे स्थान (सू. १९-२०) में उल्लिखित है।

१०. यही पाठ भगवती सूत्र के पंचम शतक के षष्ठ उद्देशक में है। किसी को शंका हो तो देखकर निर्णय कर ले। इसमें जरा भी झूठ नहीं है।

११. वंदना करता हुआ जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है और उसके उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सू. ११) वंदना करने की जिन-आज्ञा है।

१२. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सू. २४) में कहा है कि धर्म कथा करता हुआ जीव शुभ कर्म का बंध करता है। साथ ही वहां धर्म कथा से निर्जरा होने का भी उल्लेख है।

१३. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सू. ४४) में यह भी कहा है कि वैयावृत्य करने से तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है। वहां भी निर्जरा धर्म है।

१४. ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन (सू. १८) में उल्लेख है कि जीव बीस उपक्रमों से कर्मों की कोटि का क्षय करता है और तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करता है।

१५. विपाक सूत्र (दूसरा श्रुत स्कंध) में उल्लेख है कि सुबाहु कुमार आदि दस जनों ने साधुओं को अशन आदि देकर मनुष्य आयुष्य का बंधन किया।

१६-१७. भगवती सूत्र के सातवें शतक के छठे उद्देशक में उल्लेख है कि प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख नहीं देने से, शोक उत्पन्न नहीं करने से व न झूराने से, न रुलाने से, न पीटने से और परिताप न देने से इन छः प्रकारों से साता वेदनीय कर्म का बंध होता है और इसके विपरीत आचरण करने से असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है।

१८. करकस वेदनी बंधें जीवरें रे लाल, अठारें पाप सेव्यां बंधाय हो।
नही सेव्यां बंधे अकरकस वेदनी रे लाल, भगोती सातमा सतक छठा मांहि हो।।

१९. कालोदाई पूछ्यों भगवांन नें रे लाल, सुतर भगोती माहि ए रेस हो।
किल्यांणकारी कर्म किण विध बंधे रे लाल, सातमें सतक दसमें उदेश हो।।

२०. अठारें पाप थांनक नही सेवीयां रे लाल, किल्यांणकारी कर्म बंधाय हो।
अठारे पाप थांनक सेवे तेहसूं रे लाल, बंधें अकिल्यांणकारी कर्म आय हो।।

२१. प्राण भूत जीव सत्व नें रे लाल, बहु सबदे च्यारूंई माहि हो।
त्यांरी करें अणुकम्पा दया आणनें रे लाल, दुख सोग उपजावें नाहि हो।।

२२. अझूरणया नें अतिप्पणया रे लाल, अपिट्टणया नें अपरिताप हो।
यां चवदें सूं बंधें साता वेदनी रे लाल, यां उलटां सूं बंधे असाता पाप हो।।

२३. माहा आरंभी नें माहा परिग्रही रे लाल, करें पचिंद्री नीं घात हो।
मद मांस तणो भखण करे रे लाल, तिण पाप सूं नरक में जात हो।।

२४. माया कपट नें गूढ़ माया करे रे लाल, वलें बोलें मूंसावाय हो।
कूड़ा तोला नें मापा करे रे लाल, तिण पाप सूं तिरजंच थाय हो।।

२५. प्रकत रो भद्रीक नें वनीत छें रे लाल, दया नें अमछरभाव जांण हो।
तिणसूं बंधे आउखो मिनख रो रे लाल, ते करणी निरवद पिछांण हो।।

२६. पालें सराग पणें साधूपणो रे लाल, वले श्रावक रा वरत बार हो।
बाल तपसा नें अकांम निरजरा रे लाल, यां सूं पांमें सुर अवतार हो।।

२७. काया सरल भाव सरल सूं रे लाल, वले भाषा सरल पिछांण हो।
जेहवो करें तेहवो मुख सू कहें रे लाल, यां सू बंधें सुभ नाम कर्म जांण हो।।

१८. भगवती सूत्र के सातवें शतक के छठे उद्देशक में उल्लेख है कि अठारह पापों का सेवन करने से कर्कश वेदनीय कर्म का बंध होता है और इन पापों का सेवन न करने से अकर्कश वेदनीय कर्म का बंध होता है।

१९-२०. कालोदाई ने भगवान से प्रश्न किया कि कल्याणकारी कर्मों का बंध कैसे होता है? उत्तर में भगवान ने बतलाता कि अठारह पाप स्थानकों के सेवन नहीं करने से कल्याणकारी कर्म का बंध होता है और इन्हीं अठारह पाप स्थानकों के सेवन से अकल्याणकारी कर्म का बंध होता है। यह रहस्य भगवती सूत्र के सातवें शतक के दशवें उद्देशक में है।

२१-२२. प्राण, भूत, जीव और सत्त्व तथा बहु प्राण, भूत, जीव और सत्त्व इनके प्रति दया लाकर अनुकम्पा करने से, दुःख उत्पन्न नहीं करने से, शोक उत्पन्न नहीं करने से, न झूराने से, न रुलाने से, न पीटने से और परितापना न देने से इस प्रकार चवदह बोलों से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

२३. महा आरम्भ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय जीव की घात तथा मद्य-मांस के भक्षण से पाप-संचय कर जीव नरक में जाता है।

२४. माया, कपट, गूढ़ माया, झूठ बोलना, कूट तोल और कूट माप इस पाप से जीव तिर्यंच होता है।

२५. प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की विनीतता, दया और अमात्सर्य भाव इनसे मनुष्य आयुष्य का बंध होता है। इन क्रियाओं को निरवद्य पहचानें।

२६. सराग अवस्था का साधुपन से तथा श्रावक के बारह व्रत से, बाल तपस्या और अकाम निर्जरा इनसे जीव देवगति में उत्पन्न होता है।

२७-२८. काय की सरलता, भावों की सरलता, भाषा की सरलता तथा कथनी-करनी की समानता से जीव शुभ नामकर्म का बंध करता है। इन्हीं चार बातों की

२८. ए च्यारूं बोल वांका वरतीयां रे लाल, बंधे उसभ नाम कर्म हो।
ते सावद्य करणी छें पाप री रे लाल, तिणमें नही निरजरा धर्म हो।।

२९. जात कुल बल रूप नो रे लाल, तप लाभ सुतर ठाकुराय हो।
ए आठोई मद करे नही रे लाल, तिणसूं उंच गोत बंधाय हो।।

३०. ए आठोई मद करे तेहनें रे लाल, बंधे नीच गोत कर्म हो।
ते सावद्य करणी पाप री रे लाल, तिणमें नहीं पुन धर्म हो।।

३१. ग्यांनावर्णी नें दरसणावर्णी रे लाल, वले मोहणी नें अंतराय हो।
ये च्यारूंइ एकंत पाप कर्म छें रे लाल, त्यांरी करणी नही आग्या माहि हो।।

३२. वेदनी आउखो नांम गोत छें रे लाल, ए च्यारूंई कर्म पुन पाप हो।
तिणमें पुन री करणी निरवद कही रे लाल, तिणरी आग्या दें जिन आप हो।।

३३. ए भगोती सतक आठमें रे लाल, नवमां उदेसा माहि हो।
पुन पाप तणी करणी तणों रे लाल, ते जांणें समदिष्टी न्याय हो।।

३४. करणी करे नीहांणों नही करे रे लाल, चोखा परिणामां समकतवंत हो।
समाध जोग वरतें तेहनों रे लाल, खिमा करी परीसह खमंत हो।।

३५. पांचूं इंद्री नें वस कीयां रे लाल, वले माया कपट रहीत हो।
अपासत्थपणों ग्यांनादिक तणो रे लाल, समणपणें छें सहीत हो।।

३६. हितकारी प्रवचन आठां तणो रे लाल, धर्म कथा कहें विसतार हो।
यां दसां बोलां बंधें जीवरे रे लाल, किल्यांणकारी कर्म श्रीकार हो।।

३७. ते किल्यांणकारी कर्म पुन छें रे लाल, त्यांरी करणी पिण निरवद जांण हो।
ते ठाणा अंग दसमें ठाणें कह्यों रे लाल, तिहां जोय करो पिछांण हो।।

विपरीतता से अशुभ नामकर्म का बंध होता है। यह करनी सावद्य-पाप सहित है। इनसे निर्जरा धर्म नहीं है।

२९-३०. जाति, कुल, बल, रूप, तप, लाभ, सूत्र और ठकुराई (ऐश्वर्य) इन आठों मदों (अभिमानों) के न करने से जीव के उच्च गोत्र का बंध होता है और इन्हीं आठों मदों के करने से नीच गोत्र का बंध होता है। मद करना सावद्य-पाप क्रिया है। इसमें धर्म (निर्जरा) और पुण्य नहीं है।

३१. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चारों एकान्त पाप कर्म हैं। इनकी करनी आज्ञा में नहीं है।

३२. वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चारों कर्म पुण्य और पाप दोनों रूप हैं। उसमें पुण्य की करनी निरवद्य है। उसकी आज्ञा भगवान स्वयं देते हैं।

३३. पुण्य-पाप की करनी का अधिकार (वर्णन) भगवती सूत्र के आठवें शतक के नवें उद्देशक में आया है। उसका न्याय सम्यक्-दृष्टि समझते हैं।

३४-३७. करनी कर निदान (फल की इच्छा) न करने से, शुभ परिणाम युक्त सम्यक्त्व से, समाधि योग में प्रवर्तन से, क्षमापूर्वक परिषह सहन करने से, पांचों इन्द्रियों को वश में करने से, माया और कपट से रहित होने से, ज्ञान आदि की आराधना में शिथिलता न रखने से, श्रमणत्व से, हितकर आठ प्रवचन माताओं से संयुक्त होने से, विस्तार से धर्म-कथा कहने से इन दस बोलों से जीव के उत्तम कल्याणकारी कर्मों का बंध होता है। वे कल्याणकारी कर्म पुण्य हैं और उनकी करनी भी निरवद्य जानें। ये दस बोल ठाणं सूत्र के दसवें स्थान (सू. १३३) में कहे हैं। वहां देखकर पुण्य-करनी की पहचान करें।

३८. अन पुने पांण पुने कह्यों रे लाल, लेण सेण वस्त्र पुन जांण हो।
मन पुने वचन काया पुने रे लाल, नमसकार पुने नवमों पिछांण हो।।

३९. पुन्य बंधे ए नव प्रकार सूं रे लाल, ते नवोई निरवद जांण हो।
ते नवोंई बोलां में जिण आगना रे लाल, तिणरी करजों पिछांण हो।।

४०. कोई कहें नवोंई बोल समचें कह्या रे लाल, सावद्य निरवद ने कह्यां तांम हो।
सचित्त अचित्त पिण नही कह्या रे लाल, पातर कुपातर रो नहीं नांम हो।।

४१. तिणसूं सचित अचित दोनूं कह्या रे लाल, पातर कुपातर नें दीयां तांम हो।
पुन नीपजें दीधां सकल नें रे लाल, ते झूठ बोले सुतर रो ले ले नांम हो।।

४२. साध श्रावक पातर नें दीयां रे लाल, तीथंकर नामादिक पुन थाय हो।
अनेरा नें दांन दीधां थकां रे लाल, अनेरी पुन प्रकत बंधाय हो।।

४३. इम कहें नांम लेई ठांणा अंग नो रे लाल, नवमा ठांणा में अर्थ दिखाय हो।
ते अर्थ अणहूंतों घालीयो रे लाल, ते भोलां ने खबर न काय हो।।

४४. जो अनेरा नें दीयां पुन नीपजें रे लाल, जब टलीयों नही जीव एक हो।
कुपातर नें दीयां पुन किहां थकी रे लाल, समझो आंण ववेक हो।।

४५. पुन रा नव बोल तों समचे कह्या रे लाल, उण ठांमें तों नही छें नीकाल हो।
ज्यूं वंदणा वीयावच पिण समचे कही रे लाल, ते गुणवंत सूं लेजों संभाल हो।।

४६. वंदणा कीधां खपावें नीच गोत नें रे लाल, उंच गोत कर्म बंधाय हो।
तीथंकर गोत बंधें वीयावच कीयां रे लाल, ते पिण समचे कह्या छें ताहि हो।।

३८. अन्न, पान, स्थान, शय्या, वस्त्र, मन, वचन, काया और नमस्कार पुण्य इस तरह नौ पुण्य (भगवान ने) कहे हैं।

३९. पुण्य बंध इन नौ प्रकारों से होता है। इन नवों को ही निरवद्य जानें। इन नवों में ही जिन भगवान की आज्ञा है। उसकी पहचान करें।

४०-४१. कई कहते हैं कि भगवान ने नवों बोल समुच्चय (बिना किसी अपेक्षा भेद के) कहे हैं। सावद्य-निरवद्य, सचित्त-अचित्त, पात्र-अपात्र का भेद नहीं किया है। इसलिए सचित्त-अचित्त दोनों प्रकार के अन्न आदि देने का भगवान ने कहा है, तथा पात्र-कुपात्र दोनों को देने को कहा है, सबको देने में पुण्य है। ऐसा कहने वाले सूत्रों का नाम लेकर झूठ बोलते हैं।

४२. वे कहते हैं कि साधु, श्रावक इन पात्रों को देने से तीर्थंकर नाम आदि पुण्य प्रकृतियों का बंध होता है तथा अन्य लोगों को दान देने से अन्य पुण्य प्रकृति का बंध होता है।

४३. वे ठाणं सूत्र का नाम लेकर ऐसा कहते हैं और नवें स्थान में अर्थ दिखलाते हैं, परन्तु न होता हुआ अर्थ वहां घुसा दिया गया है भोले लोगों को इसकी खबर नहीं है।

४४. यदि 'अन्य को' देने से भी पुण्य होता है तब तो एक भी जीव बाकी नहीं रहता। परन्तु कुपात्र को देने से पुण्य कैसे होगा? यह विवेक पूर्वक समझने की बात है।

४५. पुण्य के नौ बोल समुच्चय (बिना खुलासा) कहे गए हैं, ठाणं सूत्र के ९वें स्थान में कोई निचोड़ नहीं है। इसी तरह वंदना और वैयावृत्य के बोल भी समुच्चय कहे हैं। गुणी जनों से इनका मर्म समझ लें।

४६. वंदना करता हुआ जीव नीच गोत्र को खपाता है और उच्च गोत्र का बंध करता है तथा वैयावृत्य करने से तीर्थंकर गोत्र का बंध करता है। ये भी समुच्चय बोल हैं।

४७. तीर्थंकर गोत बंधे वीस बोल सूं रे लाल, त्यांमें पिण समचें बोल अनेक हो।
समचें बोल घणा छें सिधंत में रे लाल, त्यांमें कुण समझें विगर ववेक हो।।

४८. जो अन पुने समचें दीधां सकल नें रे लाल, ते नवोई समचे जांण हो।
हवें निरणो कहू छूं नवां ही तणों रे लाल, ते सुणजो चतुर सुजांण हो।।

४९. अन सचित अचित दीधां सकल नें रे लाल, जो पुन नीपजें छें तांम हो।
तो इमहीज पुन पांणी दीयां रे लाल, लेंण सयण वसतर पुन आंम हो।।

५०. इमहीज मन पुने समचें हुवें रे लाल, तो मन भूंडोई वरत्यां पुन थाय हो।
वले वचन पुणे पिण समचें हुवे रे लाल, भूंडो बोल्यांई पुन बंधाय हो।।

५१. काय पुने विण समचें हुवे रे लाल, तो काया सूं हिंसा कीयां पुन होय हो।
नमसकार पुने पिण समचें हुवें रे लाल, तो सकल नें नम्यां पुन जोय हो।।

५२. मन वचन काया माठा वरतीयां रे लाल, जो लागें छें एकंत पाप हो।
तो नवोंई बोल इम जांणजो रे लाल, उथप गई समचें री थाप हो।।

५३. मन वचन काया सूं पुन नीपजें रे लाल, ते निरवद वरत्यां होय हो।
तो नवोई बोल इम जांणजो रे लाल, सावद्य में पुन न कोय हो।।

५४. नमसकार अनेरा नें कीयां थकां रे लाल, जो लागें छें एकंत पाप हो।
तो अनादिक सचित दीयां थकां रे लाल, कुण करसी पुन री थाप हो।।

५५. निरवद करणी में पुन नीपजें रे लाल, सावद्य करणी सूं लागें पाप हो।
ते सावद्य निरवद किम जांणीये रे लाल, निरवद में आग्या दे जिण आप हो।।

४७. बीस बातों से तीर्थंकर गोत्र का बंध बतलाया गया है। उनमें भी अनेक बोल समुच्चय हैं। इस प्रकार सिद्धान्त (जैन सूत्रों) में समुच्चय बोल अनेक हैं। बिना विवेक उन्हें कौन समझ सकता है।

४८. यदि सभी को अन्न-दान से अन्न पुण्य होता हो तब तो सभी बोलों के सम्बन्ध में यह बात समझो। अब मैं नवों ही बोलों का निर्णय कहता हूं। चतुर विज्ञ इसको सुनें।

४९. यदि सचित्त-अचित्त सब अन्न सबको देने से पुण्य होता है तब तो पानी, स्थान, शय्या वस्त्र आदि भी सचित्त-अचित्त सब सबको देने से पुण्य होगा।

५०. इसी तरह यदि मन पुण्य भी समुच्चय हो तब तो मन को दुष्प्रवृत्त करने से भी पुण्य होगा तथा वचन पुण्य भी समुच्चय हो तो दुर्वचन से भी पुण्य बंधना चाहिए।

५१. यदि काया पुण्य भी समुच्चय हो तो काया से हिंसा करने पर भी पुण्य होना चाहिए। इसी तरह नमस्कार पुण्य भी समुच्चय हो तो सबको नमस्कार करने से पुण्य होना चाहिए।

५२. अब यदि मन, वचन और काया की दुष्प्रवृत्ति से एकान्त-केवल पाप ही लगता हो तब तो नवों ही बोलों के सम्बन्ध में यह बात जानें। इस प्रकार समुच्चय की बात उठ जाती है।

५३. अब यदि यह मान्यता हो कि मन, वचन तथा काया की निरवद्य प्रवृत्ति से पुण्य होता है। तब नवों ही बोलों के सम्बन्ध में यह समझें। सावद्य से कोई पुण्य नहीं होता।

५४. यदि (पांचों पदों को छोड़कर) अन्य को नमस्कार करने से एकान्त पाप लगता हो तब अन्न आदि सचित्त देने में कौन पुण्य की स्थापना करेगा?

५५. पुण्य निरवद्य करनी से होता है, सावद्य करनी से पाप लगता है। सावद्य और निरवद्य को कैसे जानें? निरवद्य में खुद भगवान आज्ञा देते हैं।

५६. अन पांणी पातर नें वेंहरावीयां रे लाल, लेंण सयण वस्त्र वहराय हो।
त्यांरी श्री जिण देवें आगना रे लाल, तिण ठामें पुन बंधाय हो।।

५७. अन पाणी अनेरा नें दीयां रे लाल, लेंण सेंण वसतर देवे ताहि हो।
त्यांरी देवें नही जिण आगना रे लाल, तिणरें पुन किहां थी बंधाय हो।।

५८. सुपातर में दीयां पुन नीपजें रे लाल, ते करणी जिण आगना माहि हो।
जो अनेरा नें दीयांइ पुन नीपजें रे लाल, तिणरी जिण आगना नही काय हो।।

५९. ठांम ठांम सुतर माहे देखलो रे लाल, निरजरा नें पुन री करणी एक हो।
पुन हुवें तिहां निरजरा रे लाल, तिहां जिण आगना छें वशेष हो।।

६०. नव प्रकारें पुन नीपजें रे लाल, ते भोगवें बयालीस प्रकार हो।
ते पुन उदे हुवे जीवरे रे लाल, सुख साता पामें संसार हो।।

६१. ए पुन तणा सुख कारिमा रे लाल, ते विणसंतां नहीं वार हो।
तिणरी वंछा नही कीजीए रे लाल, ज्यूं पांमो भव पार हो।।

६२. जिण पुन तणी वंछा करी रे लाल, तिण वंछीया कांम भोग हो।
संसार वधें कांम भोग सूं रे लाल, तिहां पांमें जन्म मरण सोग हो।।

६३. वंछा कीजें एक मुगत री रे लाल, ओर वंछा न कीजें लिगार हो।
जे पुन तणी वंछा करें रे लाल, ते गया जमारो हार हो।।

६४. संवत अठारें तयांलेस में रे लाल, काती सुद चोथ विसपतवार हो।
पुन नीपजे ते ओळखायवा रे लाल, जोड़ कीधी कोठारया मझार हो।।

५६. पात्र को अन्न, पानी आदि बहराने तथा स्थान, शय्या, वस्त्र आदि देने की जिन देव आज्ञा देते हैं। उसमें पुण्य का बंध होता है।

५७. कोई अन्न, पानी, स्थान, शय्या व वस्त्र अन्य (अपात्र) को देता है। उसकी जिन भगवान आज्ञा नहीं देते। उसके पुण्य का बन्ध कैसे हो?

५८. सुपात्र को देने से पुण्य निष्पन्न होता है। वह करनी जिन आज्ञा में है। यदि अन्य किसी को देने से भी पुण्य निष्पन्न होता तो उसके लिए जिन-आज्ञा क्यों नहीं है?

५९. स्थान-स्थान पर सूत्र में देख लें कि निर्जरा और पुण्य की करनी एक है। जहां पुण्य होता है, वहां निर्जरा भी होती है। वहां विशेष रूप से जिन-आज्ञा है।

६०. पुण्य नौ प्रकार से निष्पन्न होता है तथा वह बयांलीस प्रकार से भोग में आता है। जीव के पुण्य का उदय होने से वह संसार में सुख-साता प्राप्त करता है।

६१. ये पुण्य के सुख अर्थहीन हैं। उनका विनाश होते देर नहीं लगती। इन सुखों की कभी वांछा नहीं करनी चाहिए, जिससे कि संसार रूपी समुद्र के पार पहुंचा जा सके।

६२. जिसने पुण्य की वांछा की है, उसने कामभोगों को वांछा है। कामभोग से संसार बढ़ता है। वहां प्राणी जन्म, मृत्यु और शोक को प्राप्त करता है।

६३. वांछा तो मुक्ति की करनी चाहिए। अन्य वांछा किंचित भी नहीं करनी चाहिए। जो पुण्य की वांछा करते हैं, वे मनुष्य-भव को हार जाते हैं।

६४. पुण्य निष्पन्न कैसे होता है यह बताने के लिए सं. १८४३, कार्त्तिक शुक्ला ४, गुरुवार को यह जोड़ कोठारया गांव में की है।

४ : पाप पदार्थ

दुहा

१. पाप पदारथ पाडूवों, ते जीव नें घणो भयंकार।
ते घोर रूद्र छें बीहांमणो, जीव नें दुख नों दातार।।

२. पाप तो पुदगल द्रव्य छें, त्यांनें जीव लगाया ताम।
तिण सूं दुख उपजे छें जीव रे, त्यांरो पाप कर्म छें नाम।।

३. जीव खोटा खोटा किरतब करें, जब पुदगल लागें तांम।
ते उदें आयां दुख उपजें, ते आप कमाया कांम।।

४. ते पाप उदें दुख उपजें, जब कोई म करजों रोस।
आप कीधां जिसा फल भोगवें, कोई पुदगल रों नही दोस।।

५. पाप कर्म नें करणी पाप री, दोनूं जूआ जूआ छें तांम।
त्यांनें जथातथ परगट करुं, ते सुणजों राखें चित ठांम।।

ढाल : ५

(लय आ अणुकंपा जिण आगन्या में.......)

पाप कर्म अन्तकरण ओळखी नें।।

१. घणघातीया च्यार कर्म जिण भाष्या, ते अभपडल वादल ज्यूं जांणों।
त्यां जीव तणा निज गुण नें विगरया, चंद वादल ज्यूं जीव कर्म ढंकाणो।।

पाप पदार्थ

दोहा

१. पाप पदार्थ हेय है। वह जीव के लिए अत्यन्त भयंकर है। वह घोर रुद्र डरावना और जीव को दुःख देने वाला है।

२. पाप तो पुद्गल-द्रव्य है। इन पुद्गलों को जीव ने आत्म-प्रदेशों से लगा लिया है। इनसे जीव को दुःख उत्पन्न होता है। अतः इन पुद्गलों का नाम पाप कर्म है।

३. जब जीव बुरे-बुरे कार्य करता है तब ये (पाप कर्म रूपी) पुद्गल आकर्षित हो आत्म-प्रदेशों से लग जाते हैं। उदय में आने पर इन कर्मों से दुःख उत्पन्न होता है। इस तरह जीव के दुःख स्वयंकृत हैं।

४. उस पाप का उदय होने से जब दुःख उत्पन्न हो तो कोई रोष न करे। जीव जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल वह भोगता है। इसमें पुद्गलों का कोई दोष नहीं है।

५. पाप-कर्म और पाप की करनी दोनों अलग-अलग हैं। मैं उन्हें यथातथ्य प्रकट कर रहा हूं। उसे चित्त को स्थिर करके सुनें।

ढाल : ५

पाप कर्म को अन्तःकरण से पहचानें।

१. जिन भगवान ने चार घनघात्य कर्म कहे हैं। इन कर्मों को अभ्रपटल-बादलों की तरह जानें। जिस तरह बादल चन्द्रमा को ढक लेते हैं, उसी प्रकार इन कर्मों ने जीव को आच्छादित कर उसके स्वभाविक गुणों को विकृत कर दिया है।

२. ग्यांनावर्णी नें दर्शणावर्णा, मोहणी अन्तराय छें तांम।
जीवरा जेहवा जेहवा गुण विगरत्या, तेहवा तेहवा कर्मां रा नांम।।

३. ग्यांनावर्णी कर्म ग्यांन आवा न दें, दर्शणावर्णी दर्शण आवे दें नांहि।
मोहकर्म जीव नें करें मतवालों, अंतराय आछी वस्त आडी छें माहि।।

४. अें कर्म तो पुदगल रूपी चोफरसी, त्यानें खोटी करणी करे जीव लगाया।
त्यांरा उदा सूं खोटा खोटा जीवरा नांम, तेहवाइज खोटा नांम कर्म रा कहाया।।

५. यां च्यारूं कर्मां री जूदी जूदी प्रकृत, जूआ जूआ छें त्यांरा नांम।
त्यांसूं जूआ जूआ जीव रा गुण अटक्या, त्यांरो थोड़ो सो विस्तार कहूं छूं तांम।।

६. ग्यांनावर्णी कर्म री प्रक्रत पांचे, तिणसूं पांचोंइ ग्यांन जीव न पावें।
मत ग्यांनावर्णी मत ग्यांन रे आडी, सूरत ग्यांनावर्णी सुरत ग्यांन न आवें।।

७. अवधि ग्यांनावर्णी अवधि ग्यांन ने रोकें, मनपरज्यावर्णी मनपरज्या आडी।
केवल ग्यांनावर्णी केवल ग्यांन रोकें, यां पांचां में पांचमी प्रकत जाडी।।

८. ग्यांनावर्णी कर्म खयउपसम हुवें, जब पामें छें च्यार ग्यांन।
केवल ग्यांनावर्णी तो खय उपसम न हुवें, आ तों खें हुवां पामें केवल ग्यांन।।

९. दर्शणावर्णी कर्म री नव प्रक्रत छें, ते देखवा नें सुणवादिक आडी।
जीव [illegible] कर देवें आंधा, त्यांमें केवल दर्शणावर्णी सगलां में जाडी।।

१०. [illegible] णावर्णी कर्म उदें सूं, जीव चषू रहीत हुवें अंध अयांण।
[illegible] र्शणावर्णी कर्म रे जोगें, च्यारूं इंद्री री परजाअें हांण।।

२. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन कर्मों ने जीव के जैसे-जैसे गुणों को विकृत किया है, वैसे-वैसे इनका नाम है।

३. ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को आने नहीं देता। दर्शनावरणीय कर्म दर्शन को आने से रोकता है। मोहनीय कर्म जीव को मतवाला कर देता है। अन्तराय कर्म अच्छी वस्तु की प्राप्ति में अवरोध पैदा करता है।

४. ये कर्म चतुःस्पर्शी रूपी पुद्गल हैं। जीव ने बुरी करनी कर उनको लगाया है। उनके उदय से जीव के (अज्ञानी आदि) बुरे-बुरे नाम हैं। जो कर्म जैसी बुराई उत्पन्न करता है, उसका नाम भी उसी के अनुसार है।

५. इन चारों कर्मों की अलग-अलग प्रकृति है और उनके अलग-अलग नाम हैं। उनसे जीव के अलग-अलग गुण अवरुद्ध हुए हैं। उनका थोड़ा-सा विस्तार बता रहा हूं।

६-७. ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृतियां हैं। उनसे जीव पांच ज्ञानों को नहीं पाता। मतिज्ञानावरणीय कर्म मतिज्ञान का अवरोधक होता है। श्रुतज्ञानावरणीय कर्म श्रुतज्ञान को नहीं आने देता। अवधिज्ञानावरणीय कर्म अवधिज्ञान को रोकता है। मनःपर्यवावरणीय कर्म मनःपर्यवज्ञान को नहीं होने देता और केवलज्ञानावरणीय कर्म केवलज्ञान को रोकता है। इन पांचों में पांचवीं प्रकृति सबसे अधिक सघन होती है।

८. ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयापेशम होने से जीव चार ज्ञान प्राप्त करता है। केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, उसका क्षय होने से केवलज्ञान प्राप्त होता है।

९. दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियां हैं, जो नाना रूप से देखने और सुनने आदि में बाधा पहुंचाती हैं। ये जीव को बिल्कुल अंधा कर देती हैं। इनमें केवलदर्शनावरणीय कर्म प्रकृति सबसे अधिक सघन होती है।

१०. चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव चक्षुहीन-बिलकुल अंधा और अजानकार हो जाता है। अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के योग से (अवशेष) चार इन्द्रियों की हानि होती है।

११. अवधि दर्शणावर्णी कर्म उदें सूं, अवधि दर्शन न पामें जीवो।
केवल दर्शणावर्णी तणें परसंगें, उपजें नही केवल दरसण दीवो।।

१२. निद्रा सुतो तो सुखे जगायो जागें, निद्रा निद्रा उदें दुख जागें छें तांम।
बैठां उभां जीव नें नींद आवें, तिण नींद तणों छें प्रचला नांम।।

१३. प्रचला प्रचला नींद उदें सूं जीव नें, हालतां चालतां नीद आवें।
पांचमीं नींद छें कठण थीणोदी, तिण नींद सूं जीव जाबक दब जावें।।

१४. पांच निद्रा नें च्यार दर्शणावर्णी थी, जीव अंध हुवें जाबक न सुझें लिगारो।
देखण आश्री दर्शणावर्णी कर्म, जीव रें जाबक कीयों अंधारो।।

१५. दर्शणावर्णी कर्म खयउपसम हुवें जद, तीन खयउपसम दर्शन पांमतों जीवो।
दर्शणावर्णी जाबक खय होवें, केवल दर्शण पांमें ज्यूं घट दीवों।।

१६. तीजो घन घातीयो मोह कर्म छें, तिणरा उदा सूं जीव होवें मतवालो।
सूधी सरधा रें विषे मूढ मिथ्याती, माठा किरतब रो पिण न हुवें टालों।।

१७. मोहणी कर्म तणा दोय भेद कह्या जिण, दर्शण मोहणी नें चारित मोहणी कर्म।
इण जीव रा निज गुण दोय विगाड्या, एक समकत नें दूजों चारित धर्म।।

१८. वले दंसण मोहणी उदें हुवें जब, सुध समकती जीव रों हुवें मिथ्याती।
चारित मोहणी कर्म उदें जब, चारित खोय नें हुवें छ काय रों घाती।।

११. अवधिदर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव अवधिदर्शन को नहीं पाता तथा केवलदर्शनावरणीय कर्म-प्रसंग से केवलदर्शन प्रकट नहीं होता।

१२-१३. जो सोया हुआ प्राणी जगाने पर सहज जागता है उसकी नींद 'निद्रा' है, 'निद्रा-निद्रा' के उदय से जीव कठिनाई से जागता है। बैठे-बैठे, खड़े-खड़े जीव को नींद आती है उसका नाम 'प्रचला' है। जिस निद्रा के उदय से जीव को चलते-फिरते नींद आती है, वह 'प्रचला-प्रचला' है। पांचवी निद्रा 'स्त्यानर्द्धि' है। इससे जीव बिलकुल दब जाता है। यह निद्रा बड़ी कठिन-गाढ़ होती है।

१४. उपर्युक्त पांच निद्राओं तथा चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा केवल इन चार दर्शनावरणीय कर्मों से जीव बिलकुल अंधा हो जाता है उसे बिलकुल दिखाई नहीं देता। देखने की अपेक्षा से दर्शनावरणीय कर्म पूरा अंधेरा कर देता है।

१५. दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से जीव को चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन क्षयोपशम दर्शन प्राप्त होते हैं। इस कर्म के सम्पूर्ण क्षय से केवलदर्शनरूपी दीपक घट में प्रकट होता है।

१६. तीसरा घनघात्य कर्म मोहनीय कर्म है। उसके उदय से जीव मतवाला हो जाता है। इस कर्म के उदय से जीव सच्ची श्रद्धा के विषय में मूढ़ और मिथ्यात्वी होता है तथा उसके बुरे कार्यों का परिहार नहीं होता।

१७. जिन भगवान ने मोहनीय कर्म के दो भेद कहे हैं दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। यह मोहनीय कर्म सम्यक्त्व और चारित्र जीव के इन दोनों स्वाभाविक गुणों को बिगाड़ता है।

१८. जब दर्शनमोहनीय कर्म का उदय होता है तब शुद्ध सम्यक्त्वी जीव भी मिथ्यात्वी हो जाता है। जब चारित्रमोहनीय कर्म उदय में होता है तब जीव चारित्र खोकर छह प्रकार के जीवों का हिंसक बन जाता है।

१९. दर्शण मोहणी कर्म उदें सूं, सुधी सरधा समकत नावें।
दर्शण मोहणी उपसम हुवें जब, उपसम समकत निरमली पावें।।

२०. दर्शण मोहणी जाबक खय होवें, जब खायक समकत सासती पावें।
दर्शण मोहणी खयउपसम हुवें जब, खयउपसम समकत जीव नें आवें।।

२१. चारित मोहणी कर्म उदें सूं, सर्व विरत चारित नही आवें।
चारित मोहणी उपसम हुवें जद, उपसम चारित निरमला पावें।।

२२. चारित मोहणी जाबक खय हुवें तो, खायक चारित आवें श्रीकार।
चारत मोहणी खय उपसम हुवें जब, खयउपसम चारत पांमें च्यार।।

२३. जीव तणा उदें भाव नीपनां, ते कर्म तणा उदा सूं पिछांणों।
जीव रा उपसम भाव नीपनां, ते कर्म तणा उपसम सूं जांणों।।

२४. जीव रा खायक भाव नीपनां, ते तों कर्म तणों खय हुआं सूं तांम।
जीव रा खयउपसम भाव नीपनां, खयउपसम कर्म हुआं सूं नांम।।

२५. जीव रा जेहवा जेहवा भाव नीपनां, ते जेहवा जेहवा छें जीव रा नांम।
ते नांम पाया छें कर्म संजोग विजोगें, तेहवाइज कर्मां री नाम छें तांम।।

२६. चारत मोहणी तणी छें पचवीस प्रकृत, त्यां प्रकृत तणा छें जूआ जूआ नांम।
त्यांरा उदा सूं जीव तणा नांम तेहवा, कर्म नें जीव रा जूआ जूआ परिणांम।।

२७. जीव अतंत उतकष्टों कोध करें जब, जीवरा दुष्ट घणा परिणांम।
तिणनें अनुताणुबंधीयो क्रोध कह्यों जिण, ते कषाय आत्मा छ जीव रो नांम।।

१९-२०. दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से शुद्ध श्रद्धान-सम्यक्त्व नहीं आता। इसका उपशम होने पर जीव निर्मल उपशम सम्यक्त्व पाता है। इस कर्म के बिलकुल क्षय होने पर शाश्वत क्षायक सम्यक्त्व और क्षयोपशम होने पर क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

२१-२२. चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से सर्वविरति रूप चारित्र नहीं आता। इस कर्म का उपशम होने से जीव निर्मल उपशम चारित्र पाता है और इसका सम्पूर्ण क्षय होने से उत्कृष्ट क्षायक चारित्र की प्राप्ति होती है। इसके क्षयोपशम से जीव चार क्षयोपशम चारित्र प्राप्त करता है।

२३-२५. जीव के जो औदयिक भाव निष्पन्न होते हैं वे कर्म के उदय से होते हैं, ऐसा पहचानें। जीव के जो औपशमिक भाव निष्पन्न होते हैं। वे कर्म के उपशम से होते हैं, ऐसा जानें। जीव के जो क्षायिक भाव निष्पन्न होते हैं, वे कर्म के क्षय से होते हैं तथा क्षयोपशम भाव कर्म के क्षयोपशम से। जीव के जो-जो भाव (औदयिक आदि) निष्पन्न होते हैं, उन्हीं के अनुसार जीवों के नाम हैं। कर्मों के संयोग व वियोग से जैसे-जैसे नाम जीवों के पड़ते हैं, वैसे-वैसे उन कर्मों के भी पड़ जाते हैं।

२६. चारित्रमोहनीय कर्म की पच्चीस प्रकृतियां हैं। उन प्रकृतियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। जिस प्रकृति का उदय होता है, उसी के अनुसार जीव का नाम पड़ जाता है। ये कर्म और जीव के भिन्न-भिन्न परिणाम हैं।

२७. जब जीव अत्यन्त उत्कृष्ट क्रोध करता है तो उसके परिणाम भी अत्यन्त दुष्ट होते हैं, ऐसे क्रोध को जिन भगवान ने अनन्तानुबंधी क्रोध कहा है। ऐसे क्रोध वाले जीव का नाम कषाय आत्मा है।

२८. जिणरा उदा सूं उतकष्टों क्रोध करें छें, ते उतकष्टा उदें आया छें तांम।
ते उदें आया छें जीव रा संच्या, त्यांरों अणुताणबंधी क्रोध छें नांम।।

२९. तिणसुं कायंक थोड़ों अप्रत्याख्यानी क्रोध, तिणसुं कायंक थोड़ों प्रत्याख्यांन।
तिणसुं कांयक थोड़ो छें संजल रों क्रोध, आ क्रोध री चोकड़ी कही भगवांन।।

३०. इण रीतें मांन री चोकड़ी कहणी, माया नें लोभ री चोकड़ी इम जांणों।
च्यार चोकड़ी प्रसंगें कर्मां रा नाम, कर्म प्रसंगें जीव रा नांम पिछांणो।।

३१. जीव क्रोध करें क्रोध री परकत सुं, मांन करें छें मांन री प्रकत सुं तांम।
माया कपट करें छें माया री प्रकत सूं, लोभ करें छें लोभ री प्रकत सूं आंम।।

३२. क्रोध करें तिणसुं जीव क्रोधी कहायों, उदें आइ ते क्रोध री प्रकत कहांणी।
इण हीज रीत मांन माया नें लोभ, यांनें पिण लीजों इण हीज रीत पिछांणी।।

३३. जीव हसें छें हास्य री प्रकत उदें सूं, रित अरितरी प्रकत सुं रित अरित वधावें।
भय प्रकत उदें हूआं भय पांमें जीव, सोग प्रकत उदें जीव नें सोग आवें।।

३४. दुगंछा आवें दुगंछा प्रकत उदें सूं, अस्त्री वेद उदें सूं वेदें विकार।
तिणनें पुरष तणी अभिलाषा होवें, पछें वेंतो वेंतो हुवें बोहत विगाड़।।

३५. पुरष वेद उदें अस्ती नीं अभिलाषा, निपुसक वेद उदें हुवें दोंयां री चाहि।
कर्म उदा सुं सवेदी नांम कह्यों जिण, कर्मां नें पिण वेद कह्या जिणराय।।

३६. मिथ्यात उदें जीव हुवों मिथ्याती, चारित मोह उदें जीव हुवो कुकर्मी।
इत्यादिक माठा माठा छें जीव रा नांम, वले अनार्य हिंसाधर्मी।।

२८. जिन कर्मों के उदय से जीव उत्कृष्ट क्रोध करता है, वे कर्म भी उत्कृष्ट रूप से उदय में आए हुए होते हैं। जो कर्म उदय में आते हैं, वे जीव द्वारा ही संचित किए हुए होते हैं। उनका नाम अनन्तानुबन्धी क्रोध है।

२९. अनन्तानुबन्धी क्रोध से कुछ कम अप्रत्याख्यान क्रोध होता है और उससे कुछ कम प्रत्याख्यान क्रोध होता है और उससे कुछ कम संज्वलन क्रोध होता है। जिन भगवान ने यह क्रोध की चौकड़ी बतलाई है।

३०. इसी प्रकार मान की चौकड़ी कहनी चाहिए। माया और लोभ की चौकड़ी भी इसी तरह जानें। इन चार चौकड़ियों के प्रसंग से कर्मों के नाम भी वैसे ही हैं तथा कर्मों के प्रसंग से जीव के नाम भी वैसे ही पहचानें।

३१. जीव क्रोध की प्रकृति से क्रोध, मान की प्रकृति से मान, माया की प्रकृति से माया-कपट और लोभ की प्रकृति से लोभ करता है।

३२. क्रोध करने से जीव क्रोधी कहलाता है और जो प्रकृति उदय में आती है वह क्रोध-प्रकृति कहलाती है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ इनको भी पहचानें।

३३. हास्य-प्रकृति के उदय से जीव हंसता है, रति-अरति प्रकृति के उदय से रति-अरति को बढ़ाता है। भय-प्रकृति के उदय से जीव भय पाता है तथा शोक-प्रकृति के उदय से जीव शोक-ग्रस्त होता है।

३४-३५. जुगुप्सा-प्रकृति के उदय से जुगुप्सा होती है। स्त्री-वेद के उदय से विकार बढ़कर पुरुष की अभिलाषा होती है। यह अभिलाषा बढ़ते-बढ़ते बहुत बिगाड़ कर डालती है। पुरुष-वेद के उदय से स्त्री की और नपुंसक-वेद के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों की अभिलाषा होती है। जिन भगवान ने कर्मों को वेद तथा कर्मोदय से जीव को सवेदी कहा है।

३६. मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव मिथ्यात्वी होता है। चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से जीव कुकर्मी होता है। कुकर्मी, अनार्य, हिंसा-धर्मी आदि हल्के नाम इसी कर्म के उदय से होते हैं।

३७. चोथो घनघातीयों अंतराय करम छें, तिणरी प्रकृत पांच कही जिण तांम।
ते पांचूंई प्रकृत पुदगल चोफरसी, त्यां प्रकत रा छें जू जूआ नांम।।

३८. दानाअंतराय छें दांन रे आडी, लाभाअंतराय सूं वस्त लाभ सकें नांही।
मन गमता पुदगल नां सुख जे, लाभ न सकें शब्दादिक कांई।।

३९. भोगाअंतराय ना कर्म उदें सूं, भोग मिलीया नें भोग भोगवणी नावें।
उवभोगाअंतराय कर्म उदें सूं, उवभोग मिलीया तो ही भोगवणी नही आवें।।

४०. वीर्यअंतराय रा करम उदें थी, तीनूंई वीर्य गुण हीणा थावें।
उठाणादिक हीणा थाअें पाचूंई, जीव तणी सक्त जाबक घट जावें।।

४१. अनंतों बल प्राकम जीव तणों छें, तिणनें एक अंतराय करम सूं घटीयो।
तिण कर्म नें जीव लगायां सु लागों, आप तणों कीयों आप रें उदें आयो।।

४२. पांचूं अन्तराय जीव तणा गुण दाब्या, जेहवा गुण दाब्या छें तेहवा कर्मां रा नांम।
अें तों जीव रें प्रसंगें नांम कर्म रा, पिण सभाव दोयां रों जूजूओं तांम।।

४३. अें तों च्यार घनघातीया कर्म कह्या जिण, हिवें अघातीया कर्म छें च्यार।
त्यांमें पुन नें पाप दोनूं कह्या जिण, हिवें पाप तणों कहूं छूं विसतार।।

४४. जीव असाता पावें पाप करम उदें सूं, तिण पाप रों असाता वेदनी नांम।
जीव रा संचीया जीव नें दुख देवें, असाता वेदनी पुदगल परिणांम।।

३७. चौथा घनघात्य कर्म अन्तराय कर्म है। जिन भगवान ने इसकी पांच प्रकृतियां कही हैं। वे पांचों प्रकृतियां चतुःस्पर्शी पुद्‌गल हैं। उन प्रकृतियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

३८. दानान्तराय प्रकृति दान में विघ्नकारी होती है। लाभान्तराय कर्म के कारण वस्तु का लाभ नहीं हो सकता। मनोज्ञ शब्दादिरूप पौद्‌गलिक सुखों का लाभ नहीं हो सकता।

३९. भोगान्तराय कर्म के उदय से भोग्य वस्तुओं के मिलने पर भी उनका सेवन नहीं हो सकता तथा उपभोगांतराय कर्म के उदय से मिली हुई उपभोग्य वस्तुओं का भी सेवन नहीं हो सकता।

४०. वीर्यान्तराय कर्म के उदय से तीनों ही वीर्य-गुण हीन पड़ जाते हैं। उत्थान आदि पांचों ही हीन हो जाते हैं। जीव की शक्ति बिलकुल घट जाती है।

४१. जीव का बल-पराक्रम अनन्त है। एक अन्तराय कर्म के उदय से जीव ने उसको घटाया है। वह कर्म जीव के लगाने से लगा है। खुद का किया हुआ खुद के ही उदय में आया है।

४२. अंतराय कर्म की पांचों प्रकृतियों ने जीव के गुणों को आच्छादित कर रखा है। आच्छादित गुणों के अनुसार ही कर्मों के नाम हैं। कर्मों के ये नाम जीव के प्रसंग से हैं। परन्तु जीव और कर्म दोनों के स्वभाव अलग-अलग हैं।

४३. जिन भगवान ने ये चार घनघात्य कर्म कहे हैं। अघात्य कर्म भी चार हैं। जिन भगवान ने उनको पुण्य व पाप दोनों प्रकार का कहा है। अब मैं अघात्य पाप कर्मों का विस्तार कर रहा हूं।

४४. जिस पाप कर्म के उदय से जीव असाता-दुःख पाता है, उस पापकर्म का नाम असातावेदनीय कर्म है। जीव के स्वयं के संचित कर्म ही उसे दुःख देते हैं। वह असातावेदनीय कर्म पुद्‌गलों का परिणाम है।

४५. नारकी रों आउखों पाप री प्रकृत, केइ तिर्यंच रों आउखों पिण पाप।
असनी मिनख नें केई सनी मिनख रो, पाप री प्रकत दीसें छें विलाप।।

४६. ज्यारों आउखों पाप कह्यों छें जिणेसर, त्यांरी गति आणुपूर्वी पिण दीसें छें पाप।
गति आणुपूर्वी दीसें आउखा लारें, इणरों निश्चों तों जांणें जिणेसर आप।।

४७. च्यार संघेयण में हाड पाडूआ छें, ते उसभ नांम कर्म उदे सूं जांणों।
च्यार संठाण में आकार भूंडों ते, उसभ नांम कर्म सुं मिलीया छें आंणो।।

४८. वर्ण गंध रस फरस माठा मिलीया, ते अण गमता नें अतंत अजोग।
ते पिण उसभ नाम कर्म उदा सूं, एहवा पुदगल दुखकारी मिलें छें संजोग।।

४९. सरीर उपंग बंधण नें संघातण, त्यांमें केकारे माठा माठा छें अतंत अजोग।
ते पिण उसभ नांम कर्म उदें सूं, अणगमता पुदगल रों मिलें छें संजोग।।

५०. थावर नाम उदें छें थावर रो दस को, तिण दसका रा दस बोल पिछांणो।
नांम करम उदे छें जीव रा नांम, एहवाइज नांम कर्मां रा जांणों।।

५१. थावर नाम करम उदें जीव थावर हूओ, तिण सूं आघों पाछों सरकणी नावें।
सूखम नांम उदें जीव हूओ छें, सूखम सरीर सगलां नांन्हों पावें।।

५२. साधारण नाम सूं जीव साधारण हूवों, एकण सरीर में अनंता रहें तांम।
अप्रज्यापता नांम सूं अप्रज्याप्तो मरे छें, तिण सूं अप्रज्यापतो छें जीव रो नांम।।

४५. नारक जीवों का आयुष्य पाप प्रकृति है, कई तिर्यंचों का आयुष्य भी पाप है। असंज्ञी मनुष्य और कई संज्ञी मनुष्यों का आयुष्य विलापरूप पाप की प्रकृति प्रतीत होता है।

४६. जिन भगवान ने जिनके आयुष्य को पाप कहा है, उनकी गति और आनुपूर्वी भी पाप मालूम देती है। ऐसा मालूम देता है कि गति और आनुपूर्वी आयुष्य के अनुरूप होती है। पर निश्चित रूप से तो जिनेश्वर भगवान ही जानते हैं।

४७. चार संहननों में जो बुरे हाड़ हैं, उन्हें अशुभ नामकर्म के उदय से जानें। इसी प्रकार चार संस्थानों में जो बुरे आकार हैं, वे भी अशुभ नामकर्म के उदय से प्राप्त होते हैं।

४८. अत्यन्त निकृष्ट व अमनोज्ञ, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की प्राप्ति अशुभ नामकर्म के उदय से ही होती है। इस कर्म के उदय से ही ऐसे दुःखकारी पुद्गलों का संयोग मिलता है।

४९. कइयों के शरीर, उपांग, बंधन और संघातन अत्यन्त निकृष्ट होते हैं। वह अमनोज्ञ पुद्गलों का संयोग भी अशुभ नाम कर्म के उदय से होता है।

५०. स्थावर नामकर्म के उदय से स्थावर-दशक होता है। इसके दस बोल हैं। नामकर्म के उदय से जीव के जैसे नाम होते हैं वैसे ही नाम कर्मों के होते हैं।

५१. स्थावर नामकर्म के उदय से जीव स्थावर होता है। उससे आगे-पीछे खिसका नहीं जाता। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जीव सूक्ष्म होता है, जिससे उसे सबसे छोटा सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है।

५२. साधारण शरीर नामकर्म से जीव साधारण-शरीरी होता है। उसके एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं। अपर्याप्त नामकर्म से जीव अपर्याप्त अवस्था में ही मृत्यु प्राप्त करता है। इसी कारण वह जीव अपर्याप्त कहलाता है।

५३. अथिर नांम सूं तो जीव अथर कहाणो, सरीर अथिर जाबक ढीलो पावें।
दुभ नाम उदे जीव दुभ कहाणों, नाभ नीचलो सरीर पाडूओ थावे।।

५४. दुभग नांम थकी जीव हुवें दोभागी, अणगमतो लागें न गमें लोकां नें लिगार।
दुःस्वर नांम थकी जीव हुवो दुस्वरीयों, तिणरो कंठ असुर नही श्रीकार।।

५५. अणादेज नांम करम रा उदा थी, तिणरो वचन कोइ न करें अंगीकार।
अजस नांम थकी जीव हुवो अजसीयों, तिणरो अजस बोलें लोक वारुंवार।।

५६. अपघात नाम कर्म रा उदे थी, पेलो जीते नें आप पांमें घात।
दुभ गंइ नांम कर्म संजोगे, तिणरी चाल किण ही नें दीठी न सुहात।।

५७. नीच गोत उदें नीच हुवो लोकां में, उंच गोत तणा तिणरी गिणे छें छोत।
नीच गोत थकी जीव हर्ष न पांमें, पोता रो संचीयों उदे आयों नींच गोत।।

५८. पाप तणी प्रकत ओलखावण काजे, जोड़ कीधी श्री दुवारा सहर मझार।
संवत अठारे पचावनें वरसें, जेठ सुदि तीज नें वृहसपतवार।।

५३. अस्थिर नामकर्म के उदय से जीव अस्थिर कहलाता है। इससे उसे अस्थिर-बिलकुल ढीला शरीर प्राप्त होता है। अशुभ नामकर्म के उदय से जीव अशुभ कहलाता है। इस कर्म के कारण नाभि के नीचे का शरीर-भाग बुरा होता है।

५४. दुर्भग नामकर्म के उदय से जीव दुर्भागी होता है वह दूसरों को अप्रिय लगता है। किसी को नहीं सुहाता। दुःस्वर नामकर्म से जीव दुःस्वर वाला होता है। उसका कंठ उत्तम नहीं होता।

५५. अनादेय नाम कर्म के उदय से जीव के वचनों को कोई अंगीकार नहीं करता। अयश नाम कर्म के उदय से जीव अयशस्वी होता है। लोग बार-बार उसका अयश बोलते हैं।

५६. अपघात नामकर्म के उदय से दूसरे की जीत होती है और जीव स्वयं घात को प्राप्त होता है। विहायोगति नामकर्म के संयोग से जीव की चाल किसी को भी देखी नहीं सुहाती।

५७. नीच गोत्रकर्म के उदय से जीव लोक में निम्न होता है। उच्च गोत्र वाले उससे छूत करते हैं। नीच गोत्र से जीव हर्ष को प्राप्त नहीं होता। नीच गोत्र अपना किया हुआ ही उदय में आता है।

५८. पाप-प्रकृतियों की पहचान के लिए यह जोड़ श्रीजीद्वार (नाथद्वारा) में सं. १८५५ वर्ष, ज्येष्ठ शुक्ला ३, गुरुवार को की है।

५ : आश्रव पदार्थ

दुहा

१. आश्रव पदार्थ पांचमों, तिणनें कहीजें आश्रव दुवार।
ते कर्म आवाना छें बारणा ते बारणा नें कर्म न्यार।।

२. आश्रव दुवार तों जीव छें जीव रा भला भूंडा परिणांम।
भला परिणांम पुन रा बारणा, भूंडा पाप तणा छें तांम।।

३. केइ मूढ मिथ्याती जीवड़ा, आश्रव नें कहे छें अजीव।
त्यां जीव अजीव न ओलख्या, त्यारें मोटीं मिथ्यात री नीव।।

४. आश्रव तों निश्चेंइ जीव छें, श्री वीर गया छें भाख।।
ठांम ठांम सिधंत में भाषीयों, ते सुणजों सूतर नी साख।।

५. हिवें पाप आवाना बारणा, पहली कहूं छुं तांम।
ते जथातथ परगट करूं, ते सुणों राखे चित ठांम।।

ढाल : ६

(लय विना रा भाव सुण सुण गुंजे......)

१. ठांणा अंग सूतर रे मझार, कह्या छें पांच आश्रव दुवार।
ते दुवार छें माहा विकराल, त्यांमें पाप आवें दगचाल।।

२. मिथ्यात इविरत नें कषाय, परमाद जोग छें ताहि।
ए पांचोइ आश्रव दुवार छें तांम, निश्चें जीव तणा परिणांम।।

आश्रव पदार्थ

दोहा

१. पांचवां पदार्थ आश्रव है। इसको आश्रवद्वार कहा जाता है। आश्रव कर्म आने के द्वार हैं। ये द्वार और कर्म भिन्न-भिन्न हैं।

२. आश्रव द्वार जीव हैं क्योंकि जीव के भले-बुरे परिणाम ही आश्रव हैं। भले परिणाम पुण्य के और बुरे परिणाम पाप के द्वार हैं।

३. कई मूढ़ मिथ्यात्वी जीव आश्रव को अजीव कहते हैं। उन्हें जीव-अजीव की पहचान नहीं। उनके मिथ्यात्व की नींव गहरी है।

४. आश्रव निश्चय ही जीव है। श्री वीर ने ऐसा कहा है। सूत्रों में जगह-जगह ऐसी प्ररूपणा है। अब उन सूत्र-साखों को सुनें।

५. अब मैं पहले आश्रवों का पाप आने के द्वारों का यथातथ्य वर्णन करता हूं। उसे एकाग्रचित्त से सुनो।

ढाल : ६

१. स्थानाङ्ग सूत्र में पांच आश्रव-द्वार कहे गए हैं। ये द्वार महाविकराल हैं। उनसे निरंतर पाप आते रहते हैं।

२. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच आश्रव-द्वार हैं। ये पांचों निश्चय ही जीव के परिणाम हैं।

३. उंधो सरधें ते आश्व मिथ्यात, उंधो सरधें जीव साख्यात।
तिण आश्व नों रूंधणहार, ते समकित संवर दुवार।।

४. अत्याग भाव इविरत छें तांम, जीव तणा माठा परिणांम।
तिण इविरत नें देवें निवार, ते व्रत छें संवर दुवार।।

५. नही त्याग्या छें ज्यां दरबां री, आसा वांछा लगे रही ज्यांरी।
ते इविरत जीव रा परिणांम, तिणनें त्याग्यां हुवें संवर आंम।।

६. परमाद आश्व छें तांम, अें पिण जीव रा मेंला परिणांम।
परमाद आश्व रूंधाय, जब अप्रमाद संवर थाय।।

७. कषाय आश्रव छें आंम, जीव रा कषाय परिणांम।
तिण सूं पाप लागें छें आय, ते अकषाय सूं मिट जाय।।

८. सावद्य निरवद जोग व्यापार, ए पांचूई आश्व दुवार।
रूंधे भला भूंडा परिणांम, अजोग संवर तिणरो नांम।।

९. ए पांचू आश्व उघाड़ा दुवार, कर्म आवे यां दुवार मझार।
दुवार तों जीव ना परिणांम, त्यांसूं कर्म लागे छें तांम।।

१० .यांरा ढांकणा संवर दुवार, आश्व दुवार ना रूंधणहार।
नवा कर्म ना रोकणहार, अें पिण जीव रा गुण श्रीकार।।

११. इमहिज कह्यों चोथा अंग मझारों, पांच आश्व नें संवर दुवारो।
आश्रव करमां रो करता उपाय, कर्म आश्व सू लागें छें आय।।

१२. उतराधेन गुणतीसमा माह्यों, पडिकमणा रों फल वतायो।
व्रतां रा छिद्र ढंकायों, वले आश्व दुवार रूंधायों।।

३. तत्त्व की अयथार्थ प्रतीति करना मिथ्यात्व आश्रव है। अयथार्थ प्रतीति साक्षात् जीव के ही होती है। मिथ्यात्व आश्रव का अवरोध करने वाला सम्यक्त्व संवर-द्वार है।

४. अत्याग-भाव अविरति आश्रव है। अत्याग-भाव जीव के अशुभ परिणाम हैं। इस अविरति को निवारण करने वाली विरति संवर-द्वार है।

५. जिन द्रव्यों का त्याग नहीं किया जाता है, उनकी आशा-वांछा बनी रहती है। यह अविरति जीव का परिणाम है। इसके त्याग से संवर होता है।

६. प्रमाद आश्रव भी जीव का अशुभ परिणाम है। प्रमाद आश्रव के निरोध से अप्रमाद संवर होता है।

७. कषाय आश्रव जीव का कषाय रूप परिणाम है। कषाय आश्रव से पाप लगते हैं। अकषाय से मिट जाते हैं।

८. सावद्य-निरवद्य योगों (व्यापारों) को योग-आश्रव कहते हैं। अच्छे-बुरे परिणामों का अवरोध करना अयोग संवर है। इस प्रकार पांच आश्रव-द्वार हैं।

९. उपर्युक्त पांचों आश्रव उन्मुक्त द्वार हैं, जिनसे कर्मों का आगमन होता है। ये पांचों आश्रव-द्वार जीव के परिणाम हैं और इन परिणामों के कारण कर्म लगते हैं।

१०. आश्रव-रूपी उन्मुक्त द्वार को अवरुद्ध करने (बंद करने) वाले संवर-द्वार हैं। आश्रव-द्वार को रूंधने वाले और नए कर्मों के प्रवेश को रोकनेवाले उत्तम गुण जीव के ही हैं।

११. इसी प्रकार चौथे अंग (समवायांग) में पांच आश्रव-द्वार और पांच संवर-द्वार कहे हैं। आश्रव कर्मों का कर्त्ता, उपाय है। कर्म आश्रव के द्वारा ही आकर लगते हैं।

१२. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सूत्र १२) में प्रतिक्रमण करने का फल व्रतों के छिद्र का रूंधन और आश्रव-द्वार का अवरोध होना बतलाया है।

१३. उतराधेन गुणतीसमा मांह्यों, पचखांण रो फल वतायों।
पचखांण सूं आश्व रूंधायों, आवता करम ते मिट जायों।।

१४. उतराधेन तीसमा रें माह्यों, जलना आगम रूंधायो।
जब पांणी आवतों मिट जावें, ज्यूं आश्व रूंध्यां कर्म नावें।।

१५. उतराधेन उगणीसमा माह्यों, माठा दुवार ढांक्या कह्या ताह्यों।
कर्म आवाना ठांम मिटाय, जब पाप न लागें आय।।

१६. ढांकीया कह्या आश्व दुवार, जब पाप न बंधें लिगार।
कह्यों छें दशवीकालिक मझार, तीजा अधयन में आश्व दुवार।।

१७. रूंधे पांचोइ आश्व दुवार, ते भीखू मोटां अणगार।
ते तो दसवीकालिक मझार, तिहां जोय करों निस्तार।।

१८. पहिला, मनजोग रूंधे ते सुध, पछें वचन काय जोग रूंध।
उतराधेन गुणतीसमा माहि, आश्व रूंधणा चाल्या छें ताहि।।

१९. पांच कह्या छें अधर्म दुवार, ते तो प्रश्नव्याकरण मझार।
वले पांच कह्या संवर दुवार, यां दोयां रो घणों विसतार।।

२०. ठांणा अंग पांचमा ठांणा माहि, आश्व दुवार पडिकमणों ताहि।
पडिकम्यां पाछों रूंधाअें दुवार, फेर पाप न लागें लिगार।।

२१. फूटी नाव रो दिष्टंत, आश्व ओळखायो भगवंत।
भगोती तीजा शतक मझार, तीजें उदेशें छें विसतार।।

१३. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सूत्र १४) में प्रत्याख्यान का फल आश्रव का रुकना नए कर्मों के प्रवेश का बंद होना बतलाया है।

१४. उत्तराध्ययन सूत्र के तीसवें अध्ययन (श्लोक ५,६) में कहा है कि जिस तरह नाले को रोक देने से पानी का आना रूक जाता है, उसी तरह आश्रव के रोक देने से नए कर्म नहीं आते।

१५. उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन (श्लोक ९३) में अशुभ द्वारों को रोकने का उपदेश है। कर्म आने के मार्ग को रोक देने से पाप नहीं लगता।

१६. दशवैकालिक सूत्र के तृतीय अध्ययन (श्लोक ११) में कहा है कि आश्रव-द्वार को बन्द कर देने से पाप कर्म जरा भी नहीं बंधते। (इसका स्पष्ट कथन चतुर्थ अध्ययन (श्लोक ९) में भी प्राप्त होता है।)

१७. जो पांचों आश्रव-द्वारों का निरोध करता है, वह भिक्षु महा- अनगार है। यह उल्लेख दशवैकालिक सूत्र (अध्ययन १०, श्लोक ५) में हैं। इसका निश्चय सूत्र देखकर करो।

१८. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन (सूत्र ७३) में क्रमशः मनोयोग, वचनयोग और काययोग आश्रव के रूंधने की बात आई है। वहां मन, वचन और काय के शुद्ध योगों के संवरण की बात है।

१९. प्रश्नव्याकरण सूत्र में पांच आश्रव-द्वार और पांच संवर-द्वार कहे गए हैं और इन दोनों का वहां बहुत विस्तार से वर्णन है।

२०. स्थानाङ्ग के पांचवें स्थान (५.३.४६७) में आश्रव-द्वार-प्रतिक्रमण का उल्लेख है। प्रतिक्रमण कर लेने पर आश्रव-द्वार बन्द हो जाते हैं, जिससे फिर पाप-कर्म बिलकुल नहीं लगते।

२१-२२. भगवान ने आश्रव को फूटी नौका का उदाहरण देकर समझाया है। इसका विस्तार भगवती सूत्र के तृतीय शतक के तृतीय उद्देशक तथा उसी सूत्र के पहले

२२. वले फूटी नावा रें दिष्टंत, आश्रव ओळखायों भगवंत।
भगोती पहिला सतक मझारे, छठें उदेशें छें विसतार।।

२३. ए तो कह्या छें आश्रव दुवार, वले अनेक छें सूतर मझार।
ते पूरा केम कहवाय, सगलां रों एकज न्याय।।

२४. आश्रव दुवार कह्या ठांम ठांम, ते तो जीव तणा परिणांम।
त्यांनें अजीव कहें मिथ्याती, खोटी सरधा तणा पखपाती।।

२५. कर्मां नें ग्रहें ते जीव दरब, ग्रहे तेहीज छें आश्रव।
ते जीव तणा परिणांम, त्यांसूं कर्म लागें छें तांम।।

२६. जीव नें पुदगल रो मेल, तीजा दरब तणों नही भेल।
जीव लगावें जांण जांण, जब पुदगल लागें छें आंण।।

२७. तेहिज पुदगल छें पुन पाप, त्यांरों करता छें जीव आप।
करता तेहिज आश्रव जांणों, तिणमें संका मूल म आंणो।।

२८. जीव छें कर्मां रो करता, सूतर में पाठ अपरता।
कह्यों पहिला अंग मझारो, जीव करमां रो करतारो।।

२९. ते पहिला इज उदेशों संभालो, ए तों करता कह्यों त्रिहूं कालो।
जीव सरूप नों इधिकार, तीन करणे कह्यों करतार।।

३०. करता तेहिज आश्रव तांम, जीव रा भला भूंडा परिणांम।
परिणांम ते आश्रव दुवार, ते जीव तणों व्यापार।।

३१. करता करणी हेतू नें उपाय, ए कर्मां रा करता कहाय।
यां सूं कर्म लागें छें आय, त्यांनें आश्रव कह्यों जिणराय।।

शतक के छट्ठे उद्देशक में है।

२३. और भी बहुत से सूत्रों में आश्रव-द्वार का वर्णन आया है। वह पूरा कैसे कहा जाए। सबका एक ही न्याय है।

२४. आश्रव द्वार का वर्णन जगह-जगह आया है। आश्रव जीव के परिणाम हैं। उनको जो अजीव कहते हैं, वे मिथ्यात्वी हैं और खोटी श्रद्धा के पक्षपाती हैं।

२५. जो कर्मों को ग्रहण करता है, वह जीव द्रव्य है। कर्म आश्रव के द्वारा ग्रहण होते हैं। ये आश्रव जीव के परिणाम हैं। उनसे कर्म लगते हैं।

२६. जीव और पुद्‌गल का संयोग होता है। और किसी तीसरे द्रव्य का संयोग नहीं होता। जीव जब जानबूझकर पुद्‌गल लगाता है तब ही वे आकर लगते हैं।

२७. इस तरह जो ग्रहण किए हुए पुद्‌गल हैं, वे ही पुण्य या पाप रूप हैं। इन पुण्य और पाप कर्मों का कर्त्ता खुद जीव ही है और जो कर्त्ता है, उसी को आश्रव समझो। इसमें जरा भी शंका मत लाओ।

२८. जीव कर्मों का कर्त्ता है। इस सम्बन्ध में सूत्र में अनेक पाठ मिलते हैं। पहले अंग (आचारांग) में जीव को कर्मों का कर्त्ता कहा है।

२९. पहले अंग के पहले उद्देशक में जीव-स्वरूप का वर्णन आया है। वहां पर जीव को तीनों कालों में कर्त्ता बताया गया है। वहां जीव को त्रिकरण से कर्त्ता कहा है।

३०. आश्रवरूप जीव के भले-बुरे परिणाम ही कर्मों के कर्त्ता हैं। ये परिणाम ही आश्रव-द्वार हैं। वह जीव का व्यापार है।

३१. कर्त्ता, करनी, हेतु और उपाय ये चारों ही कर्मों के कर्त्ता कहलाते हैं। इनसे कर्म आकर लगते हैं। भगवान ने इन्हें आश्रव कहा है।

३२. सावद्य करणी सूं पाप लागें, तिण सूं दुख भोगवसी आगें।
सावद्य करणी नें कहें अजीव, ते तों निश्चें मिथ्याती जीव।।

३३. जोग सावद्य निरवद्य चाल्या, त्यांनें जीव दरब में घाल्या।
जोग आतमा कही छें तांम, जोग नें कह्या जीव परिणांम।।

३४. जोग छें ते जीव व्यापार, जोग छें तेहिज आश्रव दुवार।
आश्रव तेहिज जीव निसंक, तिणमें मूल म जांणो संक।।

३५. लेस्या भली नें भूंडी चाली, त्यांनें पिण जीव दरब में घाली।
लेस्या उदें भाव जीव छें तांम, लेस्या नें जीव परिणांम।।

३६. लेस्या कर्मां सूं आतम लेस, ते तों जीव तणा परदेस।
ते पिण आश्रव जीव निसंक, त्यांरा थानक कह्या असंख।।

३७. मिथ्यात इविरत नें कषाय, उदें भाव छें जीव रा ताहि।
कषाय आत्मा कही छें तांम, यांनें कह्या छें जीव परिणांम।।

३८. ए पांचोइ छें आश्रव दुवार, छें कर्म तणा करतार।
ए पांचू छें जीव साख्यात, तिण में संका नही तिलमात।।

३९. आश्रव जीव तणा परिणांम, नवमें ठांणें कह्यों छें आंम।
जीव रा परिणांम छें जीव, त्यांनें विकल कहें छें अजीव।।

४०. नवमें ठांणें ठांणा अंग माहि, आश्रव करम ग्रहें छें ताहि।
कर्म ग्रहें ते आश्रव जीव, ग्रहीया आवें ते पुदगल अजीव।।

४१. ठांणा अंग दशमें ठांणें, दस बोल उंधा कुण जांणें।
उंधा जांणे तेहिज मिथ्यात, तेहिज आश्रव जीव साख्यात।।

३२. सावद्य करनी से पाप-कर्म लगते हैं, जिससे भविष्य में जीव को दुःख भोगना पड़ता है। सावद्य करनी को जो अजीव कहते हैं, वे निश्चय ही मिथ्यात्वी जीव हैं।

३३. योग सावद्य और निरवद्य दो तरह के कहे गए हैं। उनकी गिनती जीव द्रव्य में की गई है। इसलिए योग आत्मा कही गई है। योगों को जीव-परिणाम कहा गया है।

३४. योग जीव के व्यापार हैं और योग ही आश्रव-द्वार हैं। इस तरह जो आश्रव हैं, वे निःशंक रूप से जीव हैं। इसमें जरा भी शंका मत करो।

३५. लेश्या शुभ और अशुभ कही गयी है। उसे भी जीव द्रव्य में सम्मिलित किया गया है। लेश्या का उदयभाव जीव है, अतः लेश्या जीव का परिणाम है।

३६. लेश्या आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है अर्थात् जीव-प्रदेशों को लिप्त करती है। यह भी आश्रव है जीव है, इसमें शंका नहीं। इसके असंख्यात स्थानक कहे गए हैं।

३७. मिथ्यात्व, अव्रत और कषाय ये जीव के उदयभाव हैं। इसीलिए कषाय आत्मा कही गई है। इनको जीव-परिणाम कहा गया है।

३८. ये (उपरोक्त योग आदि) पांचों आश्रव-द्वार हैं और कर्मों के कर्त्ता हैं। ये पांचों ही साक्षात् जीव हैं। इसमें जरा भी शंका नहीं है।

३९. आश्रव जीव के परिणाम हैं, ऐसा स्थानाङ्ग के नवें स्थानक (गा. ३९,४०) में कहा है। जीव के परिणाम जीव होते हैं, उन्हें अज्ञानी अजीव कहते हैं।

४०. स्थानाङ्ग सूत्र के नवें स्थानक में जो कर्मों को ग्रहण करता है, उसे आश्रव कहा है। जो कर्मों को ग्रहण करता है, वह आश्रव जीव है। जो ग्रहण होकर आते हैं, वे पुद्गल अजीव हैं।

४१. स्थानाङ्ग सूत्र के दसवें स्थानक में दस बोल कहे हैं। इन बोलों को उल्टा कौन श्रद्धता है ? जा उल्टा श्रद्धता है, वह मिथ्यात्व आश्रव साक्षात् जीव है।

४२. पांच आश्व नें इविरत तांम, माठी लेस्या तणा परिणांम।
माठी लेस्या तो जीव छें ताहि, तिणरा लखण अजीव किम थाय।।

४३. जीव नें लखणां सूं पिछांणो, जीव रा लखण जीव जांणों।
जीव रा लखण नें अजीव थापें, ते तों वीर ना वचन उथापें।।

४४. च्यार सगन्या कही जिणराय, ते पिण पाप तणा छें उपाय।
पाप रों उपाय ते आश्रव, ते आश्रव जीव दरब।।

४५. भला नें भूंडा अधवसाय, त्यांनें आश्व कह्या जिणराय।
भला सूं तो लागें छें पूंन, भूंडा सूं लागे पाप जबूंन।।

४६. आरत नें रुद्र ध्यांन, त्यांनें आश्व कह्या भगवांन।
आश्व पाप तणा छें दुवार, दुवार तेहिज जीव व्यापार।।

४७. पुन नें पाप आवाना दुवार, ते कर्म तणा करतार।
करमां रो करता आश्व जीव, तिणनें कहें अग्यांनी अजीव।।

४८. जे आश्व नें अजीव जांणें, ते पीपल बांधी मूर्ख ज्यूं तांणें।
कर्म लगावें ते आश्व, ते निश्चेंइ जीव दरब।।

४९. आश्व नें कह्यों रूंधाणो, आ जिणजी रा मुख री वांणों।
ओं कीसों दरब रूंधाणों, कीसो दरब थिर थपांणों।।

५०. विपरीत तत्व कुण जांणें, कुण मांडे उलटी ताणें।
कुण हिंसादिक रो अत्यागी, कुण री वंछा रहें लागी।।

५१. सबदादिक कुण अभिलाखें, कषाय भाव कुण राखें।
कुण मन जोग रो व्यापार, कुण चिन्तवें म्हारें थार।।

४२. पांच आश्रव और अविरति अशुभ लेश्या के परिणाम हैं। अशुभ लेश्या जीव है। उसके लक्षण अजीव कैसे हो सकते हैं ?

४३. जीव की पहचान उसके लक्षणों से करो। जीव के लक्षणों को जीव समझो। जो जीव के लक्षणों को अजीव स्थापित करता है, वह वीर के वचनों का उत्थापन करता है।

४४. जिनेश्वर ने चार संज्ञाएं कही हैं। वे भी पाप आने की हेतु-उपाय हैं। पाप का उपाय आश्रव है और जो आश्रव है, वह जीव द्रव्य है।

४५. जिनेश्वर ने शुभ और अशुभ इन दोनों अध्यवसायों को आश्रव कहा है। भले अध्यवसाय से पुण्य और बुरे अध्यवसाय से निकृष्ट पाप लगते हैं।

४६. आर्त्त और रौद्र-ध्यान को भगवान ने आश्रव कहा है। आश्रव पाप कर्म आने के द्वार हैं और जो द्वार हैं, वे जीव के व्यापार हैं।

४७. जो पुण्य और पाप के आने के द्वार हैं, वे कर्मों के कर्त्ता हैं। कर्मों का कर्त्ता आश्रव जीव है। अज्ञानी उसको अजीव कहते हैं।

४८. जो आश्रव को अजीव जानता है, वह मूर्ख की तरह पीपल को बांध कर खींचता है। जो कर्मों को लगाते हैं, वे आश्रव हैं और वे निश्चय ही जीव द्रव्य हैं।

४९. स्वयं भगवान ने अपने मुंह से आश्रव को रूंधना कहा है। आश्रव रूंधने से कौनसा द्रव्य रूंधता है और कौनसा द्रव्य स्थिर रहता है ?

५०. तत्त्व को विपरीत कौन जानता है और कौन उल्टी-मिथ्या खींचातान करता है ? हिंसा आदि का अत्यागी कौन होता है ? किसके आशा-वांछा लगी रहती है ?

५१. शब्दादिक भोगों की अभिलाषा कौन करता है ? कषाय भाव कौन रखता है ? मनोयोग किसके होता है ? और कौन अपनी-परायी सोचता है ?

५२. इंद्रा नें कुण मोकली मेलें, सबदादिक नें कुण झेलें।
इणनें मोकली मेले ते आश्व, तेहिज छें जीव दरब।।

५३. मुख सूं कुण भूंडा बोलें, काया सूं कुण माठो डोलें।
ए जीव दरब नो व्यापार, पुदगल पिण वरते छें लार।।

५४. जीव रा चलाचल प्रदेस, त्यांनें थिर थापें दिढ करेस।
जब आश्व दरब रूंधाणो, तब तेहिज संवर थपांणों।।

५५. चलाचल जीव परदेस, सारा परदेसां कर्म प्रवेस।
सारा प्रदेसां कर्म ग्रहता, सारा प्रदेसां कर्मां रा करता।।

५६. त्यां प्रदेसां रो थिर करणहार, तेहीज संवर दुवार।
अथिर प्रदेस ते आश्व, ते निश्चेंइ जीव दरब।।

५७. जोग परिणामीक नें उदें भाव, त्यांनें जीव कह्या इण न्याव।
अजीव तों उदें भाव नांही, ते देखलो सूतर मांही।।

५८. पुन निरवद जोगां सूं लागे छें आय, ते करणी निरजरा री छें ताहि।
पुन सहजां लागें छें आय, तिणसुं जोग छें आश्व माहि।।

५९. जे जे संसार नां छें कांम, त्यांरा किण किण रा कंहू नांम।
ते सगळा छें आश्व तांम, ते सगळा छें जीव परिणांम।।

६०. कर्मां नें लगावें ते आश्व, तेहीज आश्व जीव दरब।
लागें ते पुदगल अजीव, लगावें ते निश्चेंइ जीव।।

६१. कर्मां रो करता जीव दरब, करतापणों तेहीज आश्व।
कीधा हुआ ते कर्म कहिवाय, ते तों पुदगल लागें छें आय।

५२. इंद्रियों को कौन प्रवृत्त करता है, शब्दादिक को कौन ग्रहण करता है? इन्द्रियों की प्रवृत्ति आश्रव है और जो आश्रव है, वह जीव द्रव्य है।

५३. मुख से कौन बुरा बोलता है? शरीर से कौन बुरी क्रियाएं करता है? ये सब कार्य जीव द्रव्य के व्यापार हैं और पुद्गल इनके अनुगामी हैं।

५४. जीव के प्रदेश चलाचल (चंचल) होते हैं। उनको दृढ़तापूर्वक स्थिर करने से आश्रव द्रव्य का निरोध होता है। और तभी संवर द्रव्य कायम होता है।

५५. जीव के प्रदेश चलाचल (चंचल) होते हैं। सर्व प्रदेशों से कर्मों का नाश होता है। सर्व प्रदेश कर्म ग्रहण करते हैं। सर्व प्रदेश कर्मों के कर्त्ता हैं।

५६. इन प्रदेशों को स्थिर करने वाला ही संवर-द्वार है। अस्थिर प्रदेश आश्रव हैं और वे निश्चय ही जीव द्रव्य हैं।

५७. योग पारिणामिक और उदयभाव है इसीलिए योग को जीव कहा है। अजीव तो उदयभाव नहीं होता, इसे सूत्र में देखें।

५८. पुण्य का आगमन निरवद्य योग से होता है। निरवद्य करनी निर्जरा की हेतु है। पुण्य तो सहज ही आकर लगते हैं। इसलिए योग को आश्रव में डाला है।

५९. संसार के जो-जो काम हैं, वे सब आश्रव हैं जीव के परिणाम हैं। उनकी क्या गिनती कराऊं?

६०. कर्मों को लगाने वाला पदार्थ आश्रव है और आश्रव जीव द्रव्य है। जो आकर लगते हैं, वे अजीव कर्म-पुद्गल हैं। और जो कर्म लगाता है, वह निश्चय ही जीव है।

६१. कर्मों का कर्त्ता जीव द्रव्य है। यह कर्म-कर्तृत्व ही आश्रव है। जो किए जाते हैं, वे कर्म कहलाते हैं। वे पुद्गल हैं, जो आ-आ कर लगते हैं।

६२. ज्यारें गूंढ मिथ्यात अंधारो, ते नही पिछांणे आश्‍व दुवारो।
ज्यांनें संवली तों मूल न सूझें, दिन दिन इधिक अलूझें।।

६३. जीव रें कर्म आडा छें आठ, ते लग रह्या पाटां नें पाट।
ज्यांमें घातीया कर्म छें च्यार, मोख मारग रोकणहार।।

६४. ओर कर्मां सूं जीव ढंकाय, मोह कर्म थकी विगडाय।
विगड्यों करें सावद्य व्यापार, तेहीज आश्‍व दुवार।।

६५. चारित मोह उदें मतवालों, तिणसूं सावद्य रो न हुवें टालों।
सावद्य रो सेवणहारों, तेहीज आश्‍व दुवारों।।

६६. दंसण मोह उदें सरधें उंधों, हाथे मारग न आवें सूधो।
उंधी सरधा रो सरदणहारो, ते मिथ्यात आश्‍व दुवारो।।

६७. मूढ कहें आश्‍व नें रूपी, वीर कह्यों आश्‍व नें अरूपी।
सूतरां में कह्यों ठांम ठांम, आश्रव नें अरूपी तांम।।

६८. पांच आश्‍व नें इविरत तांम, माठी लेस्या तणा परिणांम।
माठी लेस्या अरूपी छें ताहि, तिणरा लखण रूपी किम थाय।।

६९. उजला नें मेलां कह्या जोग, मोह कर्म संजोग विजोग।
उजला जोग मेला थाय, करम झरीयां उजल होय जाय।।

७०. उतराधेन गुणतीसमा माहि, जोग सचे कह्यों जिणराय।
जोग सचे निरदोष में चाल्या, त्यांनें साधां रा गुण माहे घाल्या।।

६२. जिनके गाढ़ मिथ्यात्व का अंधेरा है, वे आश्रव-द्वार को नहीं पहचानते। उनको बिलकुल ही सुलटा नहीं दीखता। वे दिन-दिन अधिक उलझते जाते हैं।

६३. जीव को आठ कर्म घेरे हुए हैं। वे प्रवाह रूप से जीव के अनादि काल से लगे हुए हैं। उनमें चार कर्म घाती हैं, जो मोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं होने देते।

६४. अन्य कर्मों से तो जीव आच्छादित होता है, परन्तु मोहकर्म से जीव बिगड़ता है। बिगड़ा हुआ जीव सावद्य व्यापार करता है। वे ही आश्रव-द्वार हैं।

६५. चारित्र मोह के उदय से जीव मतवाला हो जाता है, जिससे सावद्य कार्यों से अपना बचाव नहीं कर सकता। जो सावद्य कार्यों का सेवन करने वाला है, वही आश्रव-द्वार है।

६६. दर्शन मोह के उदय से जीव विपरीत श्रद्धा करता है। उसके सच्चा मार्ग हाथ नहीं आता। विपरीत श्रद्धा करने वाला ही मिथ्यात्व आश्रव-द्वार है।

६७. मूढ़ जन आश्रव को रूपी कहते हैं। भगवान महावीर ने आश्रव को अरूपी कहा है। सूत्रों में जगह-जगह आश्रव को अरूपी कहा है।

६८. पांच आश्रव और अव्रत को अशुभ लेश्या का परिणाम कहा है। अशुभ लेश्या अरूपी है। उसके लक्षण रूपी किस तरह होंगे?

६९. मोहकर्म के संयोग और वियोग से योग क्रमशः मलिन और उजले कहे गए हैं। मोह कर्म के संयोग से उज्ज्वल योग मलिन हो जाते हैं। कर्मों की निर्जरा से अशुभ योग उज्ज्वल हो जाते हैं।

७०. उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में जिन भगवान ने योग-सत्य का उल्लेख किया है। 'योग-सत्य' निर्दोष है। उसको साधुओं के गुणों के अन्तर्गत किया है।

७१. साधां रा गुण छें सुध मांन, त्यांनें अरूपी कह्या भगवान।
त्यां जोग आश्रव नें रूपी थाप्या, त्यां वीर नां वचन उथाप्या।।

७२. ठांणा अंग तीजा ठांणा मझार, जोग वीर्य रो व्यापार।
तिणसूं अरूपी छें भाव जोग, रूपी सरधें ते सरधा अजोग।।

७३. जोग आतमा जीव अरूपी, त्यां जोगां नें मूंढ कहें रूपी।
जोग जीव तणा परिणांम, ते निश्चें अरूपी छें तांम।।

७४. आश्रव जीव सरधावण ताहि, जोड़ कीधी छें पाली माहि।
समत अठारें पंचावना मझार, आसोज सुदि बारस रिववार।।

७१. साधुओं के गुणों को शुद्ध मानो। उनको भगवान ने अरूपी कहा है। जिसने योग आश्रव को रूपी स्थापित किया है, उसने वीर के वचनों को उत्थापित किया है।

७२. भावयोग वीर्य का ही व्यापार है इसलिए अरूपी है। स्थानाङ्ग सूत्र के तृतीय स्थानक में ऐसा कहा है। उसे जो रूपी श्रद्धता है, उसकी श्रद्धा अयथार्थ है।

७३. योग आत्मा जीव है। अरूपी है। उन योगों को मूढ़ रूपी कहते हैं। योग जीव के परिणाम हैं और परिणाम निश्चय ही अरूपी हैं।

७४. आश्रव को जीव श्रद्धाने के लिए यह जोड़ पाली शहर में सं. १८५५, आश्विन शुक्ला द्वादशी, रविवार को की है।

दुहा

१. आश्रव कर्म आवानां बारणा, त्यांनें विकल कहें छें कर्म।
कर्म दुवार नें कर्म एकहिज कहे, ते भूला अग्यांनी भर्म।।

२. कर्म नें आश्रव छें जूजूआ, जूओं जूओ छें त्यांरो सभाव।
कर्म नें आश्रव एकहिज कहें, तिणरो मूढ न जांणें न्याव।।

३. वले आश्रव नें रूपी कहें, आश्रव नें कहें कर्म दुवार।
दुवार नें दुवार में आवे तेहनें, एक कहें छें मूढ गिवार।।

४. तीन जोगां नें रूपी कहें, त्यांनें इज कहें आश्रव दुवार।
वले तीन जोगां नें कहें कर्म छें, ओ पिण विकलां रें नही छें विचार।।

५. आश्रव नां वीस भेद छें, ते जीव तणी परज्याय।
कर्म तणा कारण कह्या, ते सुणजों चित ल्याय।।

ढाल : ७

(लय चतुर विचार करें नें देखो)

आश्रव ने अजीव कहें ते अग्यांनी।।

१. मिथ्यात आश्रव तों उंधो सरधें ते, उंधो सरधें ते जीव साख्यातो रे।
तिण मिथ्यात आश्रव नें अजीव सरधें छें, त्यांरा घट माहे घोर मिथ्यातो रे।।

दोहा

१. आश्रव कर्म आने के द्वार हैं, परन्तु मूर्ख आश्रव को कर्म बतलाते हैं। जो कर्म-द्वार और कर्म को एक बतलाते हैं, वे अज्ञानी भ्रम में भूले हुए हैं।

२. कर्म और आश्रव अलग-अलग हैं। उनके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। जो मूढ़ जन इसका न्याय नहीं जानते, वे कर्म और आश्रव को एक बतलाते हैं।

३. एक ओर तो वे आश्रव को रूपी बतलाते हैं और दूसरी ओर उसे कर्म आने का द्वार कहते हैं। द्वार और द्वार में होकर जो आता है उसको मूढ़ अज्ञानीजन एक कहते हैं।

४. वे तीनों योगों को रूपी कहते हैं और फिर उन्हीं को आश्रव द्वार कहते हैं। फिर तीन योगों को वे कर्म कह रहे हैं। विकलों को यह भी विचार नहीं है।

५. आश्रव के बीस भेद हैं। वे जीव के पर्याय हैं। उनको कर्म का कारण कहा है। उन्हें ध्यान लगाकर सुनें।

ढाल : ७

आश्रव को जो आजीव कहते हैं, वे अज्ञानी हैं।

१. तत्त्वों को अयथार्थ श्रद्धना मिथ्यात्व आश्रव है। अयथार्थ श्रद्धान करने वाला साक्षात् जीव है। उस मिथ्यात्व आश्रव को जो अजीव श्रद्धता है, उसके घट में घोर मिथ्यात्व है।

२. जे जे सावद्य कांमा नही त्याग्या छें, त्यांरी आसा वंछा रही लागी रे।
ते जीव तणा परिणांम छें मेला, अत्याग भाव छें इविरत सागी रे।।

३. परमाद आश्रव जीव नां परिणांम मेला, तिणसूं लागें निरंतर पापो रे।
तिणनें अजीव कहें छें मूढ मिथ्याती, तिणरे खोटी सरधा री थापो रे।।

४. कषाय आश्रव नें जीव कह्यों जिणेसर, कषाय आत्मा कही छें तांमो रे।
कषाय करवारो सभाव जीव तणों छें, कषाय छें जीव परिणांमो रे।।

५. जोग आश्रव नें जीव कह्यों जिणेसर, जोग आत्मा कहीं छें तांमो रे।
तीन जोगां रों व्यापार जीव तणों छें, जोग छें जीव रा परिणांमो रे।।

६. जीवरी हिंसा करें ते आश्रव, हिंसा करें ते जीव साख्यातो रे।
हिंसा करें ते प्रणांम जीव तणा छें, तिणमें संका नही तिलमातो रे।।

७. झूठ बोलें ते आश्रव कह्यों छें, झूठ बोले ते जीव साख्यातो रे।
झूठ बोलण रा परिणाम जीव तणा छें, तिणमें संका नही तिलमातो रे।।

८. चोरी करें ते आश्रव कह्यों जिणेसर, चोरी करें ते जीव साख्यातो रे।
चोरी करवा रा परिणांम जीव तणा छें, तिणमें संका नही तिलमातो रे।।

९. मइथांन सेवे ते आश्रव चोथों, मइथुन सेवें ते जीवो रे।
मइथुन परिणाम तों जीव तणा छें, तिणसूं लागे छें पाप अतीवो रे।।

१०. परिग्रह राखें ते पांचमों आश्रव, परिग्रह राखें ते पिण जीवो रे।
जीव रा परिणाम छें मूर्छा परिग्रह, तिणसूं लागे छें पाप अतीवो रे।।

११. पांच इंद्रयां ने मोकली मेलें ते आश्रव, मोकली मेलें ते जीव जांणो रे।
राग धेष आवें शब्दादिक उपर, यांनें जीव रा भाव पिछांणो रे।।

२. जिन सावद्य कामों का त्याग नहीं होता उनकी आशा-वांछा लगी रहती है। आशा-वांछा जीव के मलिन परिणाम हैं। यह अत्याग भाव ही अविरति आश्रव है।

३. प्रमाद-आश्रव जीव के मलिन परिणाम हैं। उससे निरन्तर पाप लगता रहता है। मूढ़ मिथ्यात्वी उसको अजीव कहते हैं। उसके मिथ्याश्रद्धा की स्थापना है।

४. जिनेश्वर ने कषाय आश्रव को जीव बतलाया है। उसे कषाय आत्मा कहा है। कषाय करने का स्वभाव जीव का ही है। कषाय जीव-परिणाम है।

५. जिनेश्वर ने योग आश्रव को जीव कहा है। इसलिए योग आत्मा कही गई है। तीनों योगों के व्यापार जीव के हैं। योग जीव के परिणाम हैं।

६. जीव की हिंसा करना प्राणातिपात आश्रव है। हिंसा साक्षात् जीव ही करता है। हिंसा करना जीव-परिणाम है। इसमें तिलमात्र भी शंका नहीं।

७. जिनेश्वर ने झूठ बोलने को (मृषावाद) आश्रव कहा है। झूठ साक्षात् जीव ही बोलता है। झूठ बोलना जीव-परिणाम है। इसमें जरा भी शंका नहीं।

८. जिनेश्वर ने चोरी करने को आश्रव कहा है। चोरी करने वाला साक्षात् जीव होता है। चोरी करना जीव-परिणाम है। इसमें जरा भी शंका नहीं।

९. मैथुन-सेवन चौथा आश्रव है। मैथुन-सेवन जीव ही करता है। मैथुन जीव-परिणाम है। उससे अत्यन्त पाप लगता है।

१०. परिग्रह रखना पांचवां आश्रव है। जो परिग्रह रखता है, वह जीव है। मूर्च्छा परिग्रह है और वह जीव-परिणाम है। इससे अतीव पाप लगता है।

११. पांचों इन्द्रियों को खुला छोड़ना आश्रव है। इन्द्रियों को जीव ही प्रवृत्त करता है। शब्दादिक विषयों पर जो राग-द्वेष आता है, उसे जीव का भाव पहचानें।

१२. सुरतइंद्री तो शब्द सुणें छें, चखुइद्री रूप ले देखो रे।
घाणइंद्री गन्ध नें भोगवें छें, रसइंद्री रस स्वादें विशेसो रे।।

१३. फरसइंद्री तो फरस भोगवे छें, पांचूं इंद्रयां नों एह सभावो रे।
यांसूं राग नें धेष करें ते आश्रव, तिणनें जीव कहीजे इण न्यावो रे।।

१४. तीन जोगां नें मोकला मेले ते आश्रव, मोकला मेले ते जीवो रे।
त्यांनें अजीव कहें तें मूढ मिथ्याती, त्यांरा घट में नही ग्यांन रो दीवो रे।।

१५. तीन जोगां रो व्यापार जीव तणों छें, ते जोग छें जीव परिणांमो रे।
माठा जोग छें माठी लेस्या रा लखण, जोग आतमा कही छें तांमो रे।।

१६. भंड उपगर्ण सूं कोई करें अजेंणा, तेहीज आश्रव जांणो रे।
ते आश्रव सभाव तों जीव तणो छें, रूडी रीत पिछांणो रे।।

१७. सुची-कुसग सेवें ते आश्रव, सुची कुसग सेवें ते जीवो रे।
सुची-कुसग सेवें तिणनें अजीव कहें, त्यारे उंडी मिथ्यात री नीवो रे।।

१८. दरब जोगां नें रूपी कह्या छें, ते तो भाव जोग रे छें लारो रे।
दरब जोगां सूं तो कर्म न लागें, भाव जोग छें आश्रव दुवारो रे।।

१९. आश्रव नें कर्म कहें छें अग्यांनी, तिण लेखें पिण उंधी दरसी रे।
आठ कर्मां नें तो चोफरसी कहें छें, काय जोग तो छें अठफरसी रे।।

२०. आश्रव नें कर्म कहें त्यांरी सरधा, उठी जठा थी झूठी रे।
त्यांरा बोंल्या री ठीक पिण त्यांनें नांही, त्यांरा हीया निलाड री फूटी रे।।

२१. वीस आश्रव में सोलें एकंत सावद्य, ते पाप तणा छें दुवारो रे।
ते जीव रा किरतब माठा नें खोटा, पाप तणा करतारो रे।।

१२-१३. श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को सुनती है। चक्षु इन्द्रिय रूप को देखती है। घ्राणेन्द्रिय गंध का भोग करती है। रसनेन्द्रिय रसास्वादन करती है। स्पर्शनेन्द्रिय स्पर्श का भोग करती है। पांचों इन्द्रियों के ये स्वभाव हैं। इन इन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेष करना आश्रव है। (राग-द्वेष करना जीव के भाव हैं) इस न्याय से उसे जीव कहा जाता है।

१४. तीन योगों को खुला छोड़ना आश्रव है। खुला छोड़ने वाला जीव है। उनको अजीव कहते हैं, वे मूढ़ मिथ्यात्वी हैं। उनके घट में ज्ञान का दीपक नहीं है।

१५. तीनों योगों का व्यापार जीव का है। वे योग जीव-परिणाम हैं। अशुभ-योग अशुभ-लेश्या के लक्षण हैं। उनको योग आत्मा कहा गया है।

१६. भंड-उपकरण से कोई अयतना करता है, वही आश्रव है। यह अच्छी तरह समझ लें कि आश्रव जीव का स्वभाव है।

१७. शुचि-कुशाग्र का सेवन करना आश्रव है। जो शुचि-कुशाग्र का सेवन करता है, वह जीव है। शुचि-कुशाग्र सेवन को जो अजीव कहते हैं, उनके मिथ्यात्व की नींव गहरी है।

१८. द्रव्य योगों को रूपी कहा गया है। वे भाव योगों के पीछे हैं। द्रव्य योगों से कर्मों का आश्रव नहीं होता, भाव योग आश्रव-द्वार हैं।

१९. अज्ञानी आश्रव को कर्म कहते हैं। उस अपेक्षा से भी वे मिथ्यादृष्टि हैं। आठ कर्मों को तो चतुःस्पर्शी कहते हैं, पर द्रव्य काय योग तो अष्टस्पर्शी हैं। (अतः आश्रव और कर्म एक नहीं)।

२०. आश्रव को जो कर्म कहते हैं, उनकी श्रद्धा उत्स से ही मिथ्या है। वे अपनी ही भाषा के अनजान हैं। उनके बाह्य और आभ्यन्तर दोनों नेत्र फूट चुके हैं।

२१. बीस आश्रवों में से सोलह एकान्त सावद्य हैं और पाप आने के द्वार हैं। ये जीव के अशुभ और बुरे कर्त्तव्य हैं, जो पाप के कर्त्ता हैं।

२२. मन वचन काया रा जोग व्यापार, वले समचें जोग व्यापारो रे।
अं च्यारुइ आश्व सावद्य निरवद, पुन पाप तणा छें दुवारो रे।।

२३. मिथ्यात इविरत नें परमाद, कषाय नें जोग व्यापारो रे।
ए कर्म तणा करता जीव रे छें, ए पांचूंइ आश्व दुवारो रे।।

२४. यांमें च्यार आश्व सभावीक उदारा, जोग में पनरें आश्व समाया रे।
जोग किरतब नें सभावीक पिण छें, तिणसूं जोग में पनरेंइ आया रे।।

२५. हिंसा करें ते जोग आश्रव छें, झूठ बोलें ते जोग छें ताह्यों रे।
चोरी सूं लेइ नें सुची कुसग सेवें ते, पनरेंइ आया जोग माह्यो रे।।

२६. करमां रो करता तो जीव दरब छें, कीधा हुवा ते कर्मों रे।
कर्म नें करता एक सरधे ते, भूला अग्यांनी भर्मो रे।।

२७. अठारें पाप ठांणा अजीव चोफरसी, ते उदें आवें तिण वारो रे।
जब जूजूआ किरतब करें अठारों, ते अठारेंइ आश्व दुवारो रे।।

२८. उदें आया ते तो मोह कर्म छें, ते तो पाप रा ठांणा अठारो रे।
त्यांरा उदा सूं अठारेंइ किरबत करें छें, ते जीव तणो छें व्यापारो रे।।

२९. उदें नें किरतब जूआ जूआ छें, आ तो सरधा सूधी रे।
उदें नें किरतब एकज सरधें, अकल तिणांरी उंधी रे।।

३०. परणातपात जीव री हिंस्या करें ते, परणातपात आश्व जाणो रे।
उदें हुवों ते परणातपात ठांणों छें, त्यांनें रूडी रीत पिछांणो रे।।

२२. मन, वचन और काया के योगों का व्यापार और समुच्चय योग का व्यापार ये चारों आश्रव सावद्य, निरवद्य दोनों हैं एवं पुण्य-पाप के द्वार हैं।

२३. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग व्यापार ये पांचों ही जीव के कर्मों के कर्त्ता हैं, अतः पांचों ही आश्रव-द्वार हैं।

२४. इनमें पहले चार आश्रव स्वभाव से ही उदय भाव हैं और योगाश्रव में अवशेष पन्द्रह आश्रव समाए हुए हैं। योग आश्रव कर्त्तव्य रूप और स्वभाविक भी है। इसलिए उसमें पंद्रह आश्रवों का समावेश होता है।

२५. हिंसा करना योग आश्रव है। झूठ बोलना भी योग आश्रव है। इसी तरह चोरी करने से लेकर शुचि-कुशाग्र सेवन तक पंद्रह ही आश्रव योग आश्रव के अन्तर्गत हैं।

२६. कर्मों का कर्त्ता तो जीव द्रव्य है और किए जाते हैं, वे कर्म हैं। जो कर्म और कर्त्ता को एक समझते हैं, वे अज्ञानी भ्रम में भूले हुए हैं।

२७. अठारह पाप-स्थानक चतुःस्पर्शी अजीव हैं। उनके उदय में आने पर जीव भिन्न-भिन्न अठारह प्रकार के कर्त्तव्य करता है। वे अठारहों ही कर्त्तव्य आश्रव-द्वार हैं।

२८. जो उदय में आते हैं, वे तो मोहकर्म अर्थात् अठारह पाप-स्थानक हैं और उनके उदय में आने से जो अठारह कर्त्तव्य जीव करता है, वे जीव के व्यापार हैं।

२९. पाप-स्थानकों के उदय को और उनके उदय में आने से होने वाले कर्त्तव्यों को जो भिन्न-भिन्न समझता है, उसकी श्रद्धा सम्यक् है। और जो इस उदय और कर्त्तव्य को एक समझते हैं, उनकी श्रद्धा विपरीत है।

३०. प्राणी हिंसा को प्राणातिपात आश्रव जानें। जिसके उदय से प्राणातिपात आश्रव होता है, वह प्राणातिपात स्थान है, उसे अच्छी तरह पहचानें।

३१. झूठ बोलें ते मिरषावाद आश्रव छें, उदे छें ते मिरषावाद ठांणो रे।
झूठ बोलें ते जीव उदें हुवा कर्म, यां दोयां नें जूआ जूआ जांणो रे।।

३२. चोरी करें ते अदतदांन आश्रव छें, उदें ते अदतादांन ठांणो रे।
ते उदें आयां जीव चोरी करें छें, ते तों जीव रा लखण जांणो रे।।

३३. मइथांन सेवे ते मइथांन आश्रव, तें जीव तणा परणांमो रे।
उदें हूओ ते मइथांन पाप थांनक छें, मोह करम अजीव छें तांमो रे।।

३४. सचित अचित मिश्र उपर, ममता राखे ते परिग्रह जांणो रे।
ते ममता छें मोह कर्म रा उदा सूं, उदें में छें ते पाप ठांणो रे।।

३५. क्रोध सूं लेइ नें मिथ्यात दर्शण, उदें हूआ ते पाप रो ठांणो रे।
यांरा उदा सूं सावद्य कांमा करें ते, जीव रा लखण जांणो रे।।

३६. सावद्य कामां ते जीव रा किरतब, उदें हूआ ते पाप कर्मो रे।
यां दोयां नें कोइ एकज सरधें, ते भूला अग्यांनी भर्मो रे।।

३७. आश्रव तो कर्म आवाना दुवार, ते तो जीव तणा परिणांमो रे।
दुवार माहे आवे ते आठ कर्म छें, ते पुदगल द्रव्य छें तांमो रे।।

३८. माठा परिणांम नें माठी लेस्या, वले माठा जोग व्यापारो रे।
माठा अधवसाय नें माठो ध्यांन, ए पाप आवाना दुवारो रे।।

३९. भला परिणांम नें भली लेस्या, भला निरवद्य जोग व्यापारो रे।
भला अधवसाय नें भलोइ ध्यांन, ए पुन आवा रा दुवारो रे।।

३१. झूठ बोलना मृषावाद आश्रव है और जो कर्म उदय में होता है, वह मृषावाद पाप-स्थान है। जो मिथ्या बोलता है, वह जीव है तथा जो उदय में होता है, वह कर्म है। इन दोनों को भिन्न-भिन्न जानें।

३२. चोरी करना अदत्तादान आश्रव है। जो कर्म के उदय से होता है, वह अदत्तादान पाप-स्थान है। जिसके उदय से जीव चोरी करता है, उसे जीव का लक्षण जानें।

३३. मैथुन का सेवन करना मैथुन-आश्रव है। वह जीव का परिणाम है। जो कर्म उदय में होता है, वह मैथुन पाप-स्थान है। मोहनीय कर्म अजीव है।

३४. सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त वस्तु पर ममत्व रखने को परिग्रह जानें। वह ममता मोहकर्म के उदय से होती है और उदय में आया हुआ वह मोहकर्म परिग्रह पाप-स्थान है।

३५. क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक जो उदय में आते हैं, वे सब पाप-स्थान हैं। इनका उदय होने से जीव जो सावद्य कृत्य करता है, उन सबको जीव का लक्षण जानें।

३६. सावद्य कार्य जीव के व्यापार हैं। और जो उदय होते हैं, वे पापकर्म हैं। इन दोनों को एक समझने वाले अज्ञानी भ्रम में भूले हुए हैं।

३७. आश्रव कर्म आने के द्वार हैं। वे जीव के परिणाम हैं। इन द्वारों से होकर जो आते हैं, वे आठ कर्म हैं, वे पुद्गल द्रव्य हैं।

३८. अशुभ परिणाम, अशुभ लेश्या, अशुभ योग-व्यापार, अशुभ अध्यवसाय और अशुभ ध्यान ये पाप आने के द्वार हैं।

३९. शुभ परिणाम, शुभ लेश्या, शुभ निरवद्य योग-व्यापार, शुभ अध्यवसाय और शुभ ध्यान ये पुण्य आने के द्वार हैं।

४०. भला भूंडा परिणांम भली भूंडी लेस्या, भला भूंडा जोग छें तांमो रे।
भला भूंडा अधवसाय भला भूंडा ध्यांन, ए जीव तणा परिणांमो रे।।

४१. भला भूंडा भाव जीव तणा छें, भूंडा पाप रा बारणा जांणों रे।
भला भाव तो छें संवर निरजरा, पुन सहजे लागें छें आंणो रे।।

४२. निरजरा री निरवद करणी करतां, कर्म तणो खय जांणो रे।
जीव तणा प्रदेस चलें छें, त्यांसूं पुन लागें छें आंणो रे।।

४३. निरजरा री करणी करें तिण कालें, जीव रा चालें सर्व प्रदेसो रे।
जब सहचर नांम करम सूं उदें भाव, तिणसूं पुन तणो परवेसो रे।।

४४. मन वचन काया रा जोग तीनोंइ, पसत्थ नें अपसत्थ चाल्या रे।
अपसत्थ जोग तों पाप ना दुवार, पसत्थ निरजरा री करणी में घाल्या रे।।

४५. अपसत्थ दुवार नें रूंधणा चाल्या, पसत्थ उदीरणा चाल्या रे।
रूंधतां नें उदीरतां निरजरा री करणी, पुन लागे तिणसूं आश्रव में घाल्या रे।।

४६ पस्थ नें अपसत्थ जोग तीनूंइ, त्यांरा बासठ भेद छें ताह्यो रे।
ते सावद्य निरवद जीव री करणी, सूत्र उवाइ रे माह्यो रे।।

४७. जिण कह्यो सतरें भेद असंयम, असंजम ते इविरत जांणो रे।
इविरत ते आसा वंछा जीव तणी छें, तिणनें रूडी रीत पिछांणो रे।।

४८. माठा माठा किरतब नें माठी माठी करणी, सर्व जीव व्यापारो रे।
वले जिण आज्ञा बारला सर्व कामां, ए सगला छें आश्रव दुवारो रे।।

४०-४१. अच्छे-बरे परिणाम, अच्छी-बुरी लेश्या, अच्छे-बुरे योग, अच्छे-बुरे अध्यवसाय और अच्छे-बुरे ध्यान ये सब जीव के परिणाम, भाव हैं। बुरे परिणाम पाप के द्वार हैं और भले परिणाम संवर और निर्जरा रूप हैं और उनसे सहज ही पुण्य आकर लगते हैं।

४२. निर्जरा की निरवद्य करनी करते हुए कर्मों का क्षय होता है, उस समय जीव के प्रदेश चलायमान होते हैं, उससे पुण्य आकर लगते हैं।

४३. निर्जरा की निरवद्य करनी करते समय जीव के सर्व प्रदेश चलायमान होते हैं, उस समय सहचर नामकर्म के उदय भाव से पुण्य का प्रवेश होता है।

४४. मन, वचन और काय ये तीनों योग प्रशस्त (शुभ) और अप्रशस्त (अशुभ) दो तरह के कहे गए हैं। अप्रशस्त योग पाप के द्वार हैं और प्रशस्त योगों को निर्जरा की करनी में समाविष्ट किया है।

४५. अप्रशस्त द्वार को रूंधने और प्रशस्त को उदीरने का कहा गया है। रूंधते और उदीरते हुए निर्जरा की क्रिया होती है, जिससे पुण्य लगता है, इसलिए शुभ योग को भी आश्रव में समाविष्ट किया गया है।

४६. तीनों ही योग प्रशस्त और अप्रशस्त हैं और इनके बासठ भेद ओवाइयं सूत्र में हैं। जीव के सावद्य या निरवद्य व्यापार योग हैं।

४७. जिनेश्वर ने असंयम के सत्रह भेद बतलाए हैं। असंयम अर्थात् अविरति। अविरति जीव की आशा-वांछा का नाम है, उसे अच्छी तरह पहचानें।

४८. बुरे-बुरे कार्य, बुरी-बुरी क्रिया और जिनेश्वर की आज्ञा के बाहर के सभी कार्य जीव के ही व्यापार हैं ये सभी आश्रव-द्वार हैं।

४९. मोह कर्म उदें जीव रे च्यार संज्ञा, ते तो पाप कर्म ग्रहें तांणो रे।
पाप कर्म नें ग्रहे ते आश्रव, ते तो लखण जीव रा जांणों रे।।

५०. उठांण कम बल वीर्य पुरषाकार प्राकम, यांरा सावद्य जोग व्यापारो रे।
तिणसूं पाप कर्म जीव रें लागें छें, ते जीव छें आश्रव दुवारो रे।।

५१. उठांण कम बल वीर्य पुरषाकार प्राकम, यांरा निरवद किरतब व्यापारो रे।
त्यांसूं पुन कर्म जीव रें लागें छें, ते पिण जीव छें आश्रव दुवारो रे।।

५२. संजती असंजती नें संजतासंजती, ते तों संवर आश्रव दुवारो रे।
ते संवर नें आश्रव दोनूंइ, तिणमें संका नही छें लिगारो रे।।

५३. इम विरती अविरती नें विरताविरती, इम पचखांणी पिण जांणो रे।
इम पिंडीया बाला नें बालपिंडीया, जागरा सुता एम पिछांणो रे।।

५४. वले संवूडा असंवूडा नें संबूडासंबूडा, धमीया धमठी तांमो रे।
धम्मवचसाइया इमहिज जांणो, तीन तीन बोल छें तांमो रे।।

५५. ए सगला बोल छें संवर नें आश्रव, त्यांनें रूडी रीत पिछांणो रे।
कोइ आश्रव नें अजीव कहें छें, ते पूरा छें मूढ अयांणो रे।।

५६. आश्रव घटियां संवर वधें छें, संवर घटीयां आश्रव वधांणो रे।
किसों द्रब घटियों नें वधीयों, इणनें रूडी रीत पिछांणो रे।।

५७. इविरत उदें भाव घटीयां सूं, विरत वधें छें खयउपसम भावो रे।
अें जीव तणा भाव वधीया नें घटीया, आश्रव जीव कह्यों इण न्यावो रे।।

४९. मोहकर्म के उदय से जीव के चार संज्ञाएं होती हैं। ये पाप कर्मों को खींच-खींच कर ग्रहण करती हैं। पाप कर्मों को ग्रहण करने वाला आश्रव है। उसे जीव का लक्षण जानें।

५०. उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम इन सबके सावद्य योग-व्यापार से जीव के पाप कर्म लगते हैं। वह आश्रव-द्वार जीव है।

५१. उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम इनके निरवद्य योग-व्यापार से जीव के पुण्य कर्म लगते हैं। वह आश्रव-द्वार भी जीव है।

५२. संयम, असंयम और संयमासंयम ये क्रमशः संवर, आश्रव और संवर-आश्रव दोनों हैं। इसमें जरा भी शंका नहीं है।

५३. इसी तरह व्रती, अव्रती और व्रताव्रती तथा प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी को जानें। इसी तरह पण्डित, बाल और बाल-पंडित तथा सुप्त, जाग्रत और सुप्त-जाग्रत को पहचानें।

५४. इसी तरह संवृत, असंवृत और संवृतासंवृत तथा धर्मी, धर्मार्थी, धर्मव्यवसायी के तीन-तीन बोलों को समझें।

५५. ये सभी बोल संवर और आश्रव हैं, उनको अच्छी तरह पहचानें जो आश्रव को अजीव मानते हैं, वे पूरे मूढ़ और अज्ञानी हैं।

५६. आश्रव घटने से संवर बढ़ता है। संवर घटने से आश्रव बढ़ता है। कौन द्रव्य घटता और कौन द्रव्य बढ़ता है इसे अच्छी तरह पहचानें।

५७. जीव के औदयिक भाव अव्रत के घटने से क्षयोपशम भाव (व्रत) की वृद्धि होती है। इस तरह जीव के ही भाव घटते और बढ़ते हैं, इस न्याय से आश्रव को जीव कहा है।

५८. सतरें भेद असंजम ते इविरत आश्रव, ते आश्रव नें निश्चें जीव जांणो रे।
सतरे भेद संजम नें संवर कह्यों जिण, अें तो जीव रा लखण पिछांणो रे।।

५९. आश्रव नें जीव सरधावण काजे, जोड कीधी पाली मझारो रे।
संवत अठारे वरस पचावनें, आसोज सुदि चवदस मंगलवारो रे।।

५८. असंयम के जो सत्रह भेद हैं, वे अविरति आश्रव हैं। इन आश्रवों को निश्चय ही जीव जानें। सत्रह प्रकार के संयम को जिनेश्वर ने संवर कहा है। इन्हें जीव के लक्षण पहचानें।

५९. आश्रव को जीव श्रद्धाने के लिए यह जोड़ पाली शहर में सं. १८५५, आश्विन शुक्ला १४, मंगलवार को की है।

६ : संवर पदार्थ

दुहा

१. छठो पदार्थ संवर कह्यों, तिणरा थिरीभूत प्रदेस।
आश्व दुवार नो रूंधणों, तिणसूं मिटीयो कर्मा रो प्रवेस।।

२. आश्व दुवार कर्मा रा बारणा, ढकीया छें संवर दुवार।
आत्मा वस कीयां संवर हूओ, ते गुण रत्न श्रीकार।।

३. संवर पदार्थ ओलख्या विनं, संवर न नीपजें कोय।
संका कोइ मत राखजों, सूतर सांहमों जोय।।

४. संवर तणा भेद पांच छें, त्यां पांचा रा भेद अनेक।
त्यांरा भाव भेद परगट करूं, ते सुणजो आंण ववेक।।

ढाल : ८

(लय पूजजी पधारो हो नगरी)

संवर पदार्थ भवीयण ओंळखों।।

१. नव ही पदार्थ सरधें जथातथ, तिणनें कहीजे समकत निधांन हो। भवकजण।
पछें त्याग करें उंधा सरधण तणा, ते समकत संवर प्रधांन हो। भवकजण।।

२. त्याग कीया सर्व सावद्य जोग रा, जावजीव तणा पचखांण हो।
आगार नही त्यारे पाप करण तणो, ते सर्व विरत संवर जांण हो।।

संवर पदार्थ

दोहा

१. छट्ठा पदार्थ 'संवर' कहा गया है। उसके प्रदेश स्थिर होते हैं। यह आश्रव द्वार का अवरोध करने वाला है। उससे कर्मों का प्रवेश रूकता है।

२. आश्रव-द्वार कर्म आने के द्वार हैं। उन द्वारों को संवर बंद करता है। आत्मा को वश में करने से संवर होता है। यह उत्तम गुण-रत्न है।

३. संवर पदार्थ को पहचाने बिना संवर नहीं होता। सूत्रों पर दृष्टि डाल इस पदार्थ के विषय में कोई शंका मत रखना।

४. संवर के पांच भेद हैं। उन पांचों के अनेक भेद हैं। अब मैं उनके अर्थ और भेदों को प्रकट करता हूं। उसे विवेकपूर्वक सुनें।

ढाल : ८

भव्यजनों! संवर पदार्थ को पहचानें।

१. नौ ही पदार्थों को यथातथ्य श्रद्धने को सम्यक्त्व निधि कहा जाता है। उसके बाद विपरीत श्रद्धा का त्याग करना प्रथम 'सम्यक्त्व संवर' है।

२. सर्व सावद्य योगों का पापमय प्रवृत्तियों की कोई छूट रखे बिना जीवन पर्यन्त के लिए प्रत्याख्यान करना 'सर्व विरति संवर' है।

३. पाप उदे सूं जीव प्रमादी थयों, तिण पाप सु प्रमादी थाय हो।
ते पाप खय हूआं कें उपसम हूआं, अप्रमाद संवर हुवें ताहि हो।।

४. कषाय कर्म उदें छें जीव रे, तिणसूं कषाय आश्रव छें तांम हो।
ते कषाय कर्म अलगा हुवां जीव रे, जब अकषाय संवर हुवें आंम हो।।

५. थोड़ा थोड़ा सा जोगां नें रूंधीयां, अजोग संवर नही थाय हो।
मन वचन काया रा जोग रूंधे सर्वथा, ते अजोग संवर हुवें ताहि हो।।

६. सावद्य माठा जोग रुंध्या सर्वथा, जब तों सर्व विरत संवर होय हो।
पिण निरवद जोग बाकी रह्या तेहनें, तिणसूं अजोग संवर नही कोय हो।।

७. प्रमाद आश्रव नें कषाय जोग आश्रव, अें तों नही मिटें कीयां पचखांण हो।
अें तों सहिजांइ मिटें छें कर्म अलगा हुवां, तिणरी अंतरंग करजो पिछांण हो।

८. सुभ ध्यांन नें लेस्या सूं कर्म कटियां थकां, जब अप्रमाद संवर थाय हो।
इमहीज करतां अकषाय संवर हुवें, इम अजोग संवर होय जाय हो।।

९. समकित संवर नें सर्व विरत संवर, अें तों हुवें छें कीयां पचखांण हो।
अप्रमाद अकषाय अजोग संवर हुवें, ते तो कर्म खय हूआं जांण हो।।

१०. हिंस्या झूठ चोरी मइथुन परिग्रहो, अें तों जोग आश्रव में समाय हो।
ए पांचूं आश्रव नें त्यागे दीया, जब विरत संवर हुवे ताहि हो।।

११. पांचूं इंदस्यां नें मेलें मोकली, त्यांनें पिण जोग आश्रव जांण हो।
इंदस्यां नें मोकली मेलवारा त्याग छें, ते पिण विरत संवर ल्यो पिछांण हो।।

१२. भला भूंडा किरतब तीनोइ जोगां तणा, ते तो जोग आश्रव छें तांम हो।
त्यां तीनूंइ जोगां नें जाबक रूंधीया, अजोग संवर हुवें आंम हो।।

३. पापोदय से जीव प्रमादी होता है। जिन पापों के उदय से प्रमाद आश्रव होता है उन्हीं पाप कर्मों के क्षयोपशम होने से 'अप्रमाद संवर' होता है।

४. कषाय कर्मों के उदय से जीव के कषाय आश्रव होता है। उन कषाय-कर्मों के अलग होने पर जीव के 'अकषाय संवर' होता है।

५. किंचित्-किंचित् योगों के निरोध से अयोग संवर नहीं होता। मन, वचन तथा काय के सर्वथा निरोध से अयोग संवर होता है।

६. सावद्य अशुभ योगों का सर्वथा निरोध करने पर 'सर्व विरति संवर' होता है। पर जीव के निरवद्य योग अवशेष रहते हैं। उससे अयोग संवर नहीं होता है।

७. प्रमाद आश्रव, कषाय आश्रव और योग आश्रव ये प्रत्याख्यान (त्याग) करने से नहीं मिटते। ये कर्मों के दूर होने पर सहज ही मिटते हैं। इस बात की अंतरंग पहचान करें।

८. शुभ ध्यान और शुभ लेश्या द्वारा कर्म कटने पर ही अप्रमाद संवर होता है। इसी प्रकार अकषाय और अयोग संवर भी कर्म-क्षय से होते हैं।

९. सम्यक्त्व संवर और सर्व विरति संवर ये प्रत्याख्यान करने से होते हैं और अप्रमाद, अकषाय और अयोग संवर ये कर्म-क्षय से होते हैं।

१०. हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इनका समावेश योग आश्रव में होता है। इन पांचों आश्रवों के त्याग से विरति-संवर होता है।

११. पांच इन्द्रियों को खुली रखते हैं, उसे भी योग आश्रव जानें। इन्द्रियों को खुली रखने का त्याग है। उसे विरति-संवर पहचानें।

१२. तीनों योगों की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति योग आश्रव है। इन तीनों योगों के सर्वथा निरोध से अयोग संवर होता है।

१३. अजेंणा करें भंडउपगरण थको, तिणनें पिण जोग आश्व जांण हो।
सुची-कुसग सेवे ते आश्व कह्यों, त्यांनें त्याग्यां विरत संवर पिछांण हो।।

१४. हिंसादिक पनरें तो जोग आश्व कह्यां, त्यांनें त्याग्यां विरत संवर जांण हो।
त्या पनरां नें माठा जोग माहे गिण्या, निरवद जोगां री करजों पिछांण हो।।

१५. तीनोइ निरवद जोग रूंध्यां थकां, अजोग संवर होय जात हो।
ए बीसोंइ संवर तणों विवरों कह्यों, ते बीसोंइ पांच संवर में समात हो।।

१६. कोइ कहें कषाय नें जोगां तणा, सूतर माहे चाल्या पचखांण हो।
त्यांनें पचख्यां विनां संवर किण विध होसी, हिवें तिणरी कहुं छूं पिछांण हो।।

१७. पचखांण चाल्यों छें सूतर में सरीर नों, ते शरीर सूं न्यारों हुवां तांम हो।
इमहिज कषाय नें जोग पचखांण छें, शरीर पचखांण ज्यूं आंम हो।।

१८. सामायक आदि पांचूंइ चारित भणी, सर्व विरत संवर जांण हो।
पुलाग आदि दे छहूइ नियंठा, ए पिण लीजों संवर पिछांण हो।।

१९. चारितावर्णी खयउपसम हूआं, जब जीव नें आवें वेंराग हो।
जब कांम नें भोग थकी विरक्त हुवें, जब सर्व सावद्य दें त्याग हो।।

२०. सर्व सावद्य जोग नें त्यागें सर्वथा, ते सर्व विरत संवर जांण हो।
जब इविरत रा पाप न लागे सर्वथा, ते तो चारित छें गुण खांण हो।।

२१. धूर सूं तो सामायक चारित आदर्यों, तिणरे मोह कर्म उदें रह्यों ताहि हो।
ते कर्म उदें सूं किरतब नीपजें, तिणसूं पाप लागें छें आय हो।।

२२. भला ध्यान नें भली लेस्या थकी, मोह कर्म उदें थी घट जाय हो।
जब उदें तणा किरतब पिण हलका पडें, जब हलकाइ पाप लगाय हो।।

१३. भण्डोपकरण (वस्त्र, पात्र आदि) से अजयणा करने को भी योग आश्रव जानें। शुचि-कुशाग्र का सेवन करना भी योग आश्रव है। उसके प्रत्याख्यान को व्रत संवर पहचानें।

१४. हिंसा आदि जो पन्द्रह योग आश्रव कहे हैं। उनको त्यागने से विरति-संवर होता है। उन पन्द्रहों को अशुभ योग में गिना गया है। निरवद्य योग उनसे भिन्न हैं। उनकी पहचान करें।

१५. तीनों ही निरवद्य योगों के निरोध से अयोग संवर हो जाता है। इन बीसों ही संवरों का ब्यौरा कहा है, वे बीस पांच में ही समा जाते हैं।

१६. कई कहते हैं कि कषाय और योग के प्रत्याख्यान का उल्लेख सूत्रों में आया है। अतः उनका त्याग किए बिना संवर कैसे होगा? अब उसकी पहचान करवाता हूं।

१७. सूत्रों में शरीर-प्रत्याख्यान का भी उल्लेख है। वह शरीर से आत्मा के अलग होने से होता है। शरीर-प्रत्याख्यान की तरह ही कषाय व योग का प्रत्याख्यान होता है।

१८. सामायिक आदि पांचों चारित्र सर्व विरति संवर हैं। पुलाक आदि छहों निर्ग्रंथों को भी संवर पहचानें।

१९. चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव को वैराग्य आता है। जिससे काम-भोगों से विरक्त होकर वह सर्व सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग कर देता है।

२०. सर्व सावद्य योग का सर्वथा त्याग कर देने से सर्व विरति संवर होता है। फिर अविरति का पाप सर्वथा नहीं लगता है। वह चारित्र गुणों की खान है।

२१. सर्वप्रथम जीव सामायिक चारित्र को अंगीकार करता है। उसके मोहकर्म उदय में रहता है। उस कर्मोदय से जो क्रिया होती है, उनसे पाप लगते हैं।

२२. शुभ ध्यान और शुभ लेश्या से मोहकर्म का उदय घटता है तब मोहकर्म के उदय से होने वाल कर्त्तव्य भी कम हो जाते हैं। इससे पाप कर्म भी कम लगते हैं।

२३. मोह कर्म जाबक उपसम हुवें, जब उपसम चारित हुवें ताहि हो।
जब जीव हुवें सीतलीभूत निरमलो, तिणरें पाप न लागें आय हो।।

२४. मोहणी कर्म नें जाबक खय हुवां, खायक चारित हुअें जथाख्यात हो।
जब सीतलभूत हूओ जीव निरमलो, तिणरें पाप न लागे अंसमात हो।।

२५. सामायक चारत लीयें छें उदीर नें, सावद्य जोग रा करें पचखांण हो।
उपसम चारित आवें मोह उपसम्यां, ते चारित इग्यारमें गुणठांण हो।।

२६. खायक चारित आवें मोह कर्म नें खय कीयां, पिण नावें कीयां पचखांण हो।
ते आवें सुकल ध्यान ध्यायां थकां, चारित छेहलें तीन गुणठांण हो।।

२७. चारितावर्णी खयउपसम हुआं, खयउपसम चारित आवें निधांन हो।
ते उपसम हूआ उपसम चारित हुवें, खय हूआं खायक चारित प्रधान हो।।

२८. चारित निज गुण जीव रा जिण कह्या, ते जीव सूं न्यारा नहीं थाय हो।
ते मोहणी कर्म अलगा हूआं परगट्या, त्यां गुणां सु हुआ मुनीराय हो।।

२९. चारितावर्णी ते मोहणी कर्म छें, तिणरा अनंत अनंत प्रदेस हो।
तिणरा उदा सूं निज गुण विगडीया, तिणसूं जीव नें अतंत कलेस हो।।

३०. तिण कर्म रा अनंत प्रदेस अलगा हूआं, जब अनंत गुण उजलो थाय हो।
जब सावद्य जोग नें पचख्या छें सर्वथा, ते सर्व विरत संवर छें ताहि हो।।

३१. जीव उजलो हुवो ते तो हुइ निरजरा, विरत संवर सूं रुकीया पाप कर्म हो।
नवा पाप न लागें विरत संवर थकी, एहवों छें चारित धर्म हो।।

२३. मोहकर्म के सर्वथा उपशम होने से उपशम चारित्र होता है, जिससे जीव शीतल और निर्मल हो जाता है और उसके पाप कर्म नहीं लगते।

२४. मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय होने से क्षायक यथाख्यात चारित्र होता है। जिससे जीव शीतल और निर्मल होता है, उसके जरा भी पाप नहीं लगता।

२५. सामायिक चारित्र उदीर कर इच्छापूर्वक ग्रहण किया जाता है और इसमें मनुष्य सर्व सावद्य योगों का प्रत्याख्यान करता है। उपशम चारित्र मोहकर्म के उपशम से ग्यारहवें गुणस्थान में स्वयं प्राप्त होता है।

२६. क्षायिक चारित्र मोहकर्म को क्षय करने से प्राप्त होता है, प्रत्याख्यान से नहीं। वह चारित्र शुक्ल ध्यान के ध्याने से अंतिम तीन गुणस्थानों में होता है।

२७. चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से क्षयोपशम चारित्र निधि प्राप्त होती है। उसके उपशम से उपशम चारित्र और क्षय से प्रधान क्षायिक चारित्र होता है।

२८. जिनेश्वर ने चारित्र को जीव के स्वाभाविक गुण कहे हैं। वे जीव से अलग नहीं होते। वे मोहकर्म के अलग होने से प्रकट होते हैं। उन गुणों से जीव मुनि बनता है।

२९. चारित्रावरणीय मोहनीयकर्म (का एक भेद) है। उसके अनन्त प्रदेश होते हैं। उसके उदय से जीव के स्वाभाविक गुण विकृत होते हैं, उससे जीव को अत्यन्त क्लेश होता है।

३०. उस कर्म के अनन्त प्रदेशों के अलग होने पर जीव अनन्तगुण उज्ज्वल होता है। फिर सावद्य योगों का सर्वथा प्रत्याख्यान करने से सर्व विरति संवर होता है।

३१. जीव उज्ज्वल हुआ, वह निर्जरा हुई और विरति संवर से पाप कर्मों का आना रूका। विरति संवर से नए कर्म नहीं लगते। चारित्र धर्म इस प्रकार है।

३२. जिम जिम मोहणी कर्म पतलो पडें, तिम तिम जीव उजलो थाय हो।
इम करता मोहणी कर्म खय जाये सर्वथा, जब जथाख्यात चारित होय जाय हो।।

३३. जगन सामायक चारित तेहना, अनंता गुण पजवा जांण हो।
अनंता कर्म प्रदेस उदें था ते मिट गया, तिणसूं अनंत गुण प्रगट्या आंण हो।।

३४. जघन सामायक चारितीया तणा, तणा अनंत गुण उजला प्रदेस हो।
वले अनंता प्रदेस उदे थी मिट गया, जब अनंत गुण उंजलो विसेस हो।।

३५. मोह कर्म घटें छें उदें थी इण विधे, ते तों घटे छें असंखेद्य वार हो।
तिणसूं सामायक चारित ना कह्या, असंख्यात थानक श्रीकार हो।।

३६. अनंत कर्म प्रदेस उदे थी मिट गया, चारित थानक नीपजें एक हो।
चारित गुण पजवा अनंता नीपजें, सामायक चारित रा भेद अनेक हो।।

३७. जगन सामायक चारित जेहना, पजवा अनंता जांण हो।
तिण थी उतकष्टा सामायक चारित तणा, पजवा अनंत गुणां वखांण हो।।

३८. पजवा उतकष्टा सामायक चारित तणा, तेह थी सुखम संपराय नां विशेख हो।
अनंत गुणां कह्यां छें जिगन चारित तणा, ए सुखम सपंराय लों पेख हो।।

३९. छठा गुणठाणां थकी नवमां लगे, सामायक चारित जांण हो।
तिणरा असंख्याता थांनक पजवा अनंत छें, सुषम संपराय दसमों गुण ठांण हो।।

४०. सुखम संपराय चारित तेहना, थानक असंखेद्या जांण हो।
एक एक थानक रा पजवा अनंत छें, तिणनें समाय ज्यूं लीजों पिछांण हो।

३२. जैसे-जैसे मोहनीय कर्म पतला होता जाता है, वैसे-वैसे जीव उत्तरोत्तर निर्मल होता जाता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है।

३३. जघन्य सामायिक चारित्र के अनन्तगुण पर्यव जानें। उदय में आए हुए अनंत कर्म-प्रदेशों के मिट जाने से आत्मा के अनन्तगुण प्रकट हुए।

३४. जघन्य सामायिक चारित्र वाले के आत्म-प्रदेश अनन्तगुण उज्ज्वल होते हैं। उदय में आए हुए अनन्त कर्म-प्रदेशों के मिट जाने पर विशेष रूप से अनन्त गुण उज्ज्वल होते हैं।

३५. मोहकर्म का उदय इस प्रकार असंख्य बार घटता है। उससे सामायिक चारित्र के उत्तम असंख्यात स्थानक कहे जाते हैं।

३६. अनन्त कर्म-प्रदेशों का उदय मिट जाने से एक चारित्र स्थानक उत्पन्न होता है तथा अनन्त चारित्र गुण-पर्यव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सामायिक चारित्र के अनेक भेद हैं।

३७. जघन्य सामायिक चारित्र के अनन्त पर्यव जानें तथा उससे उत्कृष्ट सामायिक चारित्र के पर्यव उससे अनन्तगुण जानें।

३८. सामायिक चारित्र की उत्कृष्ट पर्यव-संख्या से भी सूक्ष्म संपराय चारित्र की पर्यव-संख्या अधिक होती है। जघन्य सूक्ष्म संपराय चारित्र की पर्यव संख्या सामायिक चारित्र की उत्कृष्ट पर्यव संख्या से अनन्तगुण है।

३९. छट्ठे गुणस्थान से लेकर नौंवे तक सामायिक चारित्र जानें। इसके असंख्यात स्थानक और अनन्त पर्यव हैं। सूक्ष्मसंपराय चारित्र दसवें गुणस्थान में होता है।

४०. सूक्ष्मसंपराय चारित्र के भी असंख्यात स्थानक जानें तथा सामायिक चारित्र की तरह एक-एक स्थानक के अनन्त-अनन्त पर्यव समझें।

४१. सुखम संपराय चारितीया रे सेष उदें रह्या, मोह कर्म रा अनंत प्रदेस हो।
ते अनंत प्रदेस खस्यां निरजरा हुइ, बाकी उदे नही रह्यों लवलेस हो।

४२. जब जथाख्यात चारित परगट हुवों, तिण चारित रा पजवा अनंत हो।
सुखम संपराय रा उतकष्टा पजवां थकी, अनंत गुणां कह्या भगवंत हो।।

४३. जथाख्यात चारित उजल हूओ सर्वथा, तिण चारित रो थांनक एक हो।
अनंता पजवा तिण थांनक तणा, ते थांनक छें उतकष्टों विशेख हो।।

४४. मोह कर्म प्रदेस अनंता उदें हुवें, ते तों पुदगल री परज्याय हो।
अनंता अलगा हूआं अनंत गुण परगटे, ते निज गुण जीव रा छें ताहि हो।।

४५. ते निज गुण जीव रा ते तों भाव जीव छें, ते निज गुण छें वंदणीक हो।
ते तो कर्म खय हूआं सूं नीपनां, भाव जीव कह्या त्यांनें ठीक हो।।

४६. सावद्य जोगां रा त्याग करे नें रूंधीया, तिणसूं विरत संवर हुवों जांण हो।
निरवद जोग रूंध्यां संवर हुवें, तिणरी करजों पिछांण हो।।

४७. निरवद्य जोग मन वचन काया तणा, ते घटीयां संवर थाय हो।
सर्वथा घटीयां अजोग संवर हुवें, तिणरी विध सुणों चित्त ल्याय हो।

४८. साधु तो उपवास बेलादिक तप करें, कर्म काटण रे कांम हो।
जब संवर सहचर साधु रें नीपजें, निरवद जोग रूंध्यां सूं तांम हो।।

४९. श्रावक उवास बेलादिक तक करें, कर्म काटण रें कांम हो।
जब विरत संवर पिण सहचर नीपनों, सावद्य जोग रूंध्यां सूं तांम हो।।

४१. सूक्ष्मसंपराय चारित्र वालों के मोहकर्म के अनन्त प्रदेश अन्त तक उदय में रहते हैं। उनके झड़ जाने से निर्जरा होती है। फिर मोहकर्म का लेशमात्र भी उदय नहीं रहता।

४२. जब यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है, उसके अनन्त पर्यव होते हैं। भगवान ने इस चारित्र के पर्यव सूक्ष्मसंपराय चारित्र के उत्कृष्ट पर्यव संख्या से अनन्तगुणा कहे हैं।

४३. यथाख्यात चारित्र अर्थात् जीव का सर्वथा उज्ज्वल होना। उस चारित्र का एक ही स्थानक होता है। उस स्थानक के अनन्त पर्यव हैं। वह स्थानक विशेष उत्कृष्ट है।

४४. मोहकर्म के जो अनन्त प्रदेश उदय में आते हैं, वे पुद्गल के पर्याय हैं। इन अनन्त कर्मप्रदेशों के अलग होने से अनन्त गुण प्रकट होते हैं। ये जीव के स्वाभाविक गुण हैं।

४५. जीव के इस प्रकार प्रकट हुए स्वाभाविक गुण भाव-जीव हैं और वन्दनीय हैं। वे गुण कर्म-क्षय से उत्पन्न हुए हैं और उन्हें भाव जीव ठीक ही कहा गया है।

४६. सावद्य योग का प्रत्याख्यान पूर्वक निरोध करने से विरति संवर होता है और निरवद्य योग के निरोध से संवर होता है। उसकी पहचान करें।

४७. मन-वचन-काय के निरवद्य योगों के घटने से संवर होता है और उनके सर्वथा मिट जाने से अयोग संवर होता है। उसकी विधि ध्यान पूर्वक सुनें।

४८. साधु जब कर्म क्षय के हेतु उपवास, बेला आदि तप करता है तो निरवद्य योग के निरोध से उसके सहचर संवर होता है।

४९. श्रावक जब कर्म-क्षय के हेतु उपवास, बेला आदि तप करता है तो सावद्य योग का निरोध करने से सहचर विरति संवर भी होता है।

५०. श्रावक जे जे पुदगल भोगवें, ते सावद्य जोग व्यापार हो।
त्यांरो त्याग कीयां थी विरत संवर हुवें, तप पिण नीपजें लार हो।।

५१. साधु कल्पें ते पुदगल भोगवे, ते निरवद जोग व्यापार हो।
त्यांनें त्याग्यां सूं तपसा नीपनी, जोग रूंध्यां रो संवर श्रीकार हो।।

५२. साधु रो हालवो चालवों बोलवों, ते तो निरवद जोग व्यापार हो।
निरवद जोग रूंध्यां जितलों संवर हुवों, तपसा पिण नीपजें श्रीकार हो।।

५३. श्रावक रें हालवो चालवों बोलवों, सावद्य निरवद व्यापार हो।
सावद्य रा त्याग सूं विरत संवर हुवें, निरवद त्याग्या सूं संवर श्रीकार हो।।

५४. चारित नें तों विरत संवर कह्यों, ते तो इविरत त्याग्यां होय हो।
अजोग संवर सुभ जोग रूंध्यां हुवें, तिण माहे संक न कोय हो।।

५५. संवर निज गुण निश्चेंइ जीव रा, तिणनें भाव जीव कह्यों जगनाथ हो।
जिण दरब नें भाव जीव नहीं ओळख्या, तिणरो घट सूं न गयो मिथ्यात हो।।

५६. संवर पदार्थ नें ओळखायवा, जोड़ कीधी नाथ दुवारा मझार हो।
संवत अठारें वरसें छपनें, फागुण विद तेरस सुक्रवार हो।।

५०. श्रावक के सारे पौद्गलिक भोग-सावद्य योग व्यापार हैं। उनके प्रत्याख्यान से विरति संवर होता है और साथ-साथ तप भी होता है।

५१. साधु कल्प्य पुद्गल वस्तुओं का सेवन करता है, वह निरवद्य योग-व्यापार है। इन वस्तुओं के त्याग से तपस्या होती है और योगों के निरोध से उत्तम संवर होता है।

५२. साधु का चलना, फिरना, बोलना आदि सब क्रियाएं निरवद्य योग-व्यापार हैं। निरवद्य योगों के निरोध के अनुपात से संवर होता है और साथ-साथ उत्तम तपस्या भी निष्पन्न होती है।

५३. श्रावक का चलना, फिरना, बोलना आदि सब क्रियाएं सावद्य और निरवद्य दोनों ही योग हैं। सावद्य योग के त्याग से विरति संवर होता है और निरवद्य योग के त्याग से उत्तम संवर होता है।

५४. चारित्र को विरति संवर कहा गया है और वह अविरति के प्रत्याख्यान से होता है। अयोग संवर शुभ योगों के निरोध से होता है। उसमें जरा भी संदेह नहीं है।

५५. संवर निश्चय ही जीव का स्वगुण है। भगवान ने इसे भाव-जीव कहा है। जो द्रव्य-जीव और भाव-जीव को नहीं पहचान सका, उसके हृदय से मिथ्यात्व दूर नहीं हुआ ऐसा समझो।

५६. यह जोड़ संवर पदार्थ का परिचय कराने के लिए नाथद्वार में सं. १८५६, फाल्गुन कृष्णा १३, शुक्रवार के दिन की है।

७ : निरजरा पदार्थ

दुहा

१. निरजरा पदार्थ सातमों, ते तो उजल वस्त अनूप।
ते निज गुण जीव चेतन तणों, ते सुणजों धर चूंप।।

ढाल : ९

(लय हो मुणिंद धन्य धन्य जंबू स्वाम नें)

निरजरा पदारथ ओळखों।।

१. आठ कर्म छें जीव रे अनाद रा, त्यांरी उतपत आश्रव दुवार हो। मुणिंद।।
ते उदें थइ नें पछें निरजरे, वले उपजें निरंतर लार हो। मुणिंद।।

२. दरब जीव छें तेहनें, असंख्याता प्रदेस हो।
सारां प्रदेसां आश्रव दुवार छें, सारां प्रदेसां कर्म प्रवेस हो।।

३. एक एक प्रदेस तेहनें, समें समें कर्म लागंत हो।
ते प्रदेस एकीका कर्म नां, समें समें लागे अनंत हो।।

४. ते कर्म उदें थइ जीव रे, समें समें अनंता झड़ जाय हो।
भरीया नींगल जूं कर्म मिटें नही, कर्म मिटवा रो न जांणें उपाय हो।।

निर्जरा पदार्थ

दोहा

१. निर्जरा सातवां पदार्थ है। यह अनुपम उज्ज्वल वस्तु है और जीव चेतन का स्वाभाविक गुण है। उसे ध्यान लगाकर सुनें।

ढाल : ९

निर्जरा पदार्थ को पहचानें।

१. अनादिकाल से जीव के आठ कर्मों का बंध है। उनकी उत्पत्ति के हेतु आश्रवद्वार हैं। वे उदय में आते हैं और फिर झड़ जाते हैं और इस तरह निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।

२. द्रव्य जीव के अंसख्यात प्रदेश होते हैं। सभी प्रदेश आश्रव के द्वार हैं। और सभी प्रदेशों से कर्मों का प्रवेश होता है।

३. जीव के एक-एक प्रदेश के प्रतिसमय कर्म लगते हैं। इस प्रकार एक-एक कर्म के प्रतिसमय अनन्त प्रदेश लगते हैं।

४. वे कर्म उदय में आकर जीव के प्रतिसमय अनन्त संख्या में झड़ जाते हैं, परन्तु भरे घाव की तरह कर्मों का अन्त नहीं आता। कर्मों के अन्त करने के उपाय को न जानने से उनका अन्त नहीं आ सकता।

५. आठ करमां में च्यार घणघातीया, त्यासूं चेतन गुणां री हुइ घात हो।
ते अंसमात्र खयउपसम रहे सदा, तिणसूं उजलो रहें अंसमात हो।।

६. कांयक घनघातीया खयउपसम हूआ, जब कांयक उदें रह्या लार हो।
खयउपसम थी जीव उजलो हुवों, उदें थी उजलो नही छें लिगार हो।।

७. कांयक कर्म खय हुवें, कांयक उपसम हुवें ताहि हो।
ते खयउपसम भाव छें उजलो, चेतन गुण परजाय हो।।

८. जिम जिम कर्म खयउपसम हूवें, तिम तिम जीव उजल हुवें आंम हो।
जीव उजलो तेहीज निरजरा, ते भाव जीव छें तांम हो।।

९. देस थकी जीव उजलो हुवें, तिणनें निरजरा कही भगवांन हो।
सर्व उजल ते मोख छें, ते मोख छें परम निधांन हो।।

१०. ग्यांनावरणी खयउपसम हूआं नीपजें, च्यार ग्यांन नें तीन अगनांन हो।
भणवों आचारंग आदि दे, चवदें पूर्व रो ग्यांन हो।।

११. ग्यांनावर्णी री पांच प्रक्त मझे, दोय खयउपसम रहें छें सदीव हो।
तिणसूं दोय अग्यांन रहें सदा, अंसमात्र उजल रहें जीव हो।।

१२. मिथ्याती रे तो जगन दोय अग्यांन छें, उतकष्टा तीन अगनांन हो।
देस उणों दस पूर्व उतकष्टों भणें, इतलों उतकष्टो खयउपसम अग्यांन हो।।

१३. समदिष्टी रे जगन दोय ग्यांन छें, उतकष्टा च्यार गिनांन हो।
उतकष्टों चवदें पूर्व भणें, एहवों खयउपसम भाव निधांन हो।।

१४. मतग्यांनावर्णी खयउपसम हूआं, नीपजें मत गिनांन मत अगिनांन हो।
सुरत ग्यांनावरणी खयउपसम हूआं, नीपजें सूरत गिनांन अगनांन हो।।

५. आठ कर्मों में चार घनघाती कर्म हैं। उनसे चेतन के स्वाभाविक गुणों की घात होती है। परन्तु उनका अंशमात्र क्षयोपशम सब समय रहता है। उससे जीव कुछ अंश में उज्ज्वल रहता है।

६. घनघाती कर्मों का कुछ क्षयोपशम होने से कुछ उदय बाकी रहता है। क्षयोपशम से जीव उज्ज्वल होता है। पर उदय से जरा भी उज्ज्वल नहीं होता।

७. कर्मों के कुछ क्षय और कुछ उपशम से क्षयोपशम भाव होता है। यह क्षयोपशम भाव उज्ज्वल है और चेतन जीव का गुण-पर्याय है।

८. जैसे-जैसे कर्मों का क्षयोपशम होता है, वैसे-वैसे जीव उज्ज्वल होता जाता है। जीव का उज्ज्वल होना ही निर्जरा है। यह भाव जीव है।

९. जीव के देशरूप उज्ज्वल होने को ही भगवान ने निर्जरा कहा है। सर्वरूप उज्ज्वल होना मोक्ष है और वह मोक्ष परम निधि है।

१०. ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयापेशम होने से चार ज्ञान और तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। तथा आचारांग आदि का पठन तथा चौदह पूर्व का ज्ञान होता है।

११. ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृतियों में से दो का सदा क्षयोपशम रहता है, उससे दो अज्ञान सदा रहते हैं और जीव अंशमात्र उज्ज्वल रहता है।

१२. मिथ्यात्वी के जघन्य दो और उत्कृष्ट तीन अज्ञान होते हैं। उत्कृष्ट में देश-न्यून दस पूर्व पढ़ ले, इतना उत्कृष्ट क्षयोपशम अज्ञान होता है।

१३. सम्यक्‌दृष्टि के जघन्य दो और उत्कृष्ट चार ज्ञान होते हैं। उत्कृष्ट चौदह पूर्व तक पढ़ ले, ऐसी क्षयोपशम भाव की निधि होती है।

१४. मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होने से मतिज्ञान और मति-अज्ञान उत्पन्न होते हैं, और श्रुतज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होने से श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान उत्पन्न होते हैं।

१५. वले भणवो आचारंग आदि दे, समदिष्टी रे चवदें पूर्व ग्यांन हो।
मिथ्याती उतकष्टों भणें, देस उणो देस पूर्व लग जांण हो।।

१६. अविध ग्यांनावर्णी खयउपसम हूआं, समदिष्टी पांमें अवध गिनांन हो।
मिथ्यादिष्टी नें विभंग नांण उपजें, खयउपसम प्रमांण जांण हो।।

१७. मनपजवावर्णी खयउपसम्यां, उपजें मनपजवा नांण हो।
ते साध समदिष्टी नें उपजें, एहवो खयउपसम भाव प्रधांन हो।।

१८. ग्यांन अग्यांन सागार उपीयोग छें, दोयां रों एक सभाव हो।
कर्म अलगा हूआ नीपजें, ए खयउपसम उजल भाव हो।।

१९. दर्शणावर्णी खयउपसम हूआं, आठ बोल नीपजें श्रीकार हो।
पांच इंद्री नें तीन दर्शण हुवें, ते निरजरा उजला तंत सार हो।।

२०. दर्शणावर्णी री नव प्रकत मझे, एक प्रकत खयउपसम सदीव हो।
तिणसूं अचखू दर्शण नें फरस इंदरी सदा रहें, खयउपसम भाव जीव हो।।

२१. चखू दर्शणावर्णी खयउपसम हूआं, चखू दर्शण नें चखू इंद्री होय हो।
कर्म अलगा हूआं उजलो हूओ, जब देखवा लागो सोय हो।।

२२. अचखू दर्शणावर्णी विशेष थी, खयउपसम हुवें तिण वार हो।
चखू टाले सेष इंद्रीयां, खयउपसम हुवें इंद्री च्यार हो।।

२३. अवधि दर्शणावर्णी खयउपसम हुआं, उपजें अवधि दर्शण विशेष हो।
जब उतकष्टो देखें जीव एतलों, सर्व रूपी पुदगल ले देख हो।।

२४. पांच इंद्री नें तीनोइ दर्शण, ते खयउपसम उपीयोग मणाकार हो।
ते वांनगी केवल दर्शण माहिली, तिणमें संका म राखों लिगार हो।।

१५. सम्यक्दृष्टि के उत्कर्षतः आचारांग आदि का पठन तथा चौदह पूर्व का ज्ञान होता है। और मिथ्यात्वी उत्कर्षतः देश-न्यून दस पूर्व तक का ज्ञानाभ्यास कर सकता है।

१६. अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयापेशम होने से सम्यक्दृष्टि अवधि-ज्ञान प्राप्त करता है और मिथ्यादृष्टि को क्षयोपशम के परिणामानुसार विभंग अज्ञान उत्पन्न होता है।

१७. मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है। यह प्रधान क्षयोपशम भाव सम्यक् दृष्टि साधु को उत्पन्न होता है।

१८. ज्ञान, अज्ञान दोनों साकार उपयोग हैं और इन दोनों का स्वभाव एक-सा है। ये कर्मों के दूर होने से उत्पन्न होते हैं और ये क्षयोपशम उज्ज्वल भाव हैं।

१९. दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से आठ उत्तम बोल उत्पन्न होते हैं पांच इन्द्रियां और तीन दर्शन। वे निर्जरा-जन्य उज्ज्वल सार तत्त्व हैं।

२०. दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियों में से एक प्रकृति सदा क्षयोपशम रूप रहती है। उससे अचक्षु दर्शन और स्पर्श इन्द्रिय सदा रहती है। क्षयोपशम भाव-जीव है।

२१. चक्षुदर्शनावरणीय का क्षयोपशम होने से चक्षु दर्शन और चक्षु इन्द्रिय प्राप्त होती है। कर्म दूर होने से जीव उज्ज्वल होता है, जिससे वह देखने लगता है।

२२. अचक्षुदर्शनावरणीय का विशेष क्षयोपशम होता है तब चक्षु को छोड़कर बाकी चार क्षयोपशम इन्द्रियां प्राप्त होती हैं।

२३. अवधिदर्शनावरणीय का क्षयोपशम होने से विशेष अवधि दर्शन उत्पन्न होता है। उससे जीव उत्कृष्टतः सर्व रूपी पुद्‌गलों को देखने लगता है।

२४. पांच इन्द्रियां और तीनों दर्शन वे क्षयोपशम अनाकार उपयोग हैं। वे केवलदर्शन के नमूने हैं। उसमें जरा भी शंका न रखें।

२५. मोह कर्म खयउपसम हूआं, नीपजें आठ बोल अमांम हो।
च्यार चारित नें देस विरत नीपजें, तीन दिष्टी उजल होय तांम हो।।

२६. चारित मोह री पचीस प्रकत मझे, केइ सदा खयउपसम रहें ताहि हो।
तिणसूं अंस मात उजलो रहें, जब भला वरतें छें अधवसाय हो।।

२७. कदे खयउपसम इधिकी हूवें, जब इधिका गुण हुवें तिण मांहि हो।
खिमा दया संतोषादिक गुण वधें, भली लेश्यादि वरतें जब आय हो।।

२८. भला परिणांम पिण वरतें तेहनें, भला जोग पिण वरतें ताहि हो।
धर्म ध्यांन पिण ध्यावें किण समें, ध्यावणी आवें मिटीयां कषाय हो।।

२९. ध्यांन परिणांम जोग लेस्या भली, वले भला वरतें अधवसाय हो।
सारा वरतें अंतराय खयउपसम हूआं, मोह कर्म अलगा हूआं ताहि हो।।

३०. चोकड़ी अंताणुबंधी आदि दे घणी प्रक्तां खयउपसम हुवें ताहि हो।
जब जीव रे देस विरत नीपजें, इणहीज विध च्यारूं चारित आय हो।।

३१. मोहणी खयउपसम हूआं नीपनों, देस विरत नें चारित च्यार हो।
वले खिमा दयादिक गुण नीपनां, सगलाइ गुण श्रीकार हो।।

३२. देस विरत नें च्यारूइ चारित भला, ते गुण रतनां री खांन हो।
ते खायक चारित री वांनगी, एहवो खयउपसम भाव प्रधांन हो।।

३३. चारित नें विरत संवर कह्यों, तिणसूं पाप रूंधें छें ताहि हो।
पिण पाप झरी नें उजल हूओं, तिणनें निरजरा कही इण न्याय हो।।

३४. दर्शण मोहणी खयउपसम हूआं, नीपजें साची सुध सरधांन हो।
तीनूं दिष्ट में सुध सरधांन छें, ते तो खयउपसम भाव निधांन हो।।

२५. मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से ये आठ बोल उत्पन्न होते हैं चार चारित्र, देश-विरति और तीन उज्ज्वल दृष्टि।

२६. चारित्र मोहनीय कर्म की पच्चीस प्रकृतियों में से कई सदा क्षयोपशम रूप में रहती हैं। उससे जीव अंशमात्र उज्ज्वल रहता है और शुभ अध्यवसाय का वर्तन होता है।

२७. कभी क्षयोपशम अधिक होता है तब जीव में अधिक गुण उत्पन्न होते हैं। क्षमा, दया, संतोष आदि गुणों की वृद्धि होती है और शुभ लेश्याएं वर्तती हैं।

२८. जीव के शुभ परिणाम तथा शुभ योगों का वर्तन होता है, कभी-कभी धर्म-ध्यान भी करता है। ध्यान की स्थिति कषाय के मिटने से आती है।

२९. शुभ ध्यान, शुभ परिणाम, शुभ योग, शुभ लेश्या और शुभ अध्यवसाय ये सभी अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होने पर तथा मोहकर्म के दूर होने पर होते हैं।

३०. अनन्तानुबंधी आदि कषाय की चौकड़ी तथा अन्य बहुत सी प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से जीव के देश-विरति उत्पन्न होती है और इसी तरह चारों चारित्र प्राप्त होते हैं।

३१. मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से देश-विरति और चार चारित्र तथा क्षमा, दया आदि सभी उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं।

३२. देश-विरति और चारों चारित्र शुभ हैं। वे गुणरूपी रत्नों की खान हैं। ऐसा प्रधान क्षयोपशम भाव क्षायिक चारित्र की बानगी (नमूने) है।

३३. चारित्र को विरति संवर इसलिए कहा जाता है कि उससे पापों का निरोध होता है। पाप-क्षय होने पर जीव उज्ज्वल हुआ, इस न्याय से उसे निर्जरा कहा है।

३४. दर्शनमोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से सच्ची एवं शुद्ध श्रद्धा उत्पन्न होती है। तीनों दृष्टियों में जो शुद्ध श्रद्धान है, वह क्षयोपशम भाव निधि है।

३५. मिथ्यात मोहणी खयउपसम हुआं, मिथ्यादिष्टी उजली होय हो।
जब केयक पदारथ सुध सरधलें, एहवों गुण नीपजें छें सोय हो।।

३६. मिश्र मोहणी खयउपसम हुआं, समामिथ्या दिष्टी उजली हुवें तांम हो।
जब घणां पदार्थ सुध सरधलें, एहवों गुण नीपजें अमांम हो।।

३७. समकत मोहणी खयउपसम हूआं, नीपजें समकत रत्न प्रधांन हो।
नव ही पदार्थ सुध सरधलें एहवों खयउपसम भाव निधांन हो।।

३८. मिथ्यात मोहणी उदें छें ज्यां लगे, समामिथ्या दिष्टी नही आवंत हो।
मिश्र मोहणी रा उदा थकी, समकत नही पावंत हो।।

३९. समकत मोहणी ज्यां लगें उदें रहें, त्यां लग खायक समकत आवें नांहि हो।
एहवी छाक छें दंसण मोह कर्म नीं, नांखें जीव नें भरमजाल माहि हो।।

४०. खयउपसम भाव तीनोइ दिष्टी छें, ते सगलोइ सुध सरधांन हो।
ते खायक समकत माहिली, वांनगी मातर गुण निधांन हो।।

४१. अंतराय कर्म खयउपसम हूआं, आठ गुण नीपजें श्रीकार हो।
पांच लबध तीन वीर्य निपजें, हिवे तेहनों सुणों विसतार हो।।

४२. पांचोइ प्रकत अंतराय नीं, सदा खयउपसम रहें छें साख्यात हो।
तिणसूं पाचूं लबध बाल वीर्य, उजल रहें छें अल्पमात हो।।

४३. दांना अंतराय खयउपसम हूआं, दांन देवा री लबध उपजंत हो।
लाभा अंतराय खयउपसम हूआं, लाभ री लबध खुलंत हो।।

३५. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से मिथ्यादृष्टि उज्ज्वल होती है। जिससे जीव कई पदार्थों में सम्यक् श्रद्धा करने लगता है। ऐसा गुण उत्पन्न होता है।

३६. मिश्रमोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से सम्यक्-मिथ्यादृष्टि उज्ज्वल होती है। उस समय जीव अधिक पदार्थों को शुद्ध श्रद्धता है। ऐसा विशिष्ट गुण उत्पन्न होता है।

३७. सम्यक्त्व-मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व रूपी प्रधान रत्न उत्पन्न होता है। इस क्षयोपशम से जीव नवों ही पदार्थों की शुद्ध श्रद्धा करने लगता है। क्षयोपशम भाव ऐसा ही गुणकारी निधान है।

३८. जब तक मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म उदय में रहता है, तब तक सम्यक्-मिथ्यादृष्टि नहीं आती। मिश्र-मोहनीय कर्म के उदय से जीव सम्यक्त्व नहीं पाता।

३९. जब तक सम्यक्त्व-मोहनीय कर्म उदय में रहता है तब तक क्षायिक सम्यक्त्व नहीं आता। दर्शनमोहनीय कर्म का ऐसा ही आवरण है कि यह जीव को भ्रम जाल में डाल देता है।

४०. तीनों ही दृष्टियां क्षयोपशम भाव हैं। वे सभी शुद्ध श्रद्धा रूप हैं। वे क्षायिक सम्यक्त्व की बानगी नमूने रूप गुण निधि मात्र हैं।

४१. अंतराय कर्म का क्षयोपशम होने से आठ उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं पांच लब्धि और तीन वीर्य। अब उनका विस्तार सुनें।

४२. अन्तराय कर्म की पांचों ही प्रकृतियां सदा प्रत्यक्षतः क्षयोपशम रूप में रहती हैं। उससे पांच लब्धि ओर बाल वीर्य अल्प प्रमाण में उज्ज्वल रहते हैं।

४३. दानांतराय कर्म का क्षयोपशम होने से दान देने की लब्धि उत्पन्न होती है। लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम होने से लाभ की लब्धि प्रकट होती है।

४४. भोगा अंतराय खयउपसम्यां, भोग लबध उपनें छें ताहि हो।
उपभोगा अंतराय खयउपसम हूआं, उपभोग लबध उपजें आय हो।।

४५. दांन देवा री लब्द निरंतर, दांन देवें ते जोग व्यापार हो।
लाभ लब्ध पिण निरंतर रहें, वस्त लाभें ते किणही वार हो।।

४६. भोग लबद तो रहें छें निरंतर, भोग भोगवें ते जोग व्यापार हो।
उपभोग पिण लब्ध छें निरंतर, उपभोग भोगवें जिण वार हो।।

४७. अंतराय अलगी हूआं जीव रे, पुन सारू मिलसी भोग उपभोग हो।
साधु पुदगल भोगवें ते सुभ जोग छें, ओर भोगवें ते असुभ जोग हो।।

४८. वीर्य अंतराय खयउपसम हूआं, वीर्य लबध उपजें छें ताहि हो।
वीर्य लबध ते सगत छें जीव री, उतकष्टी अनंती होय जाय हो।।

४९. तिण वीर्य लबध रा तीन भेद छें, तिणरी करजों पिछांण हो।
बाल वीर्य कह्यों छें बाल रो, ते चोथा गुणठांणा तांई जांण हो।।

५०. पिंडत वीर्य कह्यों पिडंत तणो, छठा थी लेइ चवदमें गुणठांण हो।
बाल पिंडत वीर्य कह्यों छें श्रावक तणो, ए तीनोंई उजल गुण जांण हो।।

५१. कदे जीव वीर्य नें फोडवे, ते छें जोग व्यापार हो।
सावद्य निरवद तो जोग छें, ते वीर्य सावद्य नही छें लिगार हो।।

५२. वीर्य तो निरंतर रहें, चवदमा गुणठांणा लग जांण हो।
बारमा तांइ तो खयउपसम भाव छें, खायक तेरमें चवदमें गुणठांण हो।।

५३. लबध वीर्य नें तो वीर्य कह्यों, करण वीर्य नें कह्यों जोग हो।
ते पिण सगत वीर्य ज्यां लगे, त्यां लग रहें पुदगल संजोग हो।।

४४. भोगांतराय कर्म का क्षयोपशम होने से भोग की लब्धि उत्पन्न होती है और उपभोगांतराय कर्म का क्षयोपशम होने से उपभोगलब्धि उत्पन्न होती है।

४५. दान देने की लब्धि निरन्तर रहती है। दान देना योग-व्यापार है। लाभ की लब्धि भी निरन्तर रहती है किन्तु वस्तु लाभ कभी-कभी करता है।

४६. भोग की लब्धि भी निरन्तर रहती है। भोग का सेवन योग-व्यापार है। उपभोग-लब्धि भी निरन्तर रहती है, उपभोग भोगने के समय होता है।

४७. अंतराय कर्म के अलग होने से जीव को पुण्यानुसार भोग-उपभोग मिलते हैं। साधु पुद्गलों का सेवन करते हैं, वह शुभयोग है। अन्य जीवों का भोग सेवन अशुभ योग है।

४८. वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम होने से वीर्य-लब्धि उत्पन्न होती है। वीर्य-लब्धि जीव की शक्ति है और वह उत्कृष्ट रूप में अनन्त होती है।

४९. उस वीर्य-लब्धि के तीन भेद हैं, उनकी पहचान करें। बाल-वीर्य अविरत के होता है और वह चतुर्थ गुणस्थान तक रहता है।

५०. पण्डित-वीर्य पण्डित के बतलाया गया है। यह छट्ठे से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक रहता है। बाल-पण्डित वीर्य श्रावक के होता है। इन तीनों ही वीर्यों को उज्ज्वल गुण जानें।

५१. जीव कभी इस वीर्य को फोड़ता (काम में लेता) हैं, वह योग-व्यापार है। सावद्य व निरवद्य योग होते हैं परन्तु वीर्य जरा भी सावद्य नहीं होता।

५२. वीर्य-लब्धि निरन्तर चौदहवें गुणस्थान तक रहती है। बारहवें गुणस्थान तक क्षयोपशम भाव है तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में क्षायिक भाव।

५३. लब्धि-वीर्य को वीर्य कहा गया है और करण-वीर्य को योग कहा गया है। जब तक शक्ति वीर्य रहता है तभी तक पुद्गल-संयोग रहता है।

५४. पुदगल विण वीर्य सगत हुवें नही, पुदगल विना नही जोग व्यापार हो।
पुदगल लागा छें ज्यां लग जीव रे, जोग वीर्य छें संसार मझार हो।।

५५. वीर्य निज गुण छें जीव रों, अंतराय अलगा हूआं जांण हो।
ते वीर्य निश्चेंइ भाव जीव छें, तिणमें संका मूल म आंण हो।।

५६. एक मोह कर्म उपसम हुवें, जब नीपजें उपसम भाव दोय हो।
उपसम समकत उपसम चारित हुवें, ते तो जीव उजलों हुवों सोय हो।।

५७. दर्शण मोहणी कर्म उपसम हुवां, निपजें उपसम समकत निधांन हो।
चारित मोहणी उपसम हूआं, प्रगटें उपसम चारित प्रधांन हो।।

५८. च्यार घणघातीया कर्म खय हुवें, जब प्रगट हुवें खायक भाव हो।
ते गुण सर्वथा उजला, त्यांरो जूओ जूओ सभाव हो।

५९. ग्यांनावरणी सर्वथा खय हूआं, उपजें केवल ग्यांन हो।
दर्शणावर्णी पिण खय हुवें सरवथा, उपजें केवल दरसण परधांन हो।।

६०. मोहणी करम खय हुवे सर्वथा, बाकी रहें नहीं अंसमात हो।
जब खायक समकत परगटें, वले खायक चारित जथाख्यात हो।।

६१. दंसण मोहणी खय हुवे सर्वथा, जब निपजें खायक समकत प्रधांन हो।
चारित मोहणी खय हूआं, नीपजें खायक चारित निधांन हो।।

६२. अंतराय कर्म अलगों हूआं, खायक वीर्य सकत हुवें ताहि हो।
खायक लबध पांचूंइ परगटें, किणही वात री नही अंतराय हो।।

६३. उपसम खायक खयउपसम निरमला, ते निज गुण जीव रा निरदोष हो।
ते तों देस थकी जीव उजलों, सर्व उजलों ते मोख हो।।

५४. पुद्गल के बिना वीर्य शक्ति नहीं होती। पुद्गल के बिना योग व्यापार भी नहीं होता। जब तक जीव से पुद्गल लगे रहते हैं तब तक संसार में योग वीर्य रहता है।

५५. वीर्य जीव का अपना गुण है और यह अन्तराय कर्म अलग होने से होता है। वह वीर्य निश्चयतः भाव-जीव है। उसमें जरा भी शंका न करें।

५६. उपशम केवल मोह कर्म का होता है। उससे दो उपशम-भाव निष्पन्न होते हैं (१) उपशम सम्यक्त्व (२) उपशम चारित्र। वह जीव की उज्ज्वलता है।

५७. दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होने से उपशम सम्यक्त्व निधि निष्पन्न होती है। चारित्रमोहनीय कर्म का उपशम होने से प्रधान उपशम चारित्र प्रकट होता है।

५८. चार घनघाती कर्मों का क्षय होने से क्षायिक-भाव प्रकट होता है। वे सर्वथा उज्ज्वल गुण हैं। उनका स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

५९. ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है और दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से प्रधान केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

६०. मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से उसके अंशमात्र भी न रहने से क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होता है और यथाख्यात क्षायिक चारित्र प्रकट होता है।

६१. दर्शनमोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से प्रधान क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होता है। चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होने से क्षायिक चारित्र निधि प्राप्त होती है।

६२. अंतराय कर्म के अलग होने से क्षायिक वीर्य-शक्ति उत्पन्न होती है तथा पांचों ही क्षायिक लब्धियां प्रकट होती हैं। किसी भी बात की अंतराय नहीं रहती।

६३. उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम भाव निर्मल हैं। वे जीव के निर्दोष स्वगुण हैं। उनसे जीव अंशतः उज्ज्वल होता है और सर्वरूप उज्ज्वल होना, वह मोक्ष है।

६४. देस विरत श्रावक तणी, सर्व विरत साधू री छें ताहि हो।
देस विरत समाइ सर्व विरत में, ज्यूं निरजरा समाइ मोख माहि हो।।

६५. देस थी जीव उजलो ते निरजरा, सर्व उजलो ते जीव मोख हो।
तिणसूं निरजरा नें मोख दोनूं जीव छें, उजल गुण जीव रा निरदोष हो।।

६६. जोड़ कीधी निरजरा ओळखायवा, नाथ दुवारा सहर मझार हो।
संवत अठारे वर्श छपनें, फागुण सुदि दसम गुरवार हो।।

६४. श्रावक की देश-विरति होती है और साधु की सर्व-विरति। जिस तरह देश-विरति सर्व-विरति में समा जाती है, उसी तरह निर्जरा मोक्ष में समा जाती है।

६५. जीव का एक देश उज्ज्वल होना निर्जरा है और सर्व उज्ज्वल होना मोक्ष। इसलिए निर्जरा और मोक्ष दोनों जीव हैं, जीव के निर्दोष उज्ज्वल गुण हैं।

६६. निर्जरा को समझाने के लिए यह जोड़ नाथद्वारा शहर में सं. १८५६, फाल्गुन शुक्ला दशमी, गुरुवार को की गई है।

दुहा

१. निरजरा गुण निरमल कह्यों, ते उजल गुण जीव रों वशेख।
ते निरजरा हुवें छें किण विधें, सुणजो आंण ववेक।।

२. भूख तिरषा सी तापादिक, कष्ट भोगवें विविध प्रकार।
उदें आया ते भोगव्यां, जब कर्म हुवें छें न्यार।।

३. नरकादिक दुख भोगव्यां, कर्म घस्यांथी हलकों थाय।
आ तो सहजां निरजरा हुइ जीव रें, तिणरों न कीयों मूल उपाय।।

४. निरजरा तणों कांमी नही, कष्ट करें छें विविध प्रकार।
तिणरा कर्म अल्प मातर झरें, अकांम निरजरा नों एह विचार।।

५. अह लोक अर्थे तप करें, चक्रवतादिक पदवी कांम।
केइ परलोक नें अर्थे करें नही निरजरा तणा परिणांम।।

६. केइ जस महिमा वधारवा, तप करें छें तांम।
इत्यादिक अनेक कारण करें, ते निरजरा कही छें अकांम।।

७. सुध करणी करें निरजरा तणी, तिणसूं कर्म कटें छें तांम।
थोड़ों घणों जीव उजलों हुवें, ते सुणजों राखे चित ठांम।।

दोहा

१. निर्जरा को निर्मल गुण कहा है। वह जीव का विशेष उज्ज्वल गुण है। वह निर्जरा किस प्रकार होती है। इसे विवेकपूर्वक सुनें।

२. जीव भूख, प्यास, शीत, ताप आदि विविध प्रकार के कष्टों को भोगता है। उदय में आए हुए कर्मों को भोगने से वे अलग होते हैं।

३. नरक आदि के दुःखों को भोगने से कर्म के घिसने से जीव हल्का होता है। यह जीव के सहज निर्जरा होती है। उसके लिए जीव ने कोई उपाय नहीं किया।

४. जो निर्जरा का कामी नहीं होता फिर भी अनेक तरह के कष्ट सहन करता है, उसके कर्म अल्पमात्र झड़ते हैं। यह अकाम निर्जरा का विचार है।

५. कई इस लोक के लिए चक्रवर्ती आदि पदवियों की कामना से, कई परलोक के लिए तप करते हैं। किन्तु उनके निर्जरा के परिणाम नहीं होते।

६. कई यश महिमा बढ़ाने के लिए तप करते हैं। इत्यादि अनेक कारणों से जो तप किया जाता है, उसको अकाम निर्जरा कहा गया है।

७. जीव निर्जरा की शुद्ध करनी करता है उससे कर्म कटते हैं। जीव अल्प व ज्यादा उज्ज्वल होता है उसे चित्त को स्थिर कर सुनें।

ढाल : १०

(लय पूज्य भिखन जी रो समरण करतां)

आ सुध करणी छें कर्म काटण री।।

१. देस थकी जीव उजल हुवों छें, ते तों निरजरा अनूप जी।
हिवें निरजरा तणी सुध करणी कहूं छूं, ते सुणजों धर चूंप जी।।

२. ज्यूं साबू दे कपड़ा नें तपावें, पांणी सूं छांटें करें संभाल जी।
पछें पांणी सूं धोवें कपड़ा नें, जब मेल छंटें ततकाल जी।।

३. ज्यूं तप करनें आतम नें तपावें, ग्यांन जल सूं छांटे ताहि जी।
ध्यांन रूप जल माहे झखोलें, जब कर्म मेंल छट जाय जी।।

४. ग्यांन रूप साबण सुध चोखें, तप रूपी निरमल नीर जी।
धोबी ज्यूं छें अंतर आत्मा, ते धोवे छें निज गुण चीर जी।।

५. कांमी छें एकंत कर्म काटण रो, ओर वंछा नही काय जी।
ते तो करणी एकंत निरजरा री, तिणसूं कर्म झड जाय जी।।

६. कर्म काटण री करणी चोखी, तिणरा छें बारें भेद जी।
तिण करणी कीयां जीव उजल हुवें छें, ते सुणजों आंण उमेद जी।।

७. अणसण करे च्यारूं आहार त्यागें, करें जावजीव पचखांण जी।
अथवा थोड़ा काल तांइ त्यागें, एहवी तपसा करें जांण जांण जी।।

८. सुध जोग रूंध्या साधु रे हूवों संवर, श्रावक रें विरत हुइ ताहि जी।
पिण कष्ट सह्यां सूं निरजरा हुवें, तिणसूं घाल्यों छें निरजरा माहि जी।।

९. ज्यूं ज्यूं भूख त्रिषा लागें, ज्यूं ज्यूं कष्ट उपजें अतंत जी।
ज्यूं ज्यूं कर्म कटे हुवे न्यारा, समें समें खिरे छें अनंत जी।।

ढाल : १०

कर्म काटने की यह शुद्ध करनी है।

१. जीव का अंशरूप में उज्ज्वल होना अनुपम निर्जरा है। अब निर्जरा की शुद्ध करनी का विवेचन करता हूं। उसे ध्यान पूर्वक सुनें।

२-३. जिस तरह साबुन डालकर कपड़ों को तपाया जाता है और सावधानी से जल में छांटा जाता है। फिर जल से धोने से कपड़ों का मैल तत्काल छूट जाता है, उसी तरह आत्मा को तप द्वारा तपाया जाता है। ज्ञानरूपी जल में छांटा जाता है और अन्त में ध्यान रूपी जल में धोने से जीव का कर्मरूपी मैल दूर हो जाता है।

४. ज्ञानरूपी शुद्ध अच्छा साबुन, तपरूपी निर्मल नीर और धोबी की तरह अन्तर आत्मा है। जो अपने निज गुणरूपी कपड़ों को धोता है।

५. जो केवल कर्म-क्षय करने का कामी (इच्छुक) है और किसी प्रकार की कामना नहीं है। वह एकांत निर्जरा की करनी है। उससे कर्म झड़ जाते हैं।

६. कर्म-क्षय करने की करनी उत्तम है, उसके बारह भेद हैं। उस करनी के करने से जीव उज्ज्वल होता है। उसे उत्साह पूर्वक सुनें।

७. जीव चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन प्रत्याख्यान कर अनशन करता है अथवा कुछ काल के लिए त्यागता है। ऐसी तपस्या सलक्ष्य करता है।

८. साधु के शुभ योगों का निरोध होने से संवर होता है और श्रावक के विरति संवर होता है। परन्तु कष्ट सहने से निर्जरा होती है। इसलिए उसे निर्जरा में समाविष्ट किया गया है।

९. जैसे-जैसे भूख और प्यास लगती है वैसे-वैसे अनंत कष्ट उत्पन्न होता है और वैसे-वैसे कर्म कट कर अलग होते जाते हैं। इस तरह प्रति समय अनन्त कर्म झड़ते हैं।

१०. उणों रहें ते उणोदरी तप छें, ते तो दरब नें भाव छें न्यार जी।
दरब ते ऊपगरण उणा राखें, वले उणोइ करें आहार जी।।

११. भाव उणोदरी क्रोधादिक वरजें, कलहादिक दियें छें निवार जी।
समता भाव छें आहार उपधि थी, एहवो उणोदरी तप सार जी।।

१२. भिख्याचरी तप भिख्या त्याग्यां हुवें, ते अभिग्रहा छें विवध प्रकार जी।
ते तो द्रव खेतर काल भाव अभिग्रह छें, त्यांरो छें बोहत विस्तार जी।।

१३. रस रो त्याग करें मन सुधें, छांड्यो विगयादिक रो सवाद जी।।
अरस विरस आहार भोगवें समता सूं, तिणरें तप तणी हुवें समाद जी।।

१४. काया कलेस तप कष्ट कीयां हुवें, आसण करें विवध प्रकार जी।
सी तापादिक सहें खाज न खणें, वले न करें सोभा नें सिणगार जी।।

१५. परीसंलीणीया तप च्यार प्रकारें, त्यांरा जूआ जूआ छें नांम जी।
इंद्री कषाय नें जोग संलीण्या, विवत सेंणासण सेवणा तांम जी।।

१६. सोइंद्री नें विषय ना शब्द सूं रूंधे, विषें शब्द न सुणें किंवार जी।
कदा विषे रा सबद कानां में पडीया, तो राग धेष न करें लिगार जी।।

१७. इम चखू इंद्री रूप सूं संलीनता, घण इंद्री गंध सुं जांण जी।
रसइंद्री रस सु नें फरस इंद्री फरस सूं, सुरत इंद्री ज्यूं लीजों पिछांण जी।।

१८. कोध उपजावारो रुंधण करवों, उदें आयों निरफल करें तांम जी।
मांन माया लोभ इम हीज जांणों, कषाय संलीणीया तप हुवें आंम जी।।

१०. ऊन रहना (कमी करना) ऊनोदरी तप है। वह द्रव्य और भाव रूप से अलग-अलग है। उपकरण कम रखना और आहार कम करना द्रव्य ऊनोदरी है।

११. क्रोध आदि का वर्जन कर कलह आदि का निवारण करना भाव ऊनोदरी है। आहार और उपधि में समता भाव रखना यह उत्तम ऊनोदरी तप हैं।

१२. भिक्षा-त्यागने से भिक्षाचारी तप होता है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अभिग्रह भेद से विविध प्रकार का होता है। उनका बहुत विस्तार है।

१३. शुद्ध मन से रसों का त्याग करता है, विगय आदि का स्वाद छोड़ता है तथा अरस और विरस आहार को समभाव से भोगता है, उसके तप की समाधि होती है।

१४. शरीर को कष्ट देने से काय क्लेश तप होता है। वह विविध प्रकार के आसन करने, शीत ताप आदि सहने, खाज न करने, शरीर शोभा और श्रृंगार न करने से होता है।

१५. प्रतिसंलीनता तप चार प्रकार का होता है। उनके अलग-अलग नाम हैं (१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता (२) कषाय प्रतिसंलीनता (३) योग प्रतिसंलीनता और (४) विविक्तशयनासनसेवन।

१६. श्रोत्र-इन्द्रिय को उसके विषय शब्दों को रोकना, विषय-शब्द कभी न सुनना, कभी विषय-शब्द कान में पड़ें तो उन पर तनिक भी राग-द्वेष न करना श्रोत्र-इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप है।

१७. इसी तरह चक्षुरिन्द्रिय की रूप से प्रतिसंलीनता, घ्राणेन्द्रिय की गंध से प्रतिसंलीनता, रसनेन्द्रिय की रस से और स्पर्शनेन्द्रिय की स्पर्श से प्रतिसंलीनता को श्रोत्रेन्द्रिय की तरह जान लें।

१८. क्रोध की उत्पत्ति का निरोध करना, उदय में आए हुए को निष्फल करना, इसी तरह मान, माया और लोभ को जानें। यह कषाय संलीनता तप होता है।

१९. पाडुआ मन ने रुंधे देणों, भलों मन परवरतावणो तांम जी।
इम हीज वचन नें काया जांणों, जोग संलीणीया हुवें आंम जी।।

२०. अस्त्री पसू पिंडग रहीत थांनक सेवें, ते सुध निरदोषण जांण जी।
पीढ पाटादिक निरदोषण सेवें, विवत सेंणासण एम पिछांण जी।।

२१. छव प्रकारें बाहर्य तप कह्यों छें, ते प्रसिद्ध चावो दीसंत जी।
हिवें छ प्रकारें अभिंतर तप कहूं छूं, ते भाख्यो छें श्री भगवंत जी।।

२२. प्रायछित कह्यों छें दस प्रकारें, दोष आलोए प्रायछित लेवंत जी।
ते कर्म खपाय आराधक थावें, ते तो मुगत में वेगों जावंत जी।।

२३. विनों तप कह्यों सात प्रकारें, त्यांरो छें बोहत विसतार जी।
ग्यांन दर्शण चारित मन विनो, वचन काया नें लोग ववहार जी।।

२४. पांचूं ग्यांन तणा गुणग्रांम करणा, ए ग्यांन विनों करणों छें एह जी।
दर्शण विनां रा दोय भेद छें, सुसरषा नें अणासातणा तेह जी।।

२५. सुसरषा बडां री करणी, त्यांनें वंदणा करणी सीम नांम जी।
ते सुसरषा दस विध कही छें, त्यांरो जूआ जूआ नांम छें तांम जी।।

२६. गुर आयां उठ उभों होवणो, आसण छोडणो तांम जी।
आसण आमंत्रणों हरष सूं देणो, सतकार नें सनमांन देणों आंम जी।।

२७. वंदणा कर हाथ जोडी रहें उभों, आवता देख सांह्यों जाय जी।
गुर उभा रहें त्यां लग उभा रहिणों, जाअे जब पोहचावण जाअें ताहि जी।।

२८. अणअसातणा विना रा भेद, पेंतालीस कह्या जिणराय जी।
अरिहंत नें अरिहंत परूप्यों धर्म, वले आचार्य नें उवझाय जी।।

१९. अशुभ मन को रोक देना और शुभ मन को प्रवृत्त करना और इसी तरह वचन और काय को जानें। यह योग संलीनता तप होता है।

२०. स्त्री, पशु और नपुंसक रहित स्थानक को शुद्ध-निर्दोष जानकर उसका सेवन करना तथा निर्दोष पीठ (आसन), पाट आदि का सेवन करना विविक्तशयनासन संलीनता तप है।

२१. छह प्रकार का बाह्य तप कहा गया है। वह लोक प्रसिद्ध है। अब मैं भगवान द्वारा भाषित छह प्रकार का आभ्यन्तर तप कहता हूं।

२२. प्रायश्चित्त दस प्रकार का कहा गया है। जो दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित्त लेता है। वह कर्मों का क्षय कर आराधक बन शीघ्र मोक्ष में पहुंचता है।

२३. विनय तप सात प्रकार का कहा गया है (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) मन (५) वचन (६) काय और (७) लोक व्यवहार। उनका बहुत विस्तार है।

२४. पांचों ज्ञान के गुणग्राम करना ज्ञानविनय है। दर्शनविनय के दो भेद हैं (१) शुश्रूषा और (२) अनाशातना।

२५. बड़ों की शुश्रूषा करना, नत मस्तक हो उनकी वन्दना करना। वह शुश्रूषा दस प्रकार की कही गई है। उसके भिन्न-भिन्न नाम है।

२६-२७. गुरु के आने पर खड़ा होना, आसन छोड़ना, आसन के लिए आमंत्रण करना, हर्षपूर्वक आसन देना, सत्कार और सम्मान देना, वन्दना कर हाथ जोड़कर खड़ा रहना, आते देखकर सामने जाना, जब तक गुरु खड़े रहें खड़ा रहना, जब जाएं तब पहुंचाने जाना शुश्रुषा विनय है।

२८-२९. अनाशातनाविनय के जिनेश्वर ने पैंतालीस भेद कहे हैं। अर्हत्, और अर्हत् प्ररूपित धर्म, आचार्य और उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, संघ, क्रियावादी,

२९. थिवर कुल गण संघ नों विनों, किरीया वादी संभोगी जांण जी।
मतग्यांनादिक पांचोई ग्यांन रो, ए पनरेंई बोल पिछांण जी।।

३०. यां पनरां बोलां में पांच ग्यान फेर कह्या छें, ते दीसे छें चारित सहीत जी।
अें पांच ग्यांन नें फेर कह्या त्यांरी, विनां तणी ओर रीत जी।।

३१. यांरी आसातना टालणी नें विनों करणों, भगत कर देंणो बहु सनमांन जी।
गुणग्रांम करे नें दीपावणा त्यांनें, दर्शण विनों छें सुध सरधांन जी।।

३२. सामायक आदि दे पांचोई चारित, त्यांरो विनो करणों जथाजोग जी।
सेवा भगत त्यांरी हरष सूं करणी, त्यांसूं करणों निरदोष संभोग जी।।

३३. सावद्य मन नें परों निवारें, ते सावद्य छें बारें प्रकार जी।
बारें प्रकारें निरवद मन परवरतावें, तिणसूं निरजरा हुवें श्रीकार जी।।

३४. इमहिज सावद्य वचन बारे भेदें, तिण सावद्य नें देवें निवार जी।
निरवद वचन बोले निरदोषण, बारेंइ बोल वचन विचार जी।।

३५. काया अजेंणा सूं नही प्रवरतावें, तिणरा भेद कह्या सात जी।
ज्यूं सात भेद काया जेंणा सूं प्रवरतावें, जब कर्म तणी हुवें घात जी।।

३६. लोग ववहार विनों कह्यों सात प्रकारें, गुर समीपें वरतवों तांम जी।
गुरवादिक रे छांदे चालणों, ग्यांनादिक हेतें करणों त्यांरों कांम जी।।

३७. भणायो त्यांरों विनों वीयावच करणी, आरत गवेष करणों त्यांरों कांम जी।
प्रसताव अवसर नों जांण हुवेंणों, सर्व कार्य करणों अभिरांम जी।।

३८. वीयावच तप छें दस प्रकारें, ते वीयावच साधां री जांण जी।
कर्मां री कोड खपे छें तिण थी, नेड़ी हुवें छें निरवांण जी।।

संभोगी (समान धार्मिक), मतिज्ञान आदि पांचों ही ज्ञान ये पन्द्रह बोल पहचानें।

३०. उपर्युक्त पन्द्रह बोलों में पांच ज्ञान का जो पुनरुल्लेख हुआ है। वे चारित्र-सहित ज्ञान मालूम देते हैं। यहां जो पांच ज्ञान पुनः कहे हैं, उनके विनय की रीति भिन्न है।

३१. इनकी आशातना न कर विनय करना, भक्ति कर बहु-सम्मान देना तथा गुणगान कर उनकी महिमा बढ़ाना यह शुद्ध श्रद्धान रूप दर्शन विनय है।

३२. सामायिक आदि पांचों चारित्र शीलों का यथायोग्य विनय करना, उनकी हर्षपूर्वक सेवा-भक्ति करना और उनसे निर्दोष संभोग करना चारित्रविनय है।

३३. बारह प्रकार के सावद्य मन का निवारण करना और बारह ही प्रकार का जो निरवद्य मन है उसकी प्रवृत्ति करना मन-विनय है। उससे उत्तम निर्जरा होती है।

३४. इसी तरह बारह प्रकार के सावद्य वचन का निवारण करना और निर्दोष निरवद्य बारह वचन बोलना वचन-विनय है।

३५. अयतनापूर्वक काय-प्रवृत्ति नहीं करना। उसके सात प्रकार कहे गए हैं। वैसे ही यतनापूर्वक कायप्रवृत्ति के भी सात भेद हैं, उससे कर्मों का क्षय होता है यह काय-विनय तप है।

३६-३७. लोक व्यवहार विनय के सात प्रकार कहे गए हैं (१) गुरु के समीप रहना (२) गुरु की आज्ञा अनुसार चलना (३) ज्ञान आदि के लिए उनका कार्य करना (४) ज्ञान दिया हो उनका विनय व वैयावृत्त्य करना (५) आर्त-गवेषणा करना (६) प्रस्ताव-अवसर का जानकार होना (७) गुरु के सब कार्य अच्छी तरह करना।

३८. वैयावृत्त्य तप दस प्रकार का है। वह वैयावृत्त्य साधुओं की जाननी चाहिए। उससे कर्म-कोटि का क्षय होता है और निर्वाण नजदीक होता है।

३९. सझाय तप छें पांच प्रकारें, जे भाव सहीत करें सोय जी।
अर्थ नें पाठ विवरा सुध गिणीया, कर्मां रा भड खय होय जी।।

४०. आरत रुद्र ध्यांन निवारें, ध्यावें धर्म नें सुकल ध्यांन जी।
ध्यावतो ध्यावतो उतकष्टों ध्यावें, तो उपजें केवल ग्यांन जी।।

४१. विउसग तप छें तजवारो नांम, ते तो द्रब नें भाव छें दोय जी।
द्रब विउसग च्यार प्रकारे, ते विवरो सुणो सहू कोय जी।।

४२. शरीर विउसग सरीर रो तजवो, इम गण नो विउसग जांण जी।
उपधि नो तजवो ते उपधि विउसग, भात पांणी रो इमहीज पिछांण जी।।

४३. भाव विउसग रा तीन भेद छें, कषाय संसार नें कर्म जी।
कषाय विउसग च्यार प्रकार, क्रोधादिक च्यारूं छोड्यां छें धर्म जी।।

४४. संसार विउसग संसार नों तजवों, तिणरा भेद छें च्यार जी।
नरक तिर्यंच मिनख नें देवा, त्यांनें तजनें त्यांसूं हुवे न्यार जी।।

४५. कर्म विउसग छें आठ प्रकारें, तजणा आठोइ कर्म जी।
त्यांनें ज्यूं ज्यूं तजें ज्यूं हलको होवें, एहवी करणी थी निरजरा धर्म जी।।

४६. बारें प्रकारे तप निरजरा री करणी, जे तपसा करें जांण जी।
ते कर्म उदीर उदे आंण खेरें, त्यांनें नेड़ी होसी निरवांण जी।।

४७. साध रे बारें भेदें तपसा करतां, जिहां जिहां निरवद जोग रूंधाय जी।
तिहां तिहां संवर हुवें तपसा रे लारे, तिणसूं पुन लगता मिट जाय जी।।

३९. स्वाध्याय तप पांच प्रकार का है। अर्थ और पाठ का विस्तारपूर्वक भाव सहित शुद्ध स्वाध्याय करने से कर्म भट (यौद्धा) का नाश होता है।

४०. आर्त और रौद्र ध्यान का निवारण कर धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्याता है। इस प्रकार ध्यान ध्याते-ध्याते उत्कृष्ट ध्यान ध्याने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

४१. व्युत्सर्ग का अर्थ है त्यागना। वह द्रव्य और भाव दो प्रकार का होता है। द्रव्य व्युत्सर्ग चार प्रकार का होता है। उसका विवरण सब कोई सुनें।

४२. शरीर को छोड़ना शरीर-व्युत्सर्ग है, इसी प्रकार गण-व्युत्सर्ग जानें। उपधि को छोड़ना उपधि-व्युत्सर्ग है, इसी प्रकार भक्त-पान-व्युत्सर्ग को पहचानें।

४३. भाव-व्युत्सर्ग के तीन भेद हैं (१) कषाय (२) संसार (३) कर्म। कषाय-व्युत्सर्ग चार प्रकार का है क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों को त्यागने से धर्म होता है।

४४. संसार-व्युत्सर्ग अर्थात् संसार का त्याग करना। उसके चार प्रकार हैं नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता। इनको त्याग कर इनसे अलग हो जाना संसार-व्युत्सर्ग है।

४५. कर्म-व्युत्सर्ग आठ प्रकार का होता है। आठों ही कर्म त्याज्य होते हैं। जीव उनको ज्यों-ज्यों छोड़ता है, त्यों-त्यों वह हल्का होता है। ऐसी करनी से निर्जरा धर्म होता है।

४६. बारह प्रकार का तप निर्जरा की करनी है। जो सलक्ष्य तपस्या करता है, वह कर्मों को उदीर्ण कर उदय में लाकर बिखेर देता है। उसके निर्वाण नजदीक होगा।

४७. बारह प्रकार के तप करते समय जहां-जहां साधु के निरवद्य योगों का निरोध होता है, वहां-वहां तपस्या के साथ-साथ संवर होता है। उससे पुण्य का बंध रुक जाता है।

४८. इण तप माहिलो तप श्रावक करतां, कठे उसभ जोग रूंधाय जी।
जब विरत संवर हुवें तपसा लारे, लागता पाप मिट जाय जी।।

४९. इण तप माहिलों तप इविरती करतां, तिणरे पिण कर्म कटाय जी।
कोइ परत संसार करें इण तप थी, वेगों जाअें मुगत रे माहि जी।।

५०. साध श्रावक समदिष्टी तपसा करतां, त्यारें उतकष्टी टलें कर्म छोत जी।
कदा उतकष्टों रस आवें तिणरें, तो बंधे तीर्थंकर गोत जी।।

५१. तप थी आंणे संसार नों छेहडों, वले आंणें कर्मां रो अंत जी।
इण तपसा तणें परतापें जीवडा, संसारी रो सिध होवंत जी।।

५२. कोड भवां रा कर्म संचीया हुवें तो, खिण में दियें खपाय जी।
एहवों छें तप रतन अमोलक, तिणरा गुण रो पार न आय जी।।

५३. निरजरा तो निरवद उजल हुवां थी, कर्म निरवरते हुओ न्यार जी।
तिण लेखें निरजरा निरवद कहीए, बीजूं तो निरवद नहीं छें लिगार जी।।

५४. इण निरजरा तणी करणी छें निरवद, तिणसूं कर्मां री निरजरा होय जी।
निरजरा नें निरजरा री करणी, अें तो जूआ जूआ छें दोय जी।।

५५. निरजरा तो मोष तणो अंस निश्चें, देश थकी उजलो छें जीव जी।
जिणरें निरजरा करण री चूंप लागी छें, तिण दीधी मुगत री नींव जी।।

५६. सहजां तो निरजरा अनाद री हुवें छें, ते होय होय नें मिट जाय जी।
कर्म बंधण सूं निवरत्यों नांहि, संसार में गोता खाय जी।।

५७. निरजरा तणी करणी ओळखावण, जोड कीधी नाथ दुवारा मझार जी।
समत अठारें वर्श छपनें, चेत विद बीज नें गुरवार जी।।

४८. इन बारह प्रकार के तपों में से कोई तप करते हुए जब श्रावक के अशुभ योगों का निरोध होता है, तब तपस्या के साथ-साथ विरति संवर होता है। उससे पाप का बंध रुक जाता है।

४९. इन तपों में से यदि अविरती भी कोई तप करता है तो उसके भी कर्मक्षय होता है। कोई इस तपस्या से संसार को परित कर शीघ्र ही मुक्ति में चला जाता है।

५०. साधु, श्रावक और सम्यक् दृष्टि के तपस्या करते-करते उत्कृष्ट कर्म-प्रभाव टल जाते हैं। और कदाचित् उसके उत्कृष्ट रसायन आने से तीर्थंकर गोत्र का बंध होता है।

५१. तपस्या से जीव संसार का छोर प्राप्त करता है तथा कर्मों का अन्त प्राप्त करता है और इस तपस्या के प्रताप से संसारी जीव सिद्ध होता है।

५२. तप करोड़ों भवों के संचित कर्मों को एक क्षण में खपा देता है। तप रत्न ऐसा अमूल्य है। उसके गुणों का पार नहीं आता।

५३. जीव के उज्ज्वल होने से निर्जरा निरवद्य है। उससे कर्म निवृत्त होकर अलग होते हैं। इस अपेक्षा से निर्जरा को निरवद्य कहा गया है। अन्य किसी भी अपेक्षा से नहीं।

५४. निर्जरा की करनी निरवद्य है उससे कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा और निर्जरा की करनी दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

५५. निर्जरा निश्चय ही मोक्ष का अंश है। जीव का देशतः उज्ज्वल होना निर्जरा है। जिसके निर्जरा करने की चाह लगी है, उसने मुक्ति की नींव डाल दी है।

५६. वैसे तो निर्जरा सहज ही अनादि काल से हो रही है, पर वह हो-हो कर मिट जाती है। जो जीव कर्म-बंध से निवृत्त नहीं होता, वह संसार में ही गोता खाता रहता है।

५७. निर्जरा की करनी की पहचान कराने के लिए श्रीनाथद्वारा में संवत् १८५६, चैत्र कृष्णा २, गुरुवार को यह जोड़ की गई है।

८ : बंध पदार्थ

दुहा

१. आठमों पदार्थ बंध छें, तिण जीव नें राख्यों छें बंध।
जिण बंध पदार्थ नही ओळख्यो, ते जीव छें मोह अंध।।

२. बंध थकी जीव दबीयों रहें, कांइ न रहें उघाडी कोर।
तिण बंध तणा प्रबल थकी, कांइ न चले जोर।।

३. तलाव रूप तो जीव छें, तिणमें पडीया पांणी ज्यूं बंध जांण।
नीकलता पांणी रूप पुन पाप छें, बंध नें लीजो एम पिछांण।।

४. एक जीव द्रब छें तेहनें, असंख्यात प्रदेस।
सगला प्रदेसां आश्व दुवार छें, सगला प्रदेसां कर्म प्रवेस।।

५. मिथ्यात इविरत नें प्रमाद छें, वले कषाय जोग विख्यात।
यां पांचां तणा बीस भेद छें, पनरें आश्व जोग में समात।।

६. नाला रूप आश्व नाला कर्म नां, ते रूंध्यां हुवें संवर दुवार।
कर्म रूप जल आवतो रहें, जब बंध न हुवें लिगार।।

७. तलाव नों पांणी घटे तिण विधें, जीव रे घटे छें कर्म।
जब कांयक जीव उजल हुवें, ते तो छें निरजरा धर्म।।

बंध पदार्थ

दोहा

१. आठवां पदार्थ बंध है। उसने जीव को बांध रखा है। जिसने बंध पदार्थ को नहीं पहचाना, वह जीव मोहांध है।

२. बंध से जीव दबा रहता है। (उसके सर्व प्रदेश कर्मों से आच्छादित रहते हैं)। उसका कोई भी अंश जरा भी खुला नहीं रहता। उस बंध की प्रबलता के कारण जीव का जरा भी वश नहीं चलता।

३. जीव तालाब रूप है। उसमें पड़े हुए (स्थित) जल की तरह बंध को जानें। पुण्य-पाप निकलते हुए जलरूप हैं। इस प्रकार बंध को पहचानें।

४. एक जीव द्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं। सर्व प्रदेश आश्रव-द्वार हैं। सर्व प्रदेशों से कर्मों का प्रवेश होता है।

५. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच प्रधान आश्रव हैं। इन पांचों के बीस भेद हैं। पन्द्रह आश्रव योग आश्रव में समा जाते हैं।

६. जल के आने के नाले की तरह आश्रव कर्मों के आने के नाले हैं। उनको रोकने से संवर द्वार होता हैं, जिससे कर्मरूपी जल का आना रुक जाता है और तनिक भी बंध नहीं होता।

७. जिस तरह (सूर्य की गर्मी या उत्सिंचन से) तालाब का पानी घटता है, उसी प्रकार (तप आदि से) जीव के कर्म घटते हैं। उससे जीव अंश रूप में उज्ज्वल होता है, वह निर्जरा धर्म है।

८. कदे तलाव रीतो हुवें, सर्व पांणी तणो हुवें सोष।
ज्यूं सर्व कर्मां नों सोषंत हुवें, रीता तलाव ज्यूं मोख।।

९. बंध तो छें आठ कर्मां तणो, ते पुदगल नीं परजाय।
तिण बंध तणी ओळखणा कहूं, ते सुणजों चित ल्याय।।

ढाल : ११

(लय अइ अइ कर्म विडम्बना)

बंध पदारथ ओळखो।।

१. बंध नीपजें छें आश्रव दुवार थी, तिण बंध नें कह्यों पुन पापो जी।
ते पुन पाप तो द्रब रूप छें, भावे बंध कह्यों जिण आपो जी।।

२. ज्यूं तीर्थंकर आय उपना, ते तो द्रव्ये तीर्थंकर जांणो जी।
भावे तीर्थंकर तो जिण समें, होसी तेरमें गुणठांणो जी।।

३. ज्यूं पुन नें पाप लागों कह्यों, ते तों द्रब छें पुन नें पापो जो।
भावे पुन पाप तो उदें आयां हुसी, सुख दुःख सोग संतापो जो।।

४. तिण बंध तणा दोय भेद छें, एक पुन तणो बंध जांणों जी।
बीजो बंध छें पाप रो, दोनूं बंध री करजों पिछांणों जी।।

५. पुन नों बंध उदें हूआं, जीव नें साता सुख हुवें सोयो जी।
पाप नों बंध उदें हूआं, विविध पणें दुःख होयो जी।।

६. बंध उदें नही ज्यां लग जीव नें, सुख दुःख मूल न होय जी।
बंध तों छता रूप लागों रहें, फोडा न पाडें कोय जी।।

७. तिण बंध तणा च्यार भेद छें, त्यांनें रूडी रीत पिछांणों जी।
प्रकतबंध नें थितबंध दुसरी, अनुभाग नें परदेस बंध जांणों जी।।

८. कभी सर्व जल के सूख जाने से तालाब रिक्त हो जाता है। उसी तरह सर्व कर्मों के क्षय होने से रिक्त तालाब की तरह मोक्ष होता है।

९. बंध आठ कर्मों का होता है। वह पुद्गल का पर्याय है। मैं उस बंध की पहचान करता हूं। उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

ढाल : ११

बंध पदार्थ को पहचानें।

१. बंध आश्रव-द्वार से निष्पन्न होता है। उस बंध को पुण्य और पाप कहा गया है। वे पुण्य-पाप तो द्रव्य-रूप हैं। जिनेश्वर ने भावतः उसे बंध कहा है।

२-३. जिस तरह तीर्थंकर जन्म लेते हैं, तब वे द्रव्य तीर्थंकर होते हैं, परन्तु भाव तीर्थंकर उस समय होते हैं, जब वे तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त करेंगे। उसी तरह जो पुण्य-पाप का बंध कहा गया है, वह द्रव्य पुण्य-पाप का बंध है। भाव पुण्य-पाप (बंध) तो तब होगा, जब कर्म सुख-दुःख, शोक-संताप के रूप में उदय में आएगा।

४. उस बंध के दो भेद हैं एक पुण्य का बंध, दूसरा पाप का बंध जानें। इन दोनों बंध की पहचान करें।

५. पुण्य बंध के उदय होने से जीव को सात-सुख प्राप्त होते हैं और पाप बंध के उदय होने से विविध प्रकार के दुःख होते हैं।

६. जब तक बंध उदय में नहीं आता तब तक जीव को जरा भी सुख-दुःख नहीं होता। बंध सतारूप ही रहता है और थोड़ी भी तकलीफ नहीं देता।

७. उस बंध के चार प्रकार हैं : (१) प्रकृति बंध (२) स्थिति बंध (३) अनुभाग बन्ध (४) प्रदेश बंध। उनको अच्छी तरह से पहचानें।

८. प्रकतबंध छें करमां री जूजूइ, ते करमां रा सभाव रे न्यायो जी।
बांधी छें तिण समें बंध छें, जेसी बांधी तेसी उदें आयो जी।।

९. तिण प्रकत नें मापी छें काल सूं, इतरा काल तांइ रहसी तांमो जी।
पछें तो प्रकत विललावसी, थित सूं प्रकत बंध छें आंमो जी।।

१०. अनुभाग बंध रस विपाक छें, जेंसों जेंसों रस देसी ताह्यों जी।
ते पिण प्रकत नों बंध रस कह्यों, बांध्या तेसांइज उदें आयो जी।।

११. प्रदेश बंध कह्यों प्रकत बंध तणो, प्रकत-प्रकत रा अनंत प्रदेसो जी।
ते लोलीभूत जीव सूं होय रह्या, प्रकत बंध ओळखाई विसेसो जी।।

१२. आठ करमां री प्रकत छें जूजूई, एकीकी रा अनंत प्रदेसो जी।
ते एकीकी प्रदेस जीव रे, लोलीभूत हुवा छें विशेषो जी।।

१३. ग्यांनावर्णी दर्शवरर्णी वेदनी, वले आठमों कर्म अंतरायो जी।
यांरी थित छें सगलारी सारिषी, ते सुणजो चित्त ल्यायो जी।।

१४. थित छें यां च्यारू कर्मां तणी, अंतरमुहुरत परमांणो जी।
उतकष्टी थित यां च्यारूं कर्मां तणी, तीस कोडा कोडा सागर जांणों जी।।

१५. थित दरसण मोहणी कर्म नी, जगन तों अंतरमोहरत प्रमांणों जी।
उतकष्टी थित छें एहनी, सितर कोडा कोड सागर जांणों जी।।

१६. जिगन थित चारित मोहणी कर्म नीं, अंतरमोहरत कही जगदीसो जी।
उतकष्टी थित छें एहनी, सागर कोडा कोड चालीसो जी।।

१७. थित कही छें आउखा करम नीं, जिगन अंतरमुहरत होयो जी।
उतकष्टी थित सागर तेतीस नी, आगें थित आउखा रो न कोयो जी।।

८. कर्मों का प्रकृति बन्ध भिन्न-भिन्न है। वह कर्मों के स्वभाव की अपेक्षा से होता है। प्रकृति के बंधने पर बन्ध होता है। जैसी बांधी जाती है, वैसी ही उदय में आती है।

९. उस प्रकृति को काल से मापा गया है। वह अमुक काल तक रहेगी और बाद में विनष्ट हो जाएगी। स्थिति से प्रकृति बन्ध ऐसा है।

१०. अनुभाग बंध रस विपाक कहलाता है। कर्म जिस-जिस तरह का रस देगा वह उसकी अपेक्षा से होता है। यह रस बंध भी प्रत्येक प्रकृति का होता है। जैसा रस जीव बांधता है, वैसा ही उदय में आता है।

११-१२. प्रदेश बन्ध भी प्रकृति बन्ध का ही होता है। एक-एक प्रकृति के अनन्त-अनन्त प्रदेश होते हैं। वे जीव के प्रदेशों से लोलीभूत (एकाकार) हो रहे हैं। प्रकृति बन्ध की यही विशेष पहचान है। आठों कर्मों की प्रकृति भिन्न-भिन्न है। एक-एक प्रकृति के अनन्त-अनन्त प्रदेश जीव के एक-एक प्रदेश के विशेष रूप से लोलीभूत है।

१३. ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म और आठवें अन्तराय कर्म इन सब की स्थिति एक समान है। चित्त लगाकर सुनें।

१४. इन चारों कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तरमुहूर्त्त प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागर जानें।

१५. दर्शनमोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त्त प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागर जानें।

१६. जिनेश्वर ने चारित्रमोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त्त की बतलाई है। उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटाकोटि सागर की होती है।

१७. आयुष्य कर्म की जघन्य स्थिति अन्तरमुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है। आयुष्य की इससे अधिक स्थिति नहीं होती।

१८. थित नांम नें गोत्र कर्म तणी, जगन तो आठ मोहरत सोयो जी।
उतकष्टी एकीका कर्म नीं, बीस कोडा कोड सागर होयो जी।।

१९. एक जीव रें आठ कर्मां तणां, पुदगल रा प्रदेस अनंतो जी।
ते अभवी जीवां थी मापीया, अनंत गुणां कह्या भगवंतो जी।।

२०. ते अवस उदें आसी जीव रें, भोगवीया विण नही छूटायो जी।
उदें आयां विण सुख दुःख हुवें नही, उदे आयां सुख दुःख थायो जी।।

२१. सुभ परिणांमां कर्म बांधीया, ते सुभ पणें उदें आसी जी।
असुभ परणांमां कर्म बांधीया, तिण करमां थी दुःख थासी जी।।

२२. पांच वरणा आठोंई करम छें, दोय गंध नें रस पांचोई जी।
चोफरसी आठोइ कर्म छें, रूपी पुदगल करम आठोइ जी।।

२३. कर्म तो लूखा नें चोपड्या, वले ठंढा उंना होइ जी।
कर्म हलका नही भारी नही, सूहालो नें खरदरा न कोइ जी।।

२४. कोइ तलाव जल सूं पूर्ण भर्यों, खाली कोर न रही कायो जी।
ज्यूं जीव भर्यों कर्मां थकी, आ तों उपमा देस थी ताह्यो जी।।

२५. असंख्याता प्रदेस एक जीव रें, ते असंख्याता जेम तलावो जी।
सारा प्रदेस भरीया कर्मां थकी, जांणें भरीया चोखूणी वावो जी।।

२६. एक एक प्रदेस छें जीव नों, तिहां अनंता कर्म नां प्रदेसो जी।
ते सारा प्रदेस भरीया छें वाव ज्यूं, कर्म पुदगल कीयों छें प्रवेसो जी।।

२७. तलाव खाली हुवें छें इण विधें, पेंहला तों नाला देवें रूंधायो जी।
पछें मोरीयादिक छोडें तलाव री, जब तलाव रीतों थायों जी।।

१८. नाम और गौत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट बीस कोटाकोटि सागर होती है।

१९. एक जीव के आठ कर्मों के अनन्त पुद्‌गल-प्रदेश लगे रहते हैं। अभव्य जीवों की संख्या के माप से भगवान ने इन पुद्‌गलों की संख्या अनन्त गुणा बतलाई है।

२०. वे कर्म जीव के अवश्य ही उदय में आएंगें, भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता। कर्मों के उदय में आने से ही सुख-दुःख होता है। बिना उदय के सुख-दुःख नहीं होता।

२१. शुभ परिणाम से बांधे गए कर्म शुभ रूप में उदय में आएंगें और अशुभ परिणामों से बांधे गए कर्मों से दुःख होगा।

२२. आठों ही कर्म पांच वर्ण, दो गंध और पांच रसों से युक्त होते हैं। आठों ही कर्म चतुःस्पर्शी होते हैं। आठों ही कर्म पुद्‌गल और रूपी हैं।

२३. कर्म रुक्ष और स्निग्ध तथा ठण्डा (शीत) और गर्म (उष्ण) होते हैं। कर्म हल्के (लघु), भारी (गुरु), सुहावने (मृदु) या खरदरे (कर्कश) नहीं होते।

२४. जैसे कोई तालाब जल से पूर्ण भरा हो, कोई भी कोर खाली न रही हो, उसी तरह जीव कर्मों से भरे रहते हैं। यह उपमा एकदेशीय है।

२५. एक जीव के असंख्यात प्रदेश असंख्यात तालाबों की तरह हैं। ये सब प्रदेश कर्मों से भरे रहते हैं, मानो चतुष्कोणीय बावड़ियां जल से भरी हों।

२६. जीव का एक-एक प्रदेश है वहां कर्मों के अनन्त-अनन्त प्रदेश हैं। वे सर्व प्रदेश बावड़ी की तरह भरे हुए हैं। कर्म पुद्‌गलों ने उनमें प्रवेश किया है।

२७. तालाब इस विधि से खाली होता है। पहले नालों को रोका जाता है, फिर मोरियों आदि को खोला दिया जाता है। तब तालाब खाली हो जाता है।

२८. ज्यूं जीव रे आश्रव नालो रूंध दे, तपसा करें हर्ष सहीतो जी।
जब छेहडों आवें सर्व कर्म नों, तब जीव हुवें कर्म रहीतो जी।।

२९. कर्म रहीत हुवों जीव निरमलों, तिण जीव नें कहीजें मोखो जी।
ते सिध हुवों छें सासतों, सर्व कर्म बंध कर दीयों सोषो जी।।

३०. जोड कीधीं छें बंध ओलखायवा, नाथ दुवारा सहर मझारो जी।
संवत अठारें नें वरस छपनें, चेत विद बारस सनीसर वारो जी।।

२८. इसी तरह आश्रव नाले को रोक कर जीव सहर्ष तपस्या करता है। तब सभी कर्मों का अंत आता है और जीव कर्मों से रहित हो जाता है।

२९. कर्म रहित होकर जीव निर्मल होता है। उस जीव को मोक्ष कहा जाता है। वह शाश्वत सिद्ध होता है। उसने सर्व कर्म-बन्ध का क्षय कर दिया है।

३०. यह जोड़ बंध तत्त्व को समझाने के लिए नाथद्वारा में सं. १८५६, चैत्र कृष्णा १२ वार शनिवार को रची गई है।

९ : मोख पदार्थ

दुहा

१. मोख पदार्थ नवमों कह्यों, ते सगलां माहे श्रीकार।
ते सर्व गुणां सहीत छें, त्यांरा सुखां रो छेह न पार।।

२. करमां सूं मूंकांणा ते मोख छें, त्यांरा छें नांम विशेष।
परमपद निरवाण ते मोख छें, सिद्ध सिव आदि नांम अनेक।।

३. परमपद उत्कष्टो पद पामीयो, तिणसूं परमपद त्यांरो नांम।
कर्म दावानल मिट सीतल थया, तिणसूं निरवांण नांम छें तांम।।

४. सर्व कार्य सिधा छें तेहनां, तिणसूं सिध कह्या छें तांम।
उपद्रव्य करेंनें रहीत हूआं, तिणसूं सिव कहीजें त्यांरो नांम।

५. इण अनुसारें जांणजों, मोख रा गुण परमांणे नांम।
हिवें मोख तणा सुख वरणवूं, ते सुणजों राखे चित्त ठांम।।

ढाल : १२

(लय पाखंड वधसी आरे पाचवें)

मोख पदार्थ छें सारां सिरे रे।।

१. मोख पदारथ नां सुख सासता रे, तिण सुखां रो कदेय न आवें अंत रे।
ते सुख अमोलक निज गुण जीव रा रे, अनंत सुख भाख्या छें भगवंत रे।।

मोक्ष पदार्थ

दोहा

१. मोक्ष नवां पदार्थ कहा गया है। वह सब पदार्थों में उत्तम है। इसमें सब गुण समाहित हैं। उन सुखों का कोई छोर व पार नहीं है।

२. जीव का कर्मों से मुक्त होना मोक्ष है। उसके 'परमपद', 'निर्वाण', 'सिद्ध' और 'शिव' आदि अनेक नाम है।

३. उत्कृष्ट पद प्राप्त करने से उसका नाम परमपद है। कर्म रूपी दावानल के मिटने से शीतल हुआ इसलिए उसका नाम निर्वाण है।

४. सर्व कार्य सिद्ध होने से उसे सिद्ध कहा गया है। उपद्रवों से रहित हुआ इसलिए उसका नाम शिव है।

५. *इस प्रकार गुणानुसार मोक्ष के नाम जानें। अब मोक्ष के सुखों का वर्णन करता* हूं, उसे चित्त को स्थिर रखकर सुनें।

ढाल : १२

मोक्ष पदार्थ सब पदार्थों का सिरमोर है।

१. मोक्ष पदार्थ के सुख शाश्वत हैं। उन सुखों का कभी अन्त नहीं आता। वे सुख जीव के अमूल्य निजगुण हैं। भगवान ने उन सुखों को अनंत कहा है।

२. तीन काल रा सुख देवां तणां रे, ते सुख इधिका घणां अथाग रे।
ते सगलाइ सुख एकण सिध नें रे, तुलें नावें अनंतमें भाग रे।।

३. संसार नां सुख तो छें पुदगल तणा रे, ते तो सुख निश्चें रोगीला जांण रे।
ते कर्मां वस गमता लागें जीव नें रे, त्यां सुखां री बुधवंत करों पिछांण रे।।

४. पांव रोगीलो हुवें छें तेहनें रे, अतंत मीठी लागें छें खाज रे।
एहवा सुख रोगीला छें पुन तणा रे, तिणसूं कदेय न सीझें आत्म काज रे।।

५. एहवा सुखां सूं जीव राजी हुवें रे, तिणरें लागें छें पाप कर्म रा पूर रे।
पछें दुःख भोगवें छें नरक निगोद में रे, मुगत सुखां सूं पडीयो दूर रे।।

६. छूटा जनम मरण दावानल तेह थी रे, ते तों छें मोख सिध भगवंत रे।
त्यां आठोइ कर्मां नें अलगा कीया रे, जब आठोइ गुण नीपना अनंत रे।।

७. ते मोख सिध भगवंत तो इहां हिज हूआ रे,पछें एक समा में उंचा गया छें थेट रे।
सिध रहिवा नो खेत्र छें तिहां जाए रह्या रे, अलोक सूं जाए अड्या छें नेट रे।।

८. अनंतो ग्यांन नें दर्शन तेहनो रे, वले आत्मीक सुख अनंतों जांण रे।
खायक समकत छें सिध वीतराग तेहने रे, वले अवगाहणा अटल छें निरवांण रे।।

९. अमूरतीपणों त्यांरो परगट हूवो रे, हलको भारी न लागें मूल लिगार रे।
तिणसूं अगुरलघू नें अमूरती कह्यां रे, ए पिण गुण त्यांमें श्रीकार रे।।

१०. अंतराय कर्म सूं तों रहीत छें रे, त्यारें पुदगल सुख चाहीजें नाहि रे।
ते निज गुण सुखां माहे झिले रह्या रे, कांइ उणारत रही न दीसें कांय रे।।

११. छूटा कलकली भूत संसार थी रे, आठोइ कर्मां तणों कर सोष रे।
ते अनंता सुख पांम्यां सिवे रमणी तणां रे, त्यांनें कहीजें अविचल मोख रे।।

२. देवों के सुख अति अधिक और अथाह होते हैं। परन्तु तीनों काल के देव-सुख एक सिद्ध के सुख के अनन्तवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते।

३. सांसारिक सुख पौद्गलिक है। उन सुखों को निश्चय ही रुग्ण जानें। वे कर्मों के कारण जीव को सुहावने लगते हैं। उन सुखों की बुद्धिमान् पहचान करें।

४. जो पाम का रोगी होता है, उसे खाज अत्यन्त मीठी लगती है। पुण्य के सुख इसी तरह रोगीले होते हैं। उनसे कभी भी आत्मा का कार्य सिद्ध नहीं होता।

५. जो जीव ऐसे सुखों से हर्षित होता है, उसके अतीव पाप कर्म लगते हैं। बाद में वह नरक और निगोद के दुख भोगता है और वह मुक्ति सुखों से दूर पड़ जाता है।

६. जन्म-मरण रूपी दावानल से छूट जाते हैं, इसलिए वे मोक्ष, सिद्ध भगवान हैं। उन्होंने आठों ही कर्मों को पृथक् कर दिया, तब आठ अनंत गुण निष्पन्न हुए।

७. वे मोक्ष (मुक्त) सिद्ध भगवान तो यहीं (मनुष्य लोक में) हो गए, बाद में एक समय में ऊपर लोकान्त तक पहुंच गए। वे सिद्धों के रहने के क्षेत्र में जाकर रह रहें हैं, अलोक से सटे हुए हैं।

८-९. निर्वाण में वीतराग सिद्ध के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आत्मिक सुख, क्षायिक सम्यक्त्व और अटल अवगाहना है। उनका अमूर्त्तित्व प्रकट हुआ है, तथा उन्हें तनिक भी हल्का और भारीपन नहीं लगता। इससे उनमें अगुरुलघु तथा अमूर्त ये उत्तम गुण भी कहे गए हैं।

१०. वे अंतराय कर्म से रहित हैं। उनके पौद्गलिक सुख की चाह नहीं रहती। वे आत्म गुण सुखों में रम रहे हैं। उनके कोई भी कमी नहीं दिखाई देती।

११. वे आठों ही कर्मों का क्षय कर कलकलीभूत संसार से मुक्त हो जाते हैं। वे शिव-रमणी के अनंत सुख को प्राप्त करते हैं। उन्हें अविचल मोक्ष कहते हैं।

१२. त्यांरा सुखां नें नही काई ओपमा रे, तीनोइ लोक संसार मझार रे।
एक धारा त्यांरा सुख सासता रे, ओछा इधिका सुख कदेय न हुवें लिगार रे।।

१३. तीर्थ सिधा ते तीर्थ मां सूं सिध हूआं रे, अतीर्थ सिधा ते विण तीर्थ सिध थाय रे।
तीर्थंकर सिधा ते तीर्थ थापनें रे, अतीर्थंकर सिधा ते विना तीर्थंकर ताहि रे।।

१४. सयंबुधी सिधा ते पोतें समझ नें रे, प्रतेकबुधी सिधा ते कांयक वस्तु देख रे।
बुधबोही सिधा ते समझे ओरां कनें रे, उपदेस सुणे नें ग्यांन विशेष रे।।

१५. स्वलिंगी सिधा साधां रा भेष में रे, अनलिंगी सिधा अनलिंगी माहि रे।
ग्रहलिंगी सिधा ग्रहस्थ रा लिंग थकां रे, अस्त्री लिंग सिधा अस्त्री लिंग में ताहि रे।।

१६. पुरष लिंग सिधा ते पुरष ना लिग छतां रे, निपुंसक सिधा निपुंसक लिंग में सोय रे।
एक सिधा ते एक समें एकहीज सिध हूआं रे,
अनेक सिधा ते एक समें अनेक सिध होय रे।।

१७. ग्यांन दर्शन नें चारित तप थकी रे, सारा हूआं छें सिध निरवांण रे।
यां च्यांरा विनां कोइ सिध हूओ नहीं रे, अें च्यारूंई मोख रा मारग जांण रे।।

१८. ग्यांन थी जांणें लेवें सर्व भाव नें रे, दर्शन सूं सरध लेवें सयमेव रे।
चारित सूं करम रोके छें आवता रे, तपसा सूं कर्मां नें दीया खेव रे।।

१९. अें पनरेंइ भेदें सिध हूआं तके रे, सगलां री करणी जांणों एक रे।
वले मोख में सुख सगला रा सारिखा रे, ते सिध छें अनंत भेद अनेक रे।।

२०. मोख पदार्थ नें ओळखायवा रे, जोड कीधी छें नाथदुवारा मझार रे।
संवत अठारें नें बरस छपनें रे, चेत सुद चोथ नें सनीसर वार रे।।

१२. तीनों लोकों में उनके सुखों की कोई उपमा नहीं मिलती। उनके सुख शाश्वत और एक धार रहते हैं। वे सुख किंचित् भी कम-ज्यादा नहीं होते।

१३-१६. (१) 'तीर्थ सिद्ध' अर्थात् जैन साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं में से सिद्ध हुए। (२) 'अतीर्थ सिद्ध' तीर्थ के अतिरिक्त जो सिद्ध हुए, (३) 'तीर्थंकर सिद्ध' तीर्थ की स्थापना कर सिद्ध हुए, (४) 'अतीर्थंकर सिद्ध' बिना तीर्थंकर बने सिद्ध हुए, (५) 'स्वयंबुद्ध सिद्ध' स्वतः समझ कर सिद्ध हुए, (६) 'प्रत्येक बुद्ध सिद्ध' किसी वस्तु को देखकर सिद्ध हुए, (७) 'बुद्धबोधित सिद्ध' दूसरों से समझकर, उपदेश सुनकर, विशेष ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए, (८) 'स्वलिंगी सिद्ध' जैन साधु के वेष में सिद्ध हुए, (९) 'अन्यलिंगी सिद्ध' अन्य साधु के वेष में सिद्ध हुए, (१०) 'गृहलिंगी सिद्ध' गृहस्थ के वेष में सिद्ध हुए, (११) 'स्त्रीलिंग सिद्ध' स्त्रीलिंग में सिद्ध हुए, (१२) 'पुरुषलिंग' पुरुषलिंग में सिद्ध हुए (१३) 'नपुंसकलिंग सिद्ध' नपुंसक (कृत) के लिंग में सिद्ध हुए (१४) 'एक सिद्ध' एक समय में एक ही सिद्ध हुए (१५) 'अनेक सिद्ध' एक समय में अनेक सिद्ध हुए ये सिद्धों के पंद्रह भेद हैं।

१७. सब सिद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। इन चारों के बिना कोई सिद्ध नहीं हुआ। इन चारों को मोक्ष का मार्ग जानें।

१८. ज्ञान से जीव सर्व भावों को जान लेता है। दर्शन से स्वयं श्रद्धा कर लेता है। चारित्र से आते हुए कर्मों को रोक देता है और तप से कर्मों का क्षय कर देता है।

१९. इन पंद्रह भेदों से जो सिद्ध हुए हैं, उन सबकी करनी एक सरीखी समझो। तथा मोक्ष में सभी के सुख समान हैं। वे सिद्ध अनेक भेदों से अनंत हैं।

२०. मोक्ष पदार्थ की पहचान कराने के लिए यह ढाल नाथद्वारा में सं. १८५६, चैत्र शुक्ला ४, शनिवार को की है।

दुहा

१. केइ भेष धास्यां रा घट मझे, जीव अजीव री खबर न काय।
ते पिण गोला फेंकें गालां तणा, ते पिण सुध न दीसें काय।।

२. नव पदार्थ रों त्यारें निरणों नहीं, छ दरबां रों निरणों नांहि।।
न्याय निरणा विनां बकबों करें, तिणरों सोच नही मन मांहि।।

३. जीव अजीव दोनूं जिण कह्या, तीजी वस्त न काय।
जे जे वस्त छें लोक में, ते दोयां में सर्व समाय।।

४. नव ही पदार्थ जिण कह्या, त्यांनें दोयां में घालें नांहि।
त्यारें अंधकार घट में घणों, ते भूल गया भर्म मांहि।।

५. उंधी उंधी करें छें परूपणा, ते भोला नें खबर न काय।
तिणसूं नव पदार्थ रों निरणों कहूं, ते सुणजों चित्त ल्याय।।

ढाल : १३

(लय मेघ कुंवर हाथी रा भव में)

जीव अजीव सूधा न सरधें मिथ्याती।।

१. जीव ते चेतन अजीव अचेतन, यांनें बादर पणें तों ओळखणा सोरा।
त्यांरा भेदनभेद जूआ जूआ करतां, जब तों ओळखणा छें अतही दोरा।।

२. जीव अजीव टालेनें सात पदार्थ, त्यांनें जीव अजीव सरधें छें दोनूंइ।
एहवी उंधी सरधा रा छें मूढ मिथ्याती, त्यां साधू रो भेष ले आत्म विगोइ।।
जीव अजीव सधा न सरधें मिथ्याती।।

दोहा

१. कई वेषधारियों के घट में जीव-अजीव की पहचान नहीं है। वे वाणी के गोले फेंकते हैं। उनमें कुछ भी सुध-बुध दिखाई नहीं देती।

२. उनके नौ पदार्थों और छह द्रव्यों का निर्णय नहीं है। बिना न्याय-निर्णय के वे बकवास करते हैं। उसका उनके मन में जरा भी विचार नहीं होता।

३. जिनेश्वर ने जीव और अजीव दो भेद कहे हैं। तीसरी कोई वस्तु नहीं। लोक में जो भी वस्तुएं हैं, वे सब दोनों में समा जाती है।

४. जिनेश्वर ने नौ पदार्थ कहे हैं। जो इन नौ पदार्थों को दो पदार्थों में नहीं डालते। उनके हृदय में गहन अंधकार है। वे भ्रम में भूल हुए हैं।

५. वे विपरीत-विपरीत प्ररूपणा करते हैं। भोलों को इसकी कुछ भी जानकारी नहीं है। अतः नौ पदार्थों का निर्णय कहता हूं। उसे चित्त लगाकर सुनें।

ढाल : १३

मिथ्यात्वी जीव और अजीव को शुद्ध नहीं श्रद्धता।

१. जीव चेतन है। अजीव अचेतन है। इन्हें स्थूल रूप से पहचानना तो सरल है। पर उनके अलग-अलग भेदानुभेद करने से उनकी पहचान अत्यन्त कठिन होती है।

२. कई जीव और अजीव इन दो पदार्थों के अतिरिक्त अवशेष सात पदार्थों को जीव अजीव दोनों मानते हैं। ऐसी विपरीत श्रद्धा वाले मूढ़ मिथ्यात्वियों ने साधु-वेष ग्रहण कर आत्मा को डूबो दिया। मिथ्यात्वी जीव अजीव को शुद्ध नहीं श्रद्धता।

३. पुन पाप नें बंध अें तीनूंइ कर्म, कर्म ते निश्चेंइ पुदगल जांणो।
पुदगल छें ते निश्चेंइ अजीव, तिण मांहें संका मूल म आंणो।।
पुन पाप नें अजीव न सरधें मिथ्याती।।

४. आठ कर्मां नें रूपी कह्या छें जिणेसर, त्यांमें पांचोइ वर्ण नें गंध छें दोय।
वले पांचोइ रस नें च्यार फरस छें, अें सोलें बोल पुदगल अजीव छें सोय।।
पुन पाप नें अजीव न सरधें मिथ्याती।।

५. पुन पाप बेहू नें ग्रहे आश्रव, पुन पाप ग्रहे ते निश्चें जीव जांणो।
निरवद जोगां सूं पुन ग्रहे छें, सावद्य जोगां सूं पाप लागें छें आंणो।।
आश्रव नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

६. कर्मां नां दुवार आश्रव जीव रा भाव, तिण आश्रव नां बीसोइं बोल पिछांणो।
ते बीसोइ बोल छें करमा रा करता, करमा रा करता निश्चेंइ जीव जांणों।।
आश्रव नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

७. आत्मा नें वस करें ते संवर, आत्मा वस करें ते निश्चेंइ जीव।
ते तों उपसम खायक खयउपसम भाव, अें तो जीव रा भाव छें निरमल अतीव।।
संवर नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

८. संवर नें आवतां करमां नें रोकें, आवतां कर्म रोकें ते निश्चेंइ जीव।
तिण संवर नें जीव न सरधें अग्यांनी, तिणरें नरक निगोद री लागी छें नींव।।
तिण संवर नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

९. देस थकी कर्मां नें तोड़े, जब देश थकी जीव उजलो होय।
जीव उजलो हुओ छें, तेहीज निरजरा, निरजरा जीव छें तिणमें संका न कोय।।
इण निरजरा नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

१०. करमां नें तोड़े ते निश्चेंइ जीव, कर्म तूटां थकां उजलो हुवों जीव।
उजला जीव नें निरजरा कही जिण, जीव रा गुण छें उजल अत ही अतीव।।
इण निरजरा नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

३. पुण्य, पाप और बंध ये तीनों कर्म हैं। कर्मों को निश्चय ही पुद्गल जानें। जो पुद्गल हैं, वे निश्चय ही अजीव हैं। उसमें जरा भी शंका न लाएं। मिथ्यात्वी पुण्य-पाप को अजीव नहीं श्रद्धता।

४. जिनेश्वर ने आठ कर्मों को रूपी कहा है। उनमें पांचों वर्ण, दो गंध, पांचों रस और चार स्पर्श हैं। ये सोलह बोल पुद्गल-अजीव हैं। मिथ्यात्वी पुण्य-पाप को अजीव नहीं श्रद्धता।

५. पुण्य-पाप दोनों को आश्रव ग्रहण करता है। जो पुण्य और पाप को ग्रहण करता है, उसे निश्चय ही जीव जानें। जीव निरवद्य योगों से पुण्य को ग्रहण करता है और सावद्य योगों से उसके पाप लगते हैं। मिथ्यात्वी आश्रव को जीव नहीं श्रद्धता।

६. आश्रव कर्मों के द्वार हैं। वे जीव के भाव हैं। उस आश्रव के बीसों बोलों की पहचान करें। वे बीसों ही बोल कर्मों के कर्त्ता हैं। कर्मों के कर्त्ता को निश्चय ही जीव जानें। मिथ्यात्वी आश्रव को जीव नहीं श्रद्धता।

७. जो आत्मा को वश में करता है, वह संवर है। जो आत्मा को वश में करता है, वह निश्चय ही जीव है। वह तो उपशम, क्षायक व क्षयोपशम भाव है। ये जीव के अत्यन्त निर्मल भाव हैं। मिथ्यात्वी संवर को जीव नहीं श्रद्धता।

८. आते हुए कर्मों को रोकता है, वह संवर है। आते हुए कर्मों को रोकता है, वह निश्चय ही जीव है। संवर को अज्ञानी जीव नहीं श्रद्धता, उसके नरक-निगोद की नींव लगी है। मिथ्यात्वी उस संवर को जीव नहीं श्रद्धता।

९. देशतः कर्मों को तोड़ने से जीव देशतः उज्ज्वल होता है। जीव उज्ज्वल हुआ, वही निर्जरा है। निर्जरा जीव है, उसमें कोई शंका नहीं। मिथ्यात्वी इस निर्जरा को जीव नहीं श्रद्धता।

१०. जो कर्मों को तोड़ता है, वह निश्चय ही जीव है। कर्मों के टूटने से जीव उज्ज्वल होता है। जिनेश्वर ने उज्ज्वल जीव को निर्जरा कहा है। निर्जरा जीव का अति उज्ज्वल गुण है। मिथ्यात्वी इस निर्जरा को जीव नहीं श्रद्धता।

११. समसत कर्म थकी मूंकावें, ते कर्म रहीत आत्मा मोख।
इण संसार दुख थी छूट पड्या छें, ते तो सीतलीभूत थया निरदोष।।
तिण मोख नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

१२. कर्मां थकी मूकावें ते ते मोख, तिण मोख नें कहीजें सिध भगवांन।
वले मोख नें परमपद निरवांण कहीजें, ते तों निश्चेंइ निरमल जीव सुध मांन।।
तिण मोष नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

१३. पुन पाप नें बंध अें तीनूं अजीव, त्यांनें जीव नें अजीव सरधें दोनूंइ।
एहवी उंधी सरधा रा छें मूंढ मिथ्याती, त्यां साध रा भेष में आत्म विगोइ।।
पुन पाप नें अजीव न सरधें मिथ्याती।।

१४. आश्रव संवर निरजरा नें मोख, अें निमाइ निश्चें जीव च्यारोइ।
त्यांनें जीव अजीव दोनूंइ सरधें, तिण उंधी सरधा सूं आत्म विगोइ।।
यां च्यारां नें जीव न सरधें मिथ्याती।।

१५. नव पदार्थ में पांच जीव कह्या जिण, च्यार पदार्थ अजीव कह्या भगवांन।
ए नव पदार्थ रों निरणों करसी, तेहिज समकत छें सुध मांन।।
जीव अजीव नें सुध न सरधें मिथ्याती।।

१६. जीव अजीव ओलखावण काजें, जोड कीधी पुर सहर मझार।
संवत अठारें सत्तावनें वरसें, भादरवा सुद पूनम नें बुधवार।।
जीव अजीव नें सुध न सरधें मिथ्याती।।

११. जो समस्त कर्मों से मुक्त होती है, वह कर्म रहित आत्मा मोक्ष है। मुक्त जीव इस संसार रूपी दुःख से अलग हो चुके हैं। वे निर्दोष और शीतलभूत हो गए हैं। मिथ्यात्वी उस मोक्ष को जीव नहीं श्रद्धता।

१२. कर्मों से मुक्त होना मोक्ष है। उस मोक्ष को सिद्ध भगवान कहा जाता है। और मोक्ष को परमपद और निर्वाण कहा जाता है। उसे निश्चय ही शुद्ध निर्मल जीव मानें। मिथ्यात्वी उस मोक्ष को जीव नहीं श्रद्धता।

१३. पुण्य, पाप और बन्ध ये तीनों अजीव हैं। कोई उनको जीव-अजीव दोनों श्रद्धते हैं। ऐसी विपरीत श्रद्धा वाले मूढ़ मिथ्यात्वी हैं। उन्होंने साधु-वेष में आत्मा को डूबो दिया है। मिथ्यात्वी पुण्य, पाप और बंध को अजीव नहीं श्रद्धता।

१४. आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चारों नियमतः निश्चय ही जीव हैं। उनको जो जीव-अजीव दोनों मानता है, उसने विपरीत श्रद्धा से आत्मा को डूबो दिया। मिथ्यात्वी इन चारों को जीव नहीं श्रद्धता।

१५. जिनेश्वर ने नौ पदार्थों में पांच को जीव और चार पदार्थों को अजीव कहा है। इन नौ पदार्थों का निर्णय करेगा उसे ही शुद्ध सम्यक्त्व मानें। मिथ्यात्वी जीव, अजीव को शुद्ध नहीं श्रद्धता।

१६. जीव, अजीव की पहचान कराने के लिए यह जोड़ पुर शहर में सं. १८५७, भाद्रव शुक्ला पूर्णिमा, बुधवार को रची है।

अणुकंपा री चौपई

आमुख

अहिंसा सब धर्मों का मौलिक मन्तव्य है। पर इस विषय पर बहुत सूक्ष्मता से जैन दर्शन में चिन्तन हुआ है। भगवान महावीर ने कहा प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों की हिंसा मत करो, उन पर शासन मत करो, उनको पीड़ित मत करो, उन पर प्रहार मत करो, यही धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है। आचार्य भिक्षु ने अहिंसा की नई व्याख्या नहीं की अपितु कालक्रम से भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित अहिंसा में जो विसंगतियां पैदा हो गई थी, उनका निराकरण करने का सार्थक प्रयास किया।

अहिंसा की परिक्रमा करने वाले शब्दों में एक शब्द है अनुकम्पा अर्थात् दया। आचार्य भिक्षु ने अनुकम्पा री चौपई में इसी विषय पर विचार किया है। उन्होंने कहा है

भोंलेंई मत भूलजो, अनुकम्पा रे नांम।
कीजों अंतर पारखा, ज्यूं सीझें आतम कांम।।

अनुकम्पा के नाम से भ्रम में मत रह जाना। उसके अंतरंग की परीक्षा करना जिससे आत्मा के काम सिद्ध हों।

एक रूपक द्वारा उन्होंने बताया दूध चार प्रकार का होता है गाय का दूध, भैस का दूध, आक का दूध और थोहर का दूध। चारों दूध देखने में एक जैसे होते हैं। पर उनके गुणधर्म अलग-अलग होते हैं। इसी प्रकार अनुकम्पा भी दो तरह की होती है लौकिक अनुकम्पा और लोकोत्तर अनुकम्पा। ये दोनों एक जैसी नहीं होती।

लौकिक अनुकम्पा का संबंध शरीर से है। लोकोत्तर अनुकम्पा का संबंध आत्मा से है। अहिंसा का संबंध आत्मा से है। शरीर का संबंध हिंसा से भी हो सकता है। महावीर ने आत्मा की अनुकम्पा पर ही बदल दिया है।

कभी-कभी संयत प्रवृत्ति करते हुए कोई जीव मर जाता है, पर वह हिंसा नहीं है। कभी-कभी असंयत प्रवृत्ति करते हुए कोई जीव नहीं भी मरता पर वह हिंसा है। क्योंकि हिंसा-अहिंसा का संबंध किसी जीव के जीने-मरने से नहीं है अपितु अपनी सत्प्रवृत्ति और असत्प्रवृत्ति से है।

आचार्य भिक्षु के समय जैन धर्म में भी कुछ लोग शरीर की अनुकम्पा को भी महत्त्व देने लगे थे। वे कहते थे किसी मरते हुए जीव को बचाना अहिंसा है। आचार्य भिक्षु ने उसका खंडन करते हुए कहा

जीव जीवे ते दया नही मरे ते हो हंसा मत जांण।
मारण वाला नें हंसा कही, नहीं मारें हों ते तों दया गुणखांण।।

जीव का जीना दया-अहिंसा नहीं है। उसका मरना हिंसा नहीं है। जीव को मारने वाले को हिंसा लगती है। उसे नहीं मारना ही शुद्ध अहिंसा है।

वास्तव में जीवन और मृत्यु एक सहज क्रिया है। कोई जीव जीता है तो अपने आयुष्य बल से जीता है। आयुष्य बल क्षीण हो जाता है तो प्राणी की मृत्यु हो जाती है। मरते हुए जीव को दूसरा कोई नहीं बचा सकता है। हां, अहिंसक उसके मरने में निमित्त नहीं बने, यही साधना का रहस्य है।

आचार्य भिक्षु लौकिक अनुकम्पा का निषेध नहीं करते। गृहस्थ को लौकिक अनुकम्पा भी करनी पड़ सकती है। पर उसे लौकिक और लोकोत्तर अनुकम्पा के भेद को समझना आवश्यक है। वास्तव में लोकोत्तर अनुकम्पा ही शाश्वत धर्म है।

उस समय अनुकम्पा के संबंध में तीन धारणाएं प्रमुख रूप से प्रचलित हो गई थी। पहली शरीर की रक्षा धर्म, दूसरी शरीर रक्षा में अल्प पाप बहु निर्जरा तथा तीसरी शरीर रक्षा में पुण्य।

शरीर की रक्षा में धर्म मानने वाले लोग भगवान् महावीर द्वारा गौशालक की रक्षा का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं भगवान् महावीर ने उष्ण तेजोलेश्या से जलते हुए गौशालक को शीत तेजोलेश्या से बचाया वह अहिंसा थी। यदि हिंसा होती तो वे उसे क्यों बचाते? आचार्य भिक्षु इस बात का जोरदार खण्डन करते हैं। वे कहते हैं

छह लेस्या हूंती जद वीर में जी, हूंता आठोई कर्म।
छदमस्थ चूका तिण समें जी, मूर्ख थापें धर्म।।

भगवान् महावीर ने गौशालक को शीतल तेजोलेश्या द्वारा बचाया था। उस समय वे छद्मस्थ थे। जब वे वीतराग हो गए तो उन्होंने अपने सामने मरते हुए शिष्यों को भी नहीं बचाया। पूर्ण अहिंसक अपने पर प्रहार करने वाले पर भी हिंसा नहीं करता, तब वह दूसरे को बचाने के लिए हिंसा का आश्रय कैसे ले सकता है? अहिंसा का अर्थ है संयम की रक्षा। शरीर रक्षा अहिंसा नहीं है। हां जब कोई व्यक्ति अहिंसक बन जाता है तो उसके द्वारा दूसरे की शरीर रक्षा तो अपने आप हो जाती हैं। वह दूसरे की हिंसा में निमित्त होने से भी बच जाता है। यही शुद्ध अहिंसा है। उन्होंने कहा

हिंसा री करणी में दया नही छें, दया री करणी में हिंसा नांहि जी।
दया नें हंसा री करणी छें न्यारी, ज्यूं तावड़ो नें छांही जी।।

उन्होंने फिर कहा

जिण मारग री नींव दया पर, खोजी हुवे ते पावे जी।
जो हिंसा मांहें धर्म हुवे तो जल मथियां घी आवे जी।।

इस दृष्टि से आचार्य भिक्षु ने साध्य और साधन की शुद्धि पर भी विचार किया है। उन्होंने शुद्ध साध्य के लिए साधन शुद्धि पर भी गहरा बल दिया है।

उस समय कुछ साधु ऐसा कहते थे कि हम स्वयं तो हिंसा की प्रवृत्ति द्वारा किसी जीव की रक्षा नहीं करते पर गृहस्थ यदि ऐसा करता है तो उसे धर्म मानते हैं। आचार्य भिक्षु ने हिंसा करने, करवाने और उसके अनुमोदन के द्वैध पर तीव्र प्रहार किया है। उन्होंने तीन करण और तीन योग से निष्पन्न अहिंसा को ही अहिंसा माना है। करण और योग की समायोजना को समझे बिना अहिंसा की पहचान अधूरी है।

अहिंसा के क्षेत्र में जीने और मरने के विषय में पर्याप्त मीमांसा अपेक्षित है। असंयम की अवस्था में जीना और असंयम की अवस्था में मरना ये दोनों धर्म की सीमा में नहीं आते।

कोई व्यक्ति असंयमी के जीने की इच्छा करता है वह असंयम की

इच्छा करता है, इसलिए वह राग है। असंयमी के मरने की इच्छा करना द्वेष है। अहिंसा राग और द्वेष से ऊपर है। उसकी कसौटी जीना-मरना नहीं अपितु संयम और वीतरागता है।

उस समय की दूसरी प्रमुख धारणा यह थी कि किसी जीव को बचाने में थोड़ी हिंसा हो सकती है पर निर्जरा अधिक होती है, इसलिए वह करणीय है। उनके मत को उद्धृत करते हुए आचार्य भिक्षु लिखते हैं

केइ कहे म्हें हणां एकिंद्री, पंचेंद्री जीवां रे ताइ जी।
एकंद्री मार पंचिंद्री पोख्यां, धर्म घणों तिण मांही जी।।

अर्थात् हम पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा के लिए एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा करते हैं। एकेंद्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय का पोषण करते हैं, उसमें धर्म अधिक है। एकेन्द्रिय की अपेक्षा पंचेन्द्रिय अधिक पुण्यवान् है, अतः पंचेन्द्रिय के लिए एकेन्द्रिय का वध करना धर्म अधिक है, पाप कम है।

आचार्य भिक्षु ने इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहा

छह काय हणें हणावें नही, हाणियां भलो न जांणें ताहि।
मन वचन काया करी, आ दया कही जिनराय।।

यदि कोई व्यक्ति उपदेश द्वारा हृदय-परिवर्तन कर किसी प्राणी की रक्षा करता है, वह अवश्य अनुकम्पा है। पर इसमें कोई प्राणी बचा यह अहिंसा नहीं है। वह उसका प्रासंगिक फल है। अपितु किसी की आत्मा हिंसा से बची वह अहिंसा है। भय और प्रलोभन के द्वारा की जाने वाली अनुकम्पा वास्तव में अनुकम्पा-अहिंसा नहीं हो सकती। पापाचरण से आत्म-रक्षा ही सच्ची अहिंसा है।

उस समय अनुकम्पा की तीसरी धारणा थी कि हिंसा करने में पाप तो लगता है, पर किसी को बचाने में शुभ भाव आते हैं। अतः उससे पुण्य बंध होता है। आचार्य भिक्षु ने उसका खंडन करते हुए कहा आगमों में पुण्य बंध केवल निर्जरा के साथ ही बताया गया। जहां निर्जरा नहीं होती वहां पुण्य बंध भी नहीं होता। उन्होंने कहा

त्याग कीयां विण हंसा टालें, तो कर्म निरजरा थायो जी।
हिंसा टाल्यां सुभ जोग वरतें छें, तिहां पुन रा थाट बंधायो जी।।

कोई व्यक्ति हिंसा का प्रत्याख्यान किए बिना उसका वर्जन करता है, उससे कर्म की निर्जरा होती है। हिंसा की वर्जना शुभ योग की प्रवृत्ति है। उस समय निर्जरा के साथ पुण्य का बंध भी होता है। पर जहां हिंसा हो वहां निर्जरा भी नहीं होती। जब निर्जरा नहीं होती तो पुण्य बंध भी नहीं होता। इस प्रकार हिंसा से जुड़ी हुई अनुकम्पा से पुण्य बंध भी नहीं हो सकता।

इस कृति में १२ ढालों में ५४ दोहे और ४८७ गाथाएं हैं।

दूहा

१. अणुकंपा ने आदरे, कीजो घणा जतन।
जिणवर ना धर्म मांहिली, समकत पाय रतन॥

२. गाय भेंस आक थोंहर नों, ए च्यारूंई दूध।
तिम अणुकंपा जांणजों, राखे मन में सूध॥

३. आक दूध पीधां थकां, जुदा करे जीव काय।
सावद्य अणुकंपा कीयां, पाप कर्म बंधाय॥

४. भोंलेंई मत भूलजों, अणुकंपा रे नांम।
कीजों अंतर पारखा, ज्यूं सीझें आतम कांम॥

५. अणुकंपा में आज्ञा, तीथंकर नी होय।
सावद्य निरवद ओंळखों, सूतर स्हांमों जोय॥

ढाल : १

(लय - समकित वमियो नन्दण मणीया रे)

आ अणुकंपा जिण आगन्या में।।

१. मेघ कुमर हाथी रा भव में, श्री जिण भाखी दया दिल आई।
उंचो पग राख्यो सुसीयों न मार्‍यों, आ करणी श्री वीर सराई।

२. कष्ट सह्यों तिण पाप सूं डरतें, मन दिढ़ सेंठी राखी तिण काया।
बलता जीव दावानल जांणी, सूंड सूं गिर गिर बारें न ल्याया।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

दोहा

१. अनुकम्पा को स्वीकार करके जैन धर्म में रत्न तुल्य प्राप्त सम्यक्त्व का संरक्षण करें।

२. जिस प्रकार गाय, भैंस, आक और थूहर चारों के दूध, दूध ही कहलाते हैं, उसी प्रकार अनुकम्पा के अन्तर को भी मन की जागरूकता से समझें।

३. जैसे आक का दूध पीने से आदमी मर जाता है, उसी प्रकार सावद्य अनुकम्पा करने से पाप कर्म-अशुभ कर्म का बंध होता है।

४. केवल अनुकम्पा शब्द से भ्रमित मत होना। उसके आन्तरिक स्वरूप की परीक्षा करें, जिससे आत्मिक कार्य सिद्ध हो॥

५. अनुकम्पा में तीर्थंकरों की आज्ञा होती है, अतः आगमों का अवलोकन कर सावद्य, निरवद्य अनुकम्पा की पहचान करें॥

ढाल : १

यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

१. मेघ कुमार ने हाथी के भव में जिनभाषित दया को मन में धारण करके अपने पैर को ऊँचा उठाए रखा। शशक को नहीं मारा। इस क्रिया की सराहना स्वयं भगवान महावीर ने की है।

२. उसने पाप के डर से कष्ट को सहन किया। मन को दृढ़ एवं शरीर को स्थिर रखा। परन्तु दावानल में जलते जीवों को सूंड से पकड़ पकड़ कर बाहर नहीं लाया। यह अनुकंपा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

३. प्रति संसार कीयों तिण ठांमें, उपनो श्रेणक नें घरे आई।
भगवंत आगल दीख्या लीधी, पेंहिला अधेन गिनाता माही।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

४. मंडलों एक जोजन रों कीधो, घणा जीव वच्या तिहां आई।
तिण वचीयां रो धर्म न चाल्यो, समकत आयां विण समझ न काई।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

५. नेम कुमर परणीजण चाल्या, पसू-पंखी देख दया दिल आंणी।
एहवों कांम सिरें नही मोंनें, म्हारें काज मरें बहु प्रांणी।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में।।

६. परणीजण सूं परिणांम फिरीया, राजमती नें उभी छिटकाई।
कर्म तणा बंध सूं नेम डरीया, तोडी आठ भवांरी सगाई॥
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

७. आप सूं मरता जीव जांणी नें, कडवा तूंबा रो कीधो आहारो।
कीडीयां री अणुकंपा आंणी, धिन-धिन धर्मरूची अणगारो॥
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

८. फोडवी लब्द अणुकंपा आंणी, गोसाला नें वीर बचायों।
छ लेस्या में छदमस्थ हूंता, मोह कर्म वस रागज आयों।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

९. असंजती गोसालो कुपातर, तिणनें साझ सरीर रो दीधो।
धर्म जांणें तों जगत दुखी था, वले वीर ए कांम कांय न कीधों।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१०. तेजू लेस्या मेल गोंसालें, बाळया दोय साध भसम करी काया।
लबदधारी था साध घणाई, मोटा पुरषां नें क्यूं न वचाया।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

३. उस स्थान में उसने संसार परिसीमन किया। राजा श्रेणिक के घर आकर जन्म लिया और भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। यह ज्ञाता सूत्र के प्रथम अध्ययन में वर्णन है। यह अनुकंपा जिनेश्वर देव की आज्ञा में हैं।

४. उसने एक योजन का परिमंड़ल तैयार किया। वहां आकर बहुत सारे जीव बच गए। परन्तु उनके बच जाने को धर्म नहीं बताया। सम्यक्त्व आए बिना कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

५. नेमिकुमार विवाह के लिए चले। पशु पक्षियों को देख कर उनके मन में दया आई। यह कार्य मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है, क्योंकि मेरे लिए बहुत सारे प्राणी मारे जा रहे हैं। यह अनुकंपा जिनेश्वर देव की आज्ञा में हैं।

६. विवाह से मन बदल गया। राजीमती को ज्यों की त्यों छोड़ दी। नेमिकुमार ने बन्धन से डरकर आठ भवों (जन्म) का नाता तोड़ दिया, यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

७. अपने द्वारा मरते जीवों को जानकर धर्मरूचि अणगार ने कड़वे तुम्बे का आहार किया। चींटियों की अनुकम्पा की। धन्य है धर्मरूचि अणगार को। यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

८. भगवान महावीर ने अनुकम्पा लाकर लब्धि फोड़ी। गोशालक को बचाया। उस समय भगवान छह लेश्या युक्त छद्मस्थ थे। मोहकर्म के कारण भगवान को यह राग आया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

९. गोशालक असंयति और कुपात्र था। उसे भगवान ने शारीरिक सहयोग दिया। यदि इसमें धर्म समझते तो सारा संसार दुःखी था, फिर ऐसा कार्य भगवान ने दुबारा क्यों नहीं किया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१०. गोशालक ने तेजोलेश्या के द्वारा दो साधुओं को जलाकर भस्म कर दिया, वहां लब्धिधारी अनेक-अनेक साधु थे फिर उन महापुरूषों को उन्होंने क्यों नहीं बचाया? इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

११. जिणरखीयें कीधी अणुकंपा, रेंणादेवी तिण सांहमों जोयो।
सेलकजख हेठो उतास्यों, देवी आंण खडग मे पोयों।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१२. भगता हिरणगवेषी नी सुलसा, कीधी अणुकंपा विलखी जांणी।
छ बेटा देवकी रा जाया, सुलसा रें घर मेल्या आंणी।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१३. जगनवाडें हरकेसी आया, असणादिक तेहनें नहीं दीथों।
जक्ष देवता अणुकंपा आंणे, रूद्रवमंता ब्राह्मण कीधा।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१४. मेघकुमर गर्भे हुंता जब, सुख रें तांई कीधा अनेक उपायों।
धारणी रांणी कीधी अणुकंपा, मन गमता असणादिक खायों।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१५. अभयकुमार नों मित्री देवता, तिण अभयकुमर री अणुकंपा आंणी।
धारणी रांणी रो डोहलो पूस्यों, अकाले विरखा करनें वरसायो पांणी।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१६. किस्नजी नेम वंदण ने जातां, एक पुरष नें दुखीयों जांणी।
साज दीयों अणुकंपा कीधी, इंट उठाय उणरें घरे आंणी।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१७. दुखीया दोरा देख दलद्री, अणुकंपा उणरी किण आंणी।
गाजर-मूलादिक सचित खवारें, वले पावें काचों अणगल पांणी।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

१८. दुखीया जीव मारग माहे देखी, टल जाए साध संकोची काया।
आप हणें नही पाप सूं डरतां, अणुकंपा आंण न मेलें छाया।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

११. जिनरक्षित ने करुणा करके रयणादेवी के सामने देखा। शेलक यक्ष ने उसे नीचे गिरा दिया और देवी ने आकर उसे खड्ग में पिरो लिया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१२. सुलसा हरिणैगमेषी देव की भक्ता थी। उसे दुःखी जानकर देव ने अनुकम्पा की। देवकी के छह पुत्रों को सुलसा के घर लाकर रख दिया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१३. हरिकेश मुनि यज्ञ-वाटक में आए। वहां उनको अशनादिक नहीं दिया। यक्षदेव ने अनुकम्पा करके ब्राह्मणों को रूधिरस्रावी बना दिया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१४. मेघकुमार जब गर्भ में था तब धारिणीरानी ने गर्भ-सुख के लिए अनेक उपाय किए। अनुकम्पा करके मनोज्ञ भोजन किए। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१५. मित्रदेव ने अभयकुमार की अनुकम्पा करके धारिणी रानी के दोहद को पूरा किया। अकाल में वर्षा कर पानी बरसाया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१६. कृष्णजी ने नेमिनाथ भगवान की वंदना के लिए जाते समय एक पुरूष को कष्ट में देख कर उसे सहयोग दिया। उस पर अनुकम्पा की। एक ईंट उठा कर उसके घर रख दी। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१७. दुःखी, कष्ट-प्राप्त तथा दरिद्री लोगों को देखकर कोई यदि उनके प्रति अनुकम्पा लाकर उन्हें गाजर, मूला आदि सचित्त (सजीव) वस्तुएं खिलाता है और सचित्त अनछाना पानी पिलाता है, इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

१८. अपने द्वारा कष्ट प्राप्त करते जीवों को देख कर साधु अपने शरीर को संकोच कर टल जाते हैं। स्वयं पाप से डर कर उनकी हिंसा नहीं करते और न उन्हें अनुकंपा करके छाया में लाकर रखते हैं। यह अनुकंपा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

१९. उपाडे नें जों छाया मेलें तो, असंजती नी वीयावच लागी।
आ अणुकंपा साध करें तों, जाए पांचूंई महावरत भागी।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२०. सो साध ग्रिषमकाल उनालें, पांणी विना हुवें जुदा जीव काया।
अणुकंपा आंणे नें असुध वेंहरावें, छ काय ना पीहर साध वचाया।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२१. गज सुखमाल ले नेम री आज्ञा, काउसग कीयों मसांण में जाई।
सोमल आंण खीरा सिर घाल्या, सीस न धूण्यों दया दिल आई।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में।।

२२. साध विनां अनेरा सर्व जीवां री, अणुकंपा आंणे साध बांधें बंधावें।
तिणनें नसीत रे बारमें उदेसें, तिण साध नें चोमासी प्रायछित आवें।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२३. रासड़ीयादिक सूं तस जीव बंध्या छें, ते तों भूख त्रिखादि सूं अतंत दुख पावं।
त्यांनें अणुकंपा आंणे नें छोडें छूडावें, तिण साध नें चोमासी प्राछित आवं।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२४. व्याध कुसटादिक रोगलो सुण नें, तिण उपर वेंद चलाए नें आवें।
साजो कर अणुकंपा आंणें, गोली चूर्ण दे रोग गमावें।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२५. लबदधारी ना खेलादिक थी, सोंलेंई रोग जडा सूं जावें।
वले जांणें साध ए रोग सूं मरसी, अणुकंपा आंणे रोग नहीं गमावें।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२६. जों अणुकंपा साध करें तों, उपदेस देई वेंराग चढावें।
चोखें चित पेंलों हाथ जोडें तों, च्यारूंई आहार ना त्याग करावें।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

१९. यदि उन जीवों को उठाकर छाया में रखे तो असंयति जीव की वैयावृत्त्य/ सेवा होती है। यदि ऐसी अनुकम्पा साधु करते हैं तो उनके पांचों ही महाव्रत भंग होते हैं। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२०. ग्रीष्मकाल की तेज गर्मी के समय सौ साधु पानी के बिना मर रहे हैं। किसी ने अनुकम्पा करके अशुद्ध आहार-पानी उन्हें लाकर दिया। छहकाय के रक्षक साधुओं को बचाया। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२१. गजसुकुमाल मुनि ने नेमिनाथ भगवान की आज्ञा लेकर श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग किया। सोमिल ने आकर सिर पर अंगारे रख दिये। किन्तु मुनि ने दिल में दया लाकर अपना सिर नहीं हिलाया। यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

२२. साधु के सिवाय अन्य सब जीवों की अनुकम्पा करके कोई साधु उन्हें बांधे या बंधवाये तो उस साधु को निशीथ सूत्र के १२ वें उद्देशक (बोल २) के अनुसार चातुर्मासिक प्रायश्चित प्राप्त होता है। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२३. रस्सी आदि से जो जीव बंधे हुए हैं, वे भूख प्यास आदि से अत्यन्त दुःख पा रहे हैं। अनुकम्पा लाकर यदि कोई साधु उन्हें छुड़ाता है तो उसको चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२४. कोई कुष्टादिक व्याधियों से ग्रस्त है, यह सुनकर वैद्य अपने आप आता है। गोली, चूर्ण आदि देकर उसका रोग मिटाता है और उसे स्वस्थ कर देता है। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२५. लब्धिधारी मुनि के श्लेष्म आदि से सोलह ही रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। मुनि यह भी जान ले, यह व्यक्ति रोग के कारण मरने वाला है। तथापि साधु अनुकम्पा करके उसका रोग नहीं मिटाते। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२६. साधु यदि अनुकम्पा करते हैं तो उपदेश देकर उसका वैराग्य बढ़ाते हैं। यदि वह स्वस्थ मन से हाथ जोड़कर चाहे तो चारों ही आहार का त्याग करा देते हैं। यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में हैं।

२७. ग्रहस्थ भूलों उजाड वन में, अटवी नें वले उजड जावें।
अणुकंपा आंणे साध मारग वतावें, तो च्यार महीनां रो चारित जावें।
आ अणुकंपा सावद्य जांणों॥

२८. अटवी में भूला नें अतंत दुखी देख, च्यारूंई सरणा साध दिरावें।
मारग पूछे तों मुनज साझें, बोलें तो भिन भिन धर्म सुणावें।
आ अणुकंपा जिण आगन्या में॥

२७. कोई गृहस्थ जंगल में भटक गया। वह उजड़ अटवी में चलता जा रहा है। यदि कोई साधु अनुकम्पा करके उसे मार्ग बताता है तो उसको चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। इस अनुकम्पा को सावद्य समझें।

२८. जंगल में भटकते हुए किसी को अत्यन्त दुःखी देख कर साधु उसे चार शरणा देते हैं। यदि वह मार्ग पूछता है तो साधु मौन रहते हैं। यदि वह बोलता है तो उसे विविध प्रकार से धर्म सुनाते हैं। यह अनुकम्पा जिनेश्वर देव की आज्ञा में है।

दूहा

१. अणुकंपा अह लोक नी, कर्म तणों बंध होय।
ग्यांन दरसण चारित विना, धर्म म जांणो कोय॥

२. जे अणुकंपा साधु करें, ते नवा न बांधें कर्म।
तिण माहिली श्रावक करें, तिणनें पिण छें धर्म॥

३. साध श्रावक दोनूं तणी, एक अणुकंपा जांण।
इमरत सहु नें सारिखों, कूडी म करों तांण॥

४. वरजी अणुकंपा साध नें, सूतर नीं दे साख।
चित्त लगाय नें सांभलों, श्री वीर गया छें भाख॥

ढाल : २

(लय-सोरठ-जतनी........)

१. छ डाभ मूंजादिक नीं डोरी, बंधीया करें हेला नें सोरी।
सी तापादिक कर दुखिया, साता वांछें जांणें हुवां सुखीया॥

२. अणुकंपा उणरी आंणें, छोडें छुडावें नें भलों जांणें।
तिणनें चोमासी प्राछित आवें, धर्म जांणें तों समकत जावें॥

दोहा

१. इस लोक की (लौकिक) अनुकम्पा से कर्म बंध होता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के सिवाय किसी को भी धर्म मत जानो।

२. जो अनुकम्पा साधु करते हैं, उससे नए कर्म का बंध नहीं होता। यदि वही अनुकम्पा श्रावक करता है, उसमें भी धर्म है।

३. साधु और श्रावक दोनों के द्वारा की गई अनुकम्पा एक समान होती है। अमृत सबके लिए एक समान होता है। झूठी खींचतान मत करो।

४. जिस अनुकम्पा को तीर्थंकर महावीर ने साधुओं के लिए वर्जित किया है। उसे सूत्र की साक्षी से बता रहा हूं। ध्यान लगाकर सुनें।

ढाल : २

१. डाभ और मूंज आदि की रस्सी से बंधे हुए जीव शोर मचा रहे हैं, बिल-बिलाहट कर रहे हैं। शीत, ताप आदि से दुःखी हैं। वे साता चाहते हैं। सोचते हैं हम सुखी हों।

२. उन जीवों की अनुकम्पा करके बन्धन से मुक्त करता है, दूसरों से करवाता है अथवा बन्धनमुक्त करने वालों की अनुमोदना करता है तो उस साधु को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। यदि ऐसे अनुकम्पा कार्य को धर्म माने तो सम्यक्त्व चली जाती है।

३. इम बांधे बंधावें हुवें राजी, तिणरोंइ संजम गयो भाजी।
एं तो सावद्य कांमा जांणों, तिणरा साधां कीया पचखांणों॥

४. जीवणों मरणों नही चावें, साधु क्यांनें बंधावें छूडावें।
ज्यांरी लागी मुगत सूं ताली, नही करें तके रूखवाली॥

५. ग्रहस्थ रें लागी लायों, घर बारें नीकलीयों न जायों।
बळतो जीव बिल-बिल बोलें, साधू जाय कमाड न खोलें॥

६. द्रबे भावें लाय लागी, तिण माहे केयक वेंरागी।
तिणांरी अणुकंपा आवें, उपदेश देई समझावें॥

७. जन्म मरण री लाय थी काढें, उणरों कांम सिरांडें चाढें।
पकडावें ग्यांनादिक डोरी, तिण थी आठूई कर्म दें तोडी॥

८. अणुकंपा कीयां डंड आवें, परमार्थ विरला पावें।
नसीत नो बारमों उदेशों, जिण भाख्यों दया नो रेसों॥

९. छोडें साध सूतर में कहें चाल्यों, ए तो अर्थ अणहूंतों घाल्यों।
भोला नें कुगुरां बेंहकाया, कूडा कूडा अर्थ बताया॥

१०. सिंघ बाघादिक मंजारी, हंसक जीव देखी आचारी।
यांनें मार कह्यां हंसा लागें, पेंहलोई महावरत भागें॥

११. मत मार कह्या उणरो रागी, तीजें करण हंसादिक लागी।
सूयगडाअंग साखी, श्री वीर गया छें भाखी॥

३. इस प्रकार यदि कोई बांधता है, बंधवाता है तथा अनुमोदन करता है तो उस साधु का संयम भंग हो जाता है। ये तो सारे सावद्य कार्य हैं। इनका साधु ने प्रत्याख्यान किया है॥

४. साधु उन प्राणियों का न जीना चाहता है और न मरना चाहता है। फिर वह क्यों बांधेगा और क्यों छुड़ाएगा? जिन साधुओं की मुक्ति से प्रीति है, वे किसकी रखवाली करेंगे।

५. गृहस्थ के घर में आग लगी है। घर से बाहर नहीं निकला जाता। जलते हुए जीव बिलबिलाहट करते हैं, परन्तु साधु जाकर कपाट नहीं खोलता।

६-७. संसार में द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकार की आग लगी है। उसमें कुछ लोग वैरागी होते हैं। उनकी अनुकम्पा करके साधु उपदेश के द्वारा उन्हें समझाते हैं। जन्म और मृत्यु की आग से उन्हें बाहर निकालते हैं। उनका कार्य शिखर चढ़ाते हैं, सिद्ध करते हैं। उन्हें ज्ञान आदि की ऐसी डोरी पकड़ाते हैं, जिससे वे आठों ही कर्म तोड़ देते हैं।

८. अनुकम्पा करने से दण्ड आता है, इस परमार्थ (वास्तविकता) को विरल व्यक्ति ही जान पाते हैं। निशीथसूत्र के १२वें उद्देशक (सूत्र १,२) में भगवान ने दया का रहस्य बताया है॥

९. कुछ लोग कहते हैं, साधु बंधे प्राणियों को छोड़ सकता है — यह सूत्र में कहा है, परन्तु यह अर्थ अयथार्थ है। शास्त्रों के गलत अर्थ बताकर कुगुरुओं ने भोले लोगों को भ्रमित किया है।

१०-११. सिंह, बाघ, बिल्ली आदि हिंसक जीवों को देखकर यदि आचारी- (साधु) यह कहे — इन्हें मारो तो साधु को हिंसा लगती है। प्रथम महाव्रत खण्डित होता है। यदि साधु यह कहे — इन्हें मत मारो तो उनके प्रति राग भाव आता है और तीसरे करण से हिंसा आदि का अनुमोदन होता है। सूत्रकृतांग सूत्र (श्रु २, अ. ५, श्लोक ३०) इसके लिए साक्षी है, भगवान ने उसमें ऐसा कहा है।

१२. ग्रहस्थ नो सरीर ममता में, साधु बेठों सुमता में।
रह्या धर्म सुकल ध्यांन ध्याई, मूंआ गयां फिकर न काई॥

१३. इहलोग नें परलोग, जीवणो मरणों कांम भोग।
ए तो पांचूंई छें अतिचार, वांछ्यां नही धर्म लिगार॥

१४. आपणोई वांछें तो पाप, पर नो कुण घालें संताप।
घणों जीवणो वांछें अग्यांनी, समभाव राखें ते ग्यांनी॥

१५. वायरो विरखा सी ताप, रह्यो न रह्यो चावे तो पाप।
राज विरुध रहीत सुगाल, उपद्रव जावो ततकाल॥

१६. सात बोलां रो ए विसतार, ओळखीया ते अणगार।
घट माहे जो सुमता आवें, हुवा न हुवा एको ही न चावे॥

१७. एकण नें दे रे चपेटी, एकण रो उपद्रव मेटी।
ए तो राग धेष नो चालो, दसवीकालक संभालो॥

१८. साधु बेठों नावा में आई, नावडीए नाव चलाई।
नावा फूटी माहे आवे पांणी, साधु देखें लोकां नही जांणी॥

१९. आप डूबें अनेरा प्रांणी, किणरी अणुकंपा नांणी।
वतायां वरत नों भंग, तिणरो साखी आचारंग॥

२०. सांनी कर साध जतावें, लोक कुसले खेमें घर आवें।
डूबा पिण साध न चावें, रह्या चावें तो तुरत वतावें॥

२१. मूंन साझ रह्या ते संत, तके करें संसार नो अंत।
परिणांमज राखें सेंठा, धर्म ध्यांन माहे रहें बेंठा॥

१२. गृहस्थ का शरीर ममता में है और साधु समता में स्थित है। वे धर्म और शुक्लध्यान ध्याते रहते हैं। उन्हें किसी के मरने की चिन्ता नहीं होती।

१३. इहलोकवांछा, परलोकवांछा, जीवनवांछा, मरणवांछा और कामभोगवांछा—ये पांचों ही अतिचार हैं। इनकी वांछा करने में तनिक भी धर्म नहीं है।

१४. अपने जीवन की वांछा करे वह भी पाप है फिर दूसरों के जीवन की वांछा का संताप कौन करेगा? अज्ञानी अधिक जीवन की वांछा करता है। जो समभाव रखता है वह ज्ञानी है।

१५-१६. वायु, वर्षा, सर्दी, गर्मी, राज्य में क्षेम, सुकाल और उपद्रव की तत्काल समाप्ति — इन सात बातों के लिए न इच्छा करे और न अनिच्छा करे। इन पूर्वोक्त सात बातों का विस्तार जिसने अच्छी तरह से जान लिया वही अनगार है। जिसके दिल में समता आ गई, वह ये सात बातें हो या न हों कुछ नहीं चाहता।

१७. एक के थप्पड़ मारता है और दूसरे का उपद्रव मिटा देता है — ये दोनों ही राग द्वेष के व्यवहार हैं। दशवैकालिक सूत्र (अ. ७ गाथा ५०) को देखलो।

१८-१९. साधु नाव में आकर बैठा। नाविक ने नाव चलाई। नाव में छिद्र हो गए हैं। पानी भरने लगा है, यह केवल साधु ने देखा, अन्य किसी ने नहीं जाना। साधु स्वयं डूब रहा है। दूसरे लोग भी डूबते जा रहे हैं, परन्तु किसी के प्रति अनुकम्पा नहीं लाए, क्योंकि बताने से व्रत भंग होता है, इस कथन का साक्षी है आचारांग (आ. चू. अ. ३, उ. १, सूत्र २२)।

२०. यदि संकेत करके साधु बताता है तो लोक कुशलक्षेम पूर्वक घर पहुंच जाते हैं। लोग डूब जाए, साधु यह भी नहीं चाहता और लोग जीवित रहे — यह चाहता तो उस छिद्र को तत्काल बता देता।

२१. ऐसे अवसरों पर जो मौन धारण करते हैं, वे संत हैं। वे ही संसार का अन्त करते हैं। वे परिणामों को मजबूत रखते हैं और धर्म-ध्यान में स्थित रहते हैं।

दूहा

१. वांछें मरणों जीवणों, तो धर्म तणों नहीं अंस।
ए अणुकंपा कीयां थकां, वधें कर्म नों वंस॥

२. मोह अणुकंपा जे करें, तिणमें राग नें धेख।
भोग वधे इंद्रां तणों, अंतर उंडो देख॥

३. दया अणुकंपा आदरे, तिण आत्म आंणी ठाय।
मरतो देखें जगत नें, सोच फिकर नही काय॥

४. कष्ट सह्या घर में थकां, पाल्या वरत रसाल।
मोह अणुकंपा श्रावकां, त्यां पिण दीधी टाल॥

५. काचा था ते चल गया, ते होय गया चकचूर।
के सेंठा रह्या चलीया नही, त्यांनें वीर वखांण्या सूर॥

ढाल : ३

(लय-तुम जोयजो रे स्वार्थ ना सगा......)

जीव मोह अणुकंपा नांणीए॥

१. चंपा नगरी ना वांणीया, ज्याज भर नें समुद्र में जाय रे।
हिवें तिण अवसर एक देवता, त्यांनें उपसर्ग कीधो आय रे।

२. मिनका सीयाल कांधें बेंसांणीया, गलें पेंहरी छें रूंड माल रे।
लोही रांध सूं लीप्यो सरीर नें, हाथ खडग दीसें विकराल रे।

दोहा

१. जीने और मरने की वांछा करने में धर्म का अंश नहीं होता। इस अनुकंपा के करने से कर्म की वंश-परम्परा बढ़ती है।

२. जो मोहयुक्त अनुकंपा करता है, उसमें राग और द्वेष होता है। उससे इन्द्रियों के भोग बढ़ते हैं। दोनों का अन्तर (भेद) गहराई से देखें।

३. जो दया और अनुकंपा को स्वीकार करता है, वह आत्मस्थित हो जाता है। वह संसार में मरते हुये जीवों को देखता है, परन्तु किसी की चिन्ता नहीं करता।

४. गृहस्थ जीवन में रहने वाले श्रावकों ने भी कष्टों को सहकर अपने व्रतों का निष्ठा से पालन किया है, उन्होंने भी मोह अनुकम्पा का वर्जन किया।

५. जो मन से दुर्बल थे वे विचलित हो गए, चूर-चूर हो गए। जो विचलित नहीं हुए, मजबूत रहे, उन्हें भगवान महावीर ने शूर कहा है।

ढाल : ३

हे जीव! मोह अनुकंपा मत कर।

१. चम्पानगरी के वणिक् जहाज में माल भरकर समुद्रपथ से जा रहे थे। उस समय एक देव ने आकर उन्हें उपसर्ग (कष्ट) दिए।

२. बिल्ली और शृगाल उसके कंधे पर बिठाए हुए थे। गले में कटे सिरों की माला थी। रक्त और पीप से लिप्त शरीर था और हाथ में भयानक खड्ग दिखाई दे रहा था।

३. लोक धड-धड लागा धूजवा, ओर देव रह्या मन ध्याय रे।
अरणक श्रावक डरीयों नही, तिण काउसग दीधो ठाय रे।।

४. सागारी अणसण कीयों, धर्म ध्यांन रह्यों चित्त ध्याय रे।
सगलां नें जांण्या डूबता, अणुकंपा न आंणी काय रे॥

५. अरणक श्रावक नें डिगायवा, देव वदि वदि बोंलें वाय रे।
जो अरणक धर्म न छोडसी, तो ज्याज डबोव सूं जल माहि रे॥

६. उंची उपाड नें उंधी नांख नें, कर सूं सगलां री घात रे।
काळी बोळी अमावस रा जिणों, मान रे तूं अरणक वात रे॥

७. ग्यान दर्शन म्हारा वरत नें, इणरों कीधों विघन न थाय रे।
हूं सेवग छूं भगवांन रो, मोंनें कोई न सकें चलाय रे॥

८. लोक बिल-बिल करता देख नें, अरणक रो न विगड्यों नूर रे।
मोह कुरणा न आंणी केहनी, देव उपशर्ग कीधो दूर रे॥

९. देव धिन धिन अरणक नें कहें, तूं तो जीवादिक नो जांण रे।
थांरा सुधर्मी सभा मझे, इंद्र कीया घणा वखांण रे॥

१०. अरणक श्रावक ना गुण देख नें, आया देव री दाय रे।
दोय कुंडल री जोडी आप नें, देव आयो जिण दिस जाय रे॥

११. नमीराय रषि चारित लीयों, ते तों उभो वाग में आय रे।
इंद्र आयों तिणनें परखवा, ते किण विध बोलें वाय रे॥

१२. थारी अगन करी मिथला बलें, एकर सूं स्हांमो जोय रे।
अंतेवर बलतो मेलसी, ए वात सिरें नहीं तोय रे॥

३. लोक थर-थर कांपने लगे और अपने इष्ट देव का स्मरण करने लगे। पर अरणक श्रावक भयभीत नहीं हुआ, वह कायोत्सर्ग में स्थित हो गया।

४. उसने सागारी अनशन कर लिया। धर्म-ध्यान में एकाग्र चित्त हो गया। सबको डूबते हुए देखकर उसने कोई अनुकंपा नहीं की॥

५. अरणक श्रावक को विचलित करने के लिए देवता बढ़-चढ़कर बोल रहा है। यदि अरणक धर्म नहीं छोड़ेगा तो मैं जहाज को पानी में डुबो दूंगा।

६. मैं जहाज को ऊपर उठाकर औंधी करके सबकी घात करूंगा। अंधेरी अमावस में जन्म लेने वाले हे अरणक! तूं मेरी बात को मान ले।

७. मेरे ज्ञान, दर्शन और चारित्र में इसके कारण कोई विघ्न नहीं होगा, क्योंकि मैं भगवान का सेवक हूं। मुझे कोई विचलित नहीं कर सकता।

८. लोगों को बिल-बिलाहट करते देखकर भी अरणक का चेहरा नहीं बिगड़ा। उसने किसी की भी मोह-अनुकंपा नहीं की, तब देवता ने उपसर्ग दूर कर दिया।

९. देवता अरणक को धन्य धन्य कहने लगा। तूं तो जीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता है। स्वयं इन्द्र ने सुधर्मा सभा में तुम्हारी प्रशंसा की है।

१०. अरणक श्रावक के गुण देवता को बहुत पसंद आए। यह देखकर दो कुंडलों की जोड़ी देकर देव जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

११. नमिराजर्षि ने चारित्र ग्रहण किया और वह बाग में आकर खड़े हो गए। इन्द्र उसकी परीक्षा लेने आया और बोला —

१२. तुम्हारी मिथिला आग से जल रही है। एक बार तुम उसकी ओर देखो। जलते हुए अंत:पुर को तुम छोड़ रहे हो, यह तुम्हारे लिए श्रेय नहीं है।

१३. सुख वपराय सारा लोक में, विलखा देख पुत्र रतन रे।
जो तूं दया पालण नें उठीयो, तो कर तूं यांरा जतन रे॥

१४. नमी कहें वसूं जीवूं सुखे, मारी पुल पुल सफला जात रे।
मिथला नगरी दाझतां, माहरो बळे नहीं तिलमात रे॥

१५. मोंने हरष नही मिथला रह्यां, बलीयां नहीं सोग लिगार रे।
सावद्य जांण त्यागी जका, रही बली चावें नहीं अणगार रे॥

१६. नमिराय रिषि आंणी नही, मोह अणुकंपा री वात रे।
समभाव राखे मुगते गया, करे आठ करमां री घात रे॥

१७. श्री केसव केरो बंधवों, ओं तो नांमें गजसुखमाल रे।
तिण दीख्या ले काउसग्ग रह्यों, सोमल आयो तिण काल रे॥

१८. माथें पाल बांधी माटी तणी, माहे घाल्या लाल अंगार रे।
कष्ट उपनों वेदन अति घणी, नेम कुरणा न आंणी लिगार रे॥

१९. श्री नेम जिणेसर जांणता, होसी गजसुखमाल री घात रे।
पिण अणुकंपा आंणी नही, ओर साध न मेल्या साथ रे॥

२०. श्री वीर जिणंद चोवीसमा, कल्पातीत मोटा अणगार रे।
त्यांने देव मनुख तिरजंच ना, उपशर्ग उपना अपार रे॥

२१. संगम देवता भगवांन नें, दुख दीधा अनेक प्रकार रे।
अनार्य लोकां पिण वीर नें, स्वांनादिक दीधा लार रे॥

२२. चोसठ इंद्र महोछव आवीया, दीख्या रे दिन भेला होय रे।
पिण कष्ट पड्यों भगवांन नें, नायो उपशर्ग टालण कोय रे॥

१३. तूं ने सारे संसार को सुख प्रदान किया पर अपने पुत्ररत्नों को बिलखते हुए देख रहा है। यदि तू दया पालने के लिए ही उद्यत हुआ है तो इनकी संभाल कर।

१४. नमिराजर्षि ने कहा– मैं सुख में रहता हूं। सुख में जीता हूं। मेरा पल–पल सफल जा रहा है। मिथिला नगरी के जलने पर मेरा उसमें कुछ भी नहीं जल रहा हैं।

१५. मुझे मिथिला के रहने पर कोई हर्ष नहीं है और उसके जलने पर किंचित भी शोक नहीं है। जिसको सावद्य समझ कर छोड़ दिया, वह रहे या जले अनगार कुछ नहीं चाहता।

१६. नमिराजर्षि ने मोह अनुकंपा नहीं की। समभाव रखकर वे आठों कर्मों का नाश करके मुक्त हो गए।

१७–१८. श्री कृष्ण के भाई ने जिसका नाम था गजसुकुमाल, दीक्षा लेकर कायोत्सर्ग किया। उस समय सोमिल ब्राह्मण वहां आया। उसने मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांधी और उसमें लाल–जलते अंगारे रख दिए। मुनि को कष्ट उत्पन्न हुआ। अत्यन्त वेदना हुई। किन्तु नेमिनाथ भगवान ने तनिक भी करुणा नहीं की।

१९. नेमिनाथ भगवान जानते थे कि गजसुकुमाल मुनि की मृत्यु होगी तथापि भगवान ने अनुकंपा नहीं की और अन्य साधुओं को साथ नहीं भेजा।

२०. चौबीसवें जिनेश्वर वीर भगवान कल्पातीत, महान अनगार थे। उन्हें देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी अनेक उपसर्ग उत्पन्न हुए।

२१. संगम देवता ने भगवान को अनेक कष्ट दिए। अनार्य लोगों ने भी भगवान के पीछे कुत्ते लगा दिए।

२२. भगवान के दीक्षा महोत्सव पर चौसठ इन्द्र सम्मिलित हुए। पर भगवान को जब कष्ट हुआ तब बचाने के लिए कोई नहीं आया।

२३. दुख देता देखी जगनाथ नें, किण अलगा न कीधा आय रे।
समदिष्टी देव हुंता घणां, त्यां कुरणा न आंणी काय रे॥

२४. देवता जांण्यों श्री विरधमांन रे, उदे आया दीसें छें कर्म रे।
अणुकंपा आंण विचें पड्यां, ए जिण भाख्यों नही धर्म रे॥

२५. धर्म हुवें तो आघों नही काढ़ता, वले वीर नें दुखीया जांण रे।
परीसो देण आवें तेहनें, देव अलगो करता तांण रे॥

२६. मछ गलागल मंड रही, सारा दीप समुद्रां माहि रे।
भगवंत कहें जो इंद्र नें, तो थोडा में दीयें मिटाय रे॥

२७. पडती जांणें अंतराय नें, तो अचित खवारें पूर रे।
एहवी सकत घणी छें इंद्र नी, पिण कर्म न हुवें दूर रे॥

२८. चूलणीपीया नें पोसा मझे, देव दीधा छें दुख आय रे।
कुण कुण हवाल तिण कीया, ते सांभलजो चित्त ल्याय रे॥

२९. तीन बेटां रा नव सूला कीया, तिणरा मूहढा आगें ल्याय रे।
तेल उकाल नें माहे तल्या, बळबळता सूं छांटी काय रे॥

३०. समें परिणांमें वेदना सही, जांणी आपणा संच्या कर्म रे।
अणुकंपा नांणी अंगजात री, तिण छोड्यों नहीं जिण धर्म रे॥

३१. मत मारण रो कह्यों नही, ते तों जांण्यों सावद्य वाय रे।
कुरणा नांणी मरता देखने, सेंठों रह्यों धर्म ध्यांन ध्याय रे॥

२३. भगवान को कष्ट देते हुए देखकर किसी ने भी आकर उन्हें अलग नहीं किया। सम्यग्दृष्टि देव भी बहुत थे, उन्होंने करुणा क्यों नहीं दिखाई ?।

२४. देवताओं ने जाना, भगवान महावीर के अभी कर्मोदय है। अनुकंपा करके बीच में पड़ना—यह जिनभाषित धर्म नहीं है॥

२५. यदि धर्म होता तो भगवान महावीर को दु:खी-कष्ट में देखकर वे थोड़ा भी विलम्ब नहीं करते। देव परिषह देने वालों को खींचकर अलग कर देते।

२६. सभी द्वीप समुद्रों में मच्छ गलागल हो रही है अर्थात् एक जीव दूसरे जीव को खा रहा है। भगवान यदि यह इन्द्र से कह दे तो उसे थोड़े में ही मिटाया जा सकता है।

२७. यदि ऐसा करने से उन जीवों के आहार की अन्तराय हो तो इन्द्र के पास ऐसी बहुत शक्तियां हैं, उन्हें भरपूर अचित्त आहार खिला देता पर ऐसा करने से कर्म दूर नहीं होते।

२८. चूलनीपिता श्रावक को पोषध में आकर देवता ने कष्ट दिए। उसने क्या-क्या घटित किया, वह ध्यान देकर सुनो।

२९. चूलनीपिता के सामने लाकर उसके तीन पुत्रों के तीन-तीन करके नौ टुकड़े किए। उन्हें गर्म तेल में तला। उस गर्म तेल से चूलनीपिता के शरीर को भी छांटा।

३०. चूलनीपिता ने अपने संचित कर्मों का फल जानकर समतामय परिणामों से वेदना को सहन किया। उसने अपने पुत्रों की अनुकंपा नहीं की और जिनधर्म को भी नहीं छोड़ा।

३१. मत मारो, यह भी नहीं कहा, क्योंकि यह तो सावद्य भाषा है। पुत्रों को मरते देखकर भी उसने करुणा नहों की। धर्म ध्यान करने में सुदृढ़ रहा।

३२. जो तूं धर्म न छोडसो, थारें देव गुर जिम छे माय रे।
तिणने मारूं इण विध आगली, थांरा मूहढा आगें ल्याय रे॥

३३. जद आरत ध्यांन तूं ध्याय नें, परसी माठी गति में जाय रे।
सुणनें चूलणीपीया चल गयों, मानें राखण रो करें उपाय रे॥

३४. ओ तों पुरुष अनार्य कहे जिसों, झाल राखूं ज्यू न करें घात रे।
ते तो भद्रा वचावण उठीयों, इणरें थांभो आयो हाथ रे॥

३५. अणुकंपा आंणी जिणणी तणी, तो भागा वरत ने नेम रे।
देखो मोह अणुकंपा एहवी, तिणमें धर्म कहीजे केम रे॥

३६. चूलणीपीया नें सूरादेव ना, चूलशतक नें सकडाल रे।
यां च्यांरा ना मारूया दीकरा, देव तलीया तेल उकाल रे॥

३७. बेटां नें मरता देखीया, नांणी मोह अणुकंपा पेम रे।
उठ्या मात त्रियादिक राखवा, तो भागा वरत नें नेम रे॥

३८. मात त्रियादिक राखितां, भागा व्रत नें बंध्या कर्म रे।
तो साध विचें जाए पडीयां थकां, यांनें किण विध होसी धर्म रे॥

३९. चेडा नें कोणिक नी वारता, निरावलिका भगोती साख रे।
मानव मूआ दोय संगरांम में, एक कोड नें असी लाख रे॥

४० भगवंत अणुकंपा आंण नें, पोत न गया न मिल्या साध रे।
यांनें पेंहला पिण वरज्या नही, घणा जीवां री जांणे विराध रे॥

४१. ए दया अणुकंपा जांणता, तो वीर वडाले जाय रे।
सगला ने साता वपरावता, थोडा में देता चूकाय रे॥

३२. यदि तूं अपना धर्म नहीं छोड़ेगा तो देव गुरू तुल्य तुम्हारी माता को तुम्हारे सामने लाकर इसी प्रकार मारूंगा।

३३. जब तूं आर्तध्यान करके नीच गति में जाकर पैदा होगा। यह सुनकर चूलनीपिता विचलित हो गया। माता की सुरक्षा के उपाय करने लगा।

३४. यह पुरूष तो अनार्य कहे जैसा है। इसे पकड़कर रखूं ताकि मेरी माता की घात नहीं कर सके। वह तो माता भद्रा को बचाने के लिए उठा, पर उसके हाथ में खंभा आ गया।

३५. माता की अनुकंपा की तो व्रत और नियम भंग हो गए। विचारो, ऐसी मोह-अनुकंपा को धर्म कैसे कहा जा सकता है?।

३६. चूलनीपिता, सुरादेव, चूलशतक और शकड़ाल—इन चारों के पुत्रों को मारकर देवता ने तेल उबालकर उसमें तला।

३७. पुत्रों को मरते हुए देखा, पर मोह-अनुकंपा प्रेम नहीं की। माता, स्त्री आदि को जब बचाने उठे तो व्रत एवं नियम भंग हो गए।

३८. माता, स्त्री आदि की रक्षा करने से व्रत भंग हुए और कर्म बंध हुआ तो साधु यदि बीच में जाकर पड़े तो धर्म कैसे होगा?।

३९. चेटक और कोणिक का वर्णन निरयावलिका एवं भगवती सूत्र में है। दो संग्रामों में एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्य मरे।

४०. भगवान महावीर अनुकंपा करके न स्वयं गए न अपने साधुओं को भेजा और बहुत जीवों की विराधना जानकर पहले भी उन दोनों को नहीं रोका।

४१. इस कार्य को यदि दया—अनुकंपा समझते तो स्वयं भगवान महावीर आगे होकर जाते और सबको थोड़े में ही साता करके सुखी बना देते।

४२. कोणिक भगता भगवांन रो, चेडो बारें वरतधार रे।
इंद्र भीडी आयो ते समकती, अें किण विध लोपत्त कार रे॥

४३. ग्यांन दर्शन चारित्र माहिलों, वधतों जांणें किणरों उपाय रे।
तों करें अणुकंपा भव जीव री, वीर विना बुलायां जाय रे॥

४४. समुद्रपाली सुखां में झिल रह्यों, संसार विषें रस लाग रे।
चोर नें मारतो देख ऊपनों, उतकष्टों परम वेंराग रे॥

४५. चारित्र लीयों कर्म काटवा, जांणे मोक्ष तणों उपाय रे।
पिण कुरणा न आंणी चोर नीं, छोडावण री न काढी वाय रे॥

४६. साध श्रावक नीं एक रीत छें, तुमे जोवों सूत्र नों न्याय रे।
देखों अंतर माहे विचार नें, कूडी कांय करों बकवाय रे॥

४२. कोणिक भगवान का भक्त था और चेटक बारह व्रती श्रावक। इन्द्र सहयोगी बनकर आया वह भी सम्यक्त्वी था। ये सब मर्यादा का लंघन कैसे करते ?।

४३. किसी का ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र बढ़ता जाने तो भगवान भव्य जीवों की अनुकंपा करते हैं। बिना बुलाए वहां जाते हैं।

४४. समुद्रपाल सांसारिक-सुखों में झूल रहा था। संसार में उसे रस-आनन्द आता था। चोर को मारते हुए देखकर उसे उत्कृष्ट वैराग्य उत्पन्न हो गया।

४५. मोक्ष के उपायों को जानकर कर्म काटने के लिये उसने चारित्र ग्रहण कर लिया। परन्तु न चोर की करुणा की न उसे छुड़ाने की बात मुंह से निकाली।

४६. साधु और श्रावक की एक रीति है। तुम सूत्रोक्त न्याय को समझो। आन्तरिक दृष्टि से विचार करके देखो। झूठी बकवास क्यों करते हो ?।

दूहा

१. दुखीया देखी तावडें, जों नही मेलें छाय।
साध श्रावक न गिणें तेहनें, ए अनतीरथी री वाय॥

२. मारयां मरायां भलों जांणीयां, तीनोंई करणां पाप।
देखण वाला नें जे कहें, ते खोटा कुगुर सराप॥

३. करमां कर नें जीवडा, उपजे ने मर जाय।
असंजम जीतव्य तेहनों, ते साधु न करें उपाय॥

४. देखे माहो माही विणसता, अलगो करदां जाय।
एहवों कहे तिण उपरे, साध वतावें न्याय॥

ढाल : ४

(लय-दुलहो मानव भव कांय तुरें हारो......)

करजों परक्ष जिण धर्म नी॥

१. नाडो भरीयों छें डेडक माछल्यां, माहे नीलण फूलण रो पूर हो। भवकजण
लट पूंअरा आदि जलोक सूं, तस थावर भरीया अरूड हो। भवकजण

२. सुलीया धांन तणो ढिगलों परयों, माहे लटां नें ईल्यां अथाय हो।
सुलसल्यां इंडादिक अति घणा, किल विल करें तिण मांहि हो।

दोहा

१. जीवों को धूप में दुःखी देखकर जो छाया में नहीं रखता, उसे साधु और श्रावक नहीं गिना जाता—ऐसा अन्यतीर्थियों का कथन है॥

२. मारना, मरवाना और मारते हुए को अच्छा समझना ये तीनों ही करण पाप है। देखने वालों को पाप लगे यह तो खोटे कुगुरू के शाप-गाली जैसा है॥

३. कर्मों के अनुसार जीव जन्मते हैं और मर जाते हैं। उनके असंयत जीवन के लिए साधु उपाय नहीं करते॥

४. जीवों को परस्पर विनष्ट होते देख कर, हम जाकर उन्हें अलग करदें, जो ऐसा कहते हैं उस पर साधु न्याय बताते हैं।

ढाल : ४

भविकजनों! जैन धर्म की परीक्षा करें।

१. एक छोटा तालाब मेंढक और मछलियों से भरा है, उसमें भरपूर नीलण फूलण-काई जमी है। लट, फूंहरा, जलोक आदि त्रस और स्थावर जीवों से ठसाठस भरा है।

२. सड़े हुए धान का ढ़ेर लगा है, जिसमें अथाह लटें और ईलियां हैं। सुलसुले, अण्ड़े आदि अतिमात्रा में तिलमिला रहे हैं।

३. एक गाडो भर्‍यों जमीकंद सूं, तिणमें जीव घणा अनंत हो।
च्यार प्रज्या नें च्यार प्रांण छें, मार्‍यां कष्ट कह्यो भगवंत हो॥

४. काचा पांणी तणा माटा भर्‍या, घणा जीव छें अणगल नीर हो।
नीलण फूलण आदि लटां घणी, त्यांमें अनंत वताया छें वीर हो॥

५. खात भीनों उकरली लटां घणी, गीडोला गधईया जांण हो।
टलवल टलवल कर रह्या, यांनें कर्मां नांख्या आंण हो॥

६. कायक जायगा में उंदर घणां, फिरें आमा साहमा अथाग हो।
थोडों सो खडकों सांभलें, तो जाअें दिशोंदिश भाग हो॥

७. गुल खांड आदि मिसटांन में, जीव चिहुं दिस दोड्या जाय हो।
माख्यां ने मांका फिर रह्या, ते तों हुचकें माहो माहि आय हो॥

८. नाडों देखी नें आवें भेंसीयां, धांन ढूकें बकरा आय हो।
गाडें आवें बलद पाधरा, माटों आय उभी छें गाय हो॥

९. पंखी चूगें उकरळी उपरें, उंदर पाछें मिनकी जाय हो।
माखी नें मांका पकड लें, साधु किणनें वचावें छुडाय हो॥

१०. भेंस्यां हाकल्यां नाडा माहिलां, सगलां रे साता थाय हो।
बकरां नें अलगा कीयां, इंडादिक जीव ते वच जाय हो॥

११. थोडा सा बलदां नें धाकल्यां, तो न मरें अनंत काय हो।
पांणी पूंहरादिक किण विध मरें, नेंडी आवण न दे गाय हो॥

१२. लट गीडोलादिक कुसले रहें, जो पंखी दीयें उडाय हो।
मिनकी छछकार नसार दें, तो उंदर घर सोग न थाय हो॥

३. गाड़ी जमीकन्द से भरी है। उसमें अनन्त जीव है। उन जीवों के चार पर्याप्तियां और चार प्राण हैं। मारने पर उन्हें कष्ट होता है, ऐसा भगवान ने कहा है।

४. सचित्त पानी के मटके (बड़े घड़े) भरे हैं। उनमें बहुत सारे जीव हैं। अनछाना पानी है। लटें, नीलण-फूलण आदि बहुत हैं। उनमें भगवान ने अनन्त जीव बताए हैं।

५. अकुरडी में भीनी खाद पड़ी है। उसमें बहुत लटें हैं। गिण्डोला और गधियां भी हैं। उसमें अनेक जीव तिलमिल कर रहे हैं। अपने कृत कर्मों ने ही उन्हें यहां पटका है।

६. किसी जगह चूहे अधिक हैं। वे इधर-उधर दौड़ रहे हैं। थोड़ा सा शब्द सुनते ही वे चारों ओर भाग जाते हैं।

७. गुड़, चीनी आदि मिष्ठान्न पर अनेक जीव मंडरा रहे हैं। छोटी-बड़ी मक्खियां एवं मक्खे फिर रहे हैं और वे परस्पर एक दूसरे पर उछलते है।

८-९. तालाब देखकर भैंसें आती हैं। धान्य के ऊपर बकरे आते हैं। गाड़ी पर बैल सीधे आते हैं। मटकी पर गाय खड़ी है। पक्षी कूड़े के ढ़ेर पर चुग रहे हैं। चूहों के पीछे बिल्ली जा रही है। मक्खियों को मक्खे पकड़ रहे हैं। अब साधु किसे बचाए और किसे छुड़ाए ?।

१०. भैंसों को ललकारने से तालाब में रहे सब जीवों के साता हो जाती है। बकरों को दूर कर देने से अण्डे आदि जीव बच जाते हैं।

११. बैलों को थोड़ा सा ललकारने से तो अनन्तकाय के जीव मरने से बच जाते हैं। पानी और फूंहरा आदि जीव कैसे मरेंगे, यदि गाय को नजदीक नहीं आने देंगे।

१२. यदि पक्षियों को उड़ा दिया जाए तो लटें और गिण्डोला आदि जीव सकुशल रह जाते हैं। यदि बिल्ली को छिछकार कर भगा दिया जाए तो चूहों के घर में शोक नहीं होगा।

१३. मांका नें आधो पाछो करें, तो माखी उड नाठी जाय हो।
साधां रे सगला सारिखा, ते तों विचें न पडें जाय हो॥

१४. मिनकी धाकल उंदर वचाय लें, माखी राखें मांका ने धकाय हो।
ओर मरता देख राखें नही, यांमें चूक पड्यों ते वताय हो॥

१५. साध पीहर वाजें छ काय ना, एक छोडावें तस काय हो।
पांच काय मरती राखें नही, तो पीहर किण विध थाय हो॥

१६. रजूहरण लेई नें उठीयों, जोरी दावें दीया छुडाय हो।
ग्यांन दर्शण चारित्र माहिलो, यांरें वधीयों ते मोहि वताय हो॥

१७. ग्यांन दर्शन चारित्र तप विना, ओर मुगत रो नही उपाय हो।
छोडा मेला उपगार संसार ना, तिण थी सुद गति किण विध जाय हो॥

१८. जितरा उपगार संसार ना, ते तो सगलाइ सावद्य जांण हो।
श्री जिण धर्म में आवें नही, कूडी म करों तांण हो॥

१९. अग्यांनी रो ग्यांनी कीयां थकां, हुवों निश्चें पेंलां रों उधार हो।
कीयों मिथ्याती रो समकती, तिण उतारीयों भव पार हो॥

२०. असंजती नें कीयों संजती, ते तो मोख तणा दलाल हो।
तपसी कर पार पोहचावीयों, तिण मेट्या सर्व हवाल हो॥

२१. ग्यांन दर्शण चारित्र नें तप, यांरों करे कोई उपगार हो।
आप तिरें पेंलों उधरे, दोयां रों खेवों पार हो॥

२२. ए च्यार उपगार छें मोटका, तिणमें निश्चें जांणों धर्म हो।
शेष रह्या कार्य संसार ना, तिण कीधां बंधसी कर्म हो॥

१३. यदि मक्खों को इधर-उधर कर दिया जाए तो छोटी मक्खियां उड़कर भाग जाएगी। साधु के लिए सब प्राणी समान हैं, वे किसी के बीच में नहीं पडते।

१४. बिल्ली को ललकार कर चूहे बचालें। मक्खों को ढ़केल कर मक्खियों को बचालें, परन्तु अन्य मरते जीवों को देख कर नहीं बचाए। उन जीवों का क्या अपराध है, यह बताया जाए?।

१५. साधु छकाय के रक्षक कहलाते हैं और रक्षा करते हैं केवल त्रसकाय की। यदि वे पांच काय के जीवों को नहीं बचाते हैं तो छहकाय के रक्षक कैसे हुए?।

१६. साधु रजोहरण (ओघा) हाथ में लेकर खड़ा हुआ और जबरदस्ती से किसी प्राणी को छुड़वा दिया। उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र में से किसकी वृद्धि हुई, यह मुझे बताए?।

१७. ज्ञान, दर्शन, चारित्र के बिना कोई मुक्ति का साधन नहीं है। छोड़ना और रखना यह सांसारिक उपकार है। उससे शुभगति कैसे हो सकती है?।

१८. जितने सांसारिक उपकार हैं, वे सभी सावद्य हैं। वे उपकार जिनेश्वर देव के धर्म में नहीं आते। झूठी तान मत करो।

१९. किसी अज्ञानी को ज्ञानी किया जाता है तो निश्चित ही उसका उद्धार होता है। मिथ्यात्वी से किसी को सम्यक्त्वी बनाया जाता है तो वह उसे भव सागर से पार करता है।

२०. असंयती को संयती कर दिया तो वह मोक्ष का दलाल हो जाता है। किसी को तपस्वी बना कर भव पार पहुंचा दिया तो उसने सारी बुरी दशा को ही मिटा दिया।

२१. ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप—इन चारों से संबंधित कोई उपकार करता है, वह स्वयं तरता है और दूसरे का उद्धार करता है। दोनों का उद्धार हो जाता है।

२२. ये चार प्रकार के उपकार महान हैं। इनमें निश्चित ही धर्म समझो। शेष रहे हुए सारे कार्य सांसारिक हैं। जिनके करने से कर्म बन्ध होता है।

दूहा

१. जीव दया नें उपरें, मूलगा तीन दिसटंत।
आगे विसतार करें जितों, ते सुणजो कर खंत॥

ढाल : ५

(लय - सहेल्यां ए वांदो रूडा साध नें)

भव जीवां तुमे जिण धर्म ओळखों॥

१. एक चोर चोरें धन पार को, वले दूजो हों चोरावें आगेवांण।
तीजो कोइ करें अणुमोदना, ए तीनां रा हो खोटा किरतब जांण।

२. एक जीव हणें तसकाय ना, हणावें हो बीजों पर ना प्रांण।
तीजों पिण हरषें ए मारीयां, ए तीनोई हो जीव हंसक जांण॥

३. एक कुसील सेवें हरष्यों थको, सेवाडें हो ते तो दूजें करण जोय।
तीजों पिण भलो जांणें सेवीयां, ए तीनां रे हो कर्म तणों बंध होय॥

४. ए सगला नें सतगुर मिल्या, प्रतिबोध्या हो आंण्या मारग ठाय।
किण किण जीवां नें साधां उधर्या, तिणरो सुणजो हो विवरा सुध न्याय॥

५. चोर हंसक नें कुसीलीया, यांरें तांई रे दीधो साधां उपदेस।
त्यांनें सावद्य रा निरवद कीया, एहवो छें हों जिण दया धर्म रेस॥

दोहा

१. जीव दया के ऊपर तीन मौलिक दृष्टान्त हैं। आगे चाहे जितना विस्तार हो सकता है। उन्हें शान्ति से सुनें।

ढाल : ५

हे भव्य जीवो! तुम जैनधर्म को पहचानो।।

१. एक चोर दूसरे के धन को चुराता है। दूसरा आगे होकर चुरवाता है। तीसरा कोई उसका अनुमोदन करता है। इन तीनों के कर्तव्य बुरे (पापात्मक) हैं।

२. एक त्रसकाय के जीवों की हिंसा करता है। दूसरा उनकी हिंसा करवाता है। तीसरा मारे जाते को देख कर हर्षित होता है। इन तीनों को ही हिंसक जाने।

३. एक व्यक्ति हर्षित होकर कुशील सेवन करता है। दूसरा सेवन करवाता है। तीसरा उस कार्य का अनुमोदन करता है। इन तीनों के ही कर्म का बंध होता है।

४. इन सब व्यक्तियों को सुगुरू मिले। प्रतिबोध देकर सही मार्ग लगाया। किन-किन व्यक्तियों का साधुओं ने उद्धार किया, उनका विवरण सहित न्याय सुनें।

५. चोर, हिंसक और व्यभिचारी इन तीनों के लिए साधुओं ने उपदेश दिया। उन्हें पापकारी प्रवृत्तियों से हटाकर धर्म में प्रवर्तित किया। यही जिनेश्वर देव के दया-धर्म का रहस्य है।

६. ग्यांन दर्शन चारित तीनूं तणो, साधां कीधो हो जिण थी उपगार।
ते तो तिरण तारण हुआ तेहना, उतार्‍या हो त्यांनें संसार थी पार॥

७. ए तो चोर तीनूं समझ्यां थकां, धन रह्यो रे धणी नें कुसले खेम।
हंसक तीनूं प्रतिबोधीयां, जीव वचीयो हो कीधो मारण रो नेम॥

८. सील आदरीयो तेहनी, असतरी हो पडी कूआ माहे जाय।
यांरो पाप धर्म नही साध नें, रह्या मूआ हो तींनू इविरत माहि॥

९. धन रो धणी राजी हुवों धन रह्यां, जीव वचीया हो ते पिण हरषत थाय।
साधु तिरण तारण नही तेहनां, नारी नें पिण हो नही डबोई आई॥

१०. कोई मूंढ मिथ्याती इम कहें, जीव वचीया हो धन रह्यों ते धर्म।
तो उणरी सरधा रें लेखें, असतरी हो मूंई तिणरा लागें कर्म॥

११. जीव जीवे ते दया नही, मरे ते हो हंसा मत जांण।
मारण वाला नें हंसा कही, नहीं मारें हों ते तों दया गुणखांण॥

१२. नींब आंबादिक विरख नो, किण ही कीधो हो वाढण रो नेम।
इविरत घटी तिण जीव नी, विरख उभो हो तिणरो धर्म केम॥

१३. सर ग्रह तलाव फोडण तणों, सूंस लेइ हो मेट्या आवता कर्म।
सर ग्रह तलाव भरया रहें, तिण माहि हो नही जिणजी रो धर्म॥

१४. लाडू घेवर आदि पकवांन नें, खावा छोड्या हो आत्म आंणी तिण ठाय।
वेंराग वध्यों तिण जीव रें, लाडू रह्यों हो तिणरो धर्म न थाय।।

६. ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनों के रूप में साधुओं ने उनके प्रति उपकार किया, वे स्वयं तरने वाले और दूसरों को तारने वाले हुए। उनको संसार-सागर से पार उतारा।

७. इन तीनों ही चोरों के समझने से मालिक का धन बचा, वह कुशल रहा, और तीनों प्रकार के हिंसक व्यक्तियों को प्रतिबोध देने से उन्होंने हिंसा का त्याग किया, जिससे जीव बच गए।

८. शीलव्रत स्वीकार किया, उससे स्त्री कुए में जा गिरी। इन सबका पाप या धर्म साधु को नहीं होता। जीवित रहे या मरे ये तीनों ही अव्रत में है।

९. धन के बचने से धन का मालिक खुश हुआ। जो जीव बच गए वे भी हर्षित हुए। साधु उन दोनों को न तारने वाले हैं और न उस स्त्री को डुबोने वाले हैं।

१०. कई मूर्ख मिथ्यात्वी ऐसा कहते हैं-जीव बचे और धन रहा वह धर्म है। उनकी श्रद्धा के अनुसार जो स्त्री मर गई, उसका पाप फिर साधु को लगना चाहिए।

११. जीव (अपने आयुबल से) जीता हैं वह दया नहीं है। मरता है वह हिंसा नहीं है। मारने वाले को हिंसा होती है। नहीं मारता है—वह दया गुणों की खान है।

१२. किसी ने नियम लिया, मैं आम, नीम आदि वृक्षों को नहीं काटूंगा। उस जीव के अव्रत घटी, पर वृक्ष खड़ा है उसका धर्म कैसे हुआ?।

१३. किसी व्यक्ति ने सरोवर, द्रह और तालाब फोड़ने का त्याग लेकर आने वाले कर्मों को मिटा दिया। सर, द्रह और तालाब भरे रहे—इसमें जिनेश्वर देव का धर्म नहीं है।

१४. किसी ने आत्मा को वश करके लड्डू, घेवर आदि मिठाई खाने का त्याग किया। उसका वैराग्य बढ़ा, परन्तु लड्डू बचे, उसका धर्म नहीं हुआ।

१५. दव दवो गांम जलायवों, इत्यादिक हो सावद्य कार्य अनेक।
ए सर्व छोडावे समझाय नें, सगला री हो विध जांणों तुमे एक।।

१६. हिवे कोइक अग्यांनी इम कहे, छ काय काजें हो द्यां छां धर्म उपदेस।
एकण जीव नें समझावीयां, मिट जाए हो घणा जीवां रो कलेश।।

१७. छ काय घरे साता हुइ, एहवो भाखें हो अणतीरथी धर्म।
त्यां भेद न पायो जिण धर्म रो, ते तो भूला हो उदे आयो मोह कर्म।।

१८. हिवें साध कहें ते सांभलों, छ काय रे हो साता किण विध थाय।
सुभ उसभ बांध्या ते भोगवें, नही पाम्यां हो त्यां मुगत उपाय।।

१९. हणवा सूस कीया छ काय ना, तिणरें टलीया हो मंला उसभ कर्म पाप।
ग्यांनी जांणें साता हुई एहनें, मिट गया हो जन्म मरण संताप।।

२०. साधु तिरण तारण हुआ एहना, सिध गति में हों मेल्यों अविचल ठांम।
छ काय लारें झिलती रही, नही सझीया हो तिणरा आत्म कांम।।

२१. आगें अरिहंत अनंता हुआ, कहतां कहतां हो कदे नावें तिणरों पार।
आप तिर्‍या ओरां नें तारीया, छ काय रे हो साता न हुइ लिगार।।

२२. एक पोंतें वच्यों मरवा थकी, दूजें कीधो हो तिणरें जीवण रो उपाय।
तीजों पिण हरष्यों उण जीवीयां, यां तीनां में हो कुण सुद गति जाय।।

१५. दावाग्नि लगाना, गांव जलाना आदि अनेक सावद्य कार्य हैं। इन सबको समझा कर छुड़ाए। ऐसे सभी कार्यों की विधि तुम एक जैसी जानो।

१६. इस समय कुछ अज्ञानी ऐसा कहते हैं, छह काय के जीवों की साता के लिए हम धर्म का उपदेश देते हैं। एक जीव को समझाने से अनेक जीवों का क्लेश मिट जाता है।

१७. छहकाय के जीवों के साता हुई वह धर्म है ऐसा अन्यतीर्थी लोग कहते हैं। उन लोगों ने जैन धर्म का भेद-मर्म नहीं समझा। वे तो मोह कर्म के उदय से भटक गए हैं।

१८. अब जो साधु कहते हैं वह सुनें—छहकाय के जीवों के साता कैसे होती है। वे अपने बंधे हुए शुभ-अशुभ कर्म भोगते हैं, उन्हें मुक्ति का उपाय नहीं मिला है।

१९. जिसने छहकाय के जीवों की हिंसा का त्याग किया, उसके मलिन अशुभ-पाप कर्म टल गए। ज्ञानियों की दृष्टि में उनके जन्म मरण रूप संताप मिट गए, यही साता है।

२०. साधु उनके लिए तीर्ण-तारक हो गए, क्योंकि साधुओं ने उन्हें अविचल स्थान मोक्ष-गति में पहुंचा दिया, किन्तु छहकाय के जीव तो संसार में ही झूलते रहे। उनके आत्मिक कार्य सिद्ध नहीं हुए।

२१. पूर्वकाल में अनन्त तीर्थंकर हुए, उनका वाणी से कभी पार नहीं पाया जा सकता। वे स्वयं तिरे और दूसरों को तारा, परन्तु इससे छहकाय के जीवों के किंचित भी साता नहीं हुई।

२२. एक आदमी मरने से स्वयं बच गया। दूसरे ने उसके जीवित रहने का उपाय किया। तीसरा उसके जीवित रहने से हर्षित हुआ। इन तीनों में शुभगति कौन जाएगा?।

२३. कुसले रह्यों तिणरें इविरत घटी नही, तो दूजा नें हों तुमें जांणजो एम।
भलो जांणें तिणरें विरत न नीपनी, ए तीनोइ हो सुद गति जासी केम॥

२४. जीवीयां जीवायां भलो जांणीयां, ए तीनोइ हो करण सरीखा जांण।
कोई चतुर होसी ते परखसी, आण समझ्या हो करसी तांणातांण॥

२५. छ काय रो वांछें मरणों जीवणों,ते तो रहसी हो संसार मझार।
ग्यांन दर्शण चारित तप भला, आदरीयां हो आदराया खेवो पार॥

२३. जो स्वयं सकुशल रहा, उसके अव्रत नहीं घटी। दूसरे को भी तुम ऐसा ही समझो। जिसने भला समझा उसके भी व्रत निष्पन्न नहीं हुआ। ये तीनों ही शुभगति में कैसे जाएंगे?।

२४. जो जीता है, जो जिलाता है और जो भला जानता है, ये तीनों ही करण एक समान है। जो चतुर होंगे, वे इस बात की परीक्षा कर लेंगे और जो अज्ञानी होंगे वे खींचतान करेंगे।

२५. जो छहकाय के जीवों का जीवन, मरण चाहता है, वह तो संसार में घूमता रहेगा। किंतु जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इनको अच्छी तरह से स्वयं स्वीकार करेगा और दूसरों को स्वीकार करवाएगा, उसका बेड़ा पार होगा।

दूहा

१. पोतें हणें हणावें नही, पर जीवां ना प्रांण।
हणें जिणनें भलों जांणें नही, ए नव कोटी पचखांण॥

२. ए अभय दांन दया कही, श्री जिण आगम माहि।
तो पिण दूंध उठावीयों, ज्यांनी नांम धराय॥

३. अभय दांन न ओळख्यों, दया री खबर न काय।
भोला लोकां आगळें, कूडा चोज लगाय॥

४. कहें साध वचावें जीव नें, ओरां नें कहें तूं वचाय।
भलों जांणां वचीयां थका, पूछ्ंया पलटे जाय॥

ढाल : ६

(जगत गुरू तिसला नन्दण वीर)

चतुर नर समझों ग्यांन विचार॥

१. इण साधां रा भेष में जी, बोलें एहवी वाय।
म्हें पीहर छां छ काय ना जी, जीव वचावां जाय॥

२. एहवी करें परूपणा जी, बोले बंध न होय।
पलट जाए पूछ्यां थकां जी, भोलां खबर न कोय ॥

३. पेट दुखें सों श्रावकां जी, जुदा हुवें जीव काय।
साधु आया तिण अवसरे जी, हाथ फेर्‍यां सुख थाय॥

दोहा

१. पर प्राणी को स्वयं मारे नहीं, मन से, वचन से और काया से। दूसरे से मरवाए नहीं, मन से, वचन से और काया से। मारने वाले को अच्छा समझे नहीं, मन से, वचन से और काया से। ये नव कोटि प्रत्याख्यान कहे जाते हैं।

२. यह अभयदान स्वरूप दया जिनेश्वर देव ने आगम में बताई है। फिर भी जैन कहलाने वाले लोगों ने धांधली मचा रखी है।

३. अभयदान को पहचाना नहीं। दया का कुछ पता नहीं। वे भद्र लोगों के सामने झूठा प्रपंच करते हैं।

४. कहते हैं, साधु जीव को बचाते हैं, दूसरों को कहते हैं तुम भी बचाओ और बच जाने पर उसे अच्छा समझते हैं। लेकिन पूछने पर बदल जाते हैं।

ढाल : ६

चतुर मनुष्यों! ज्ञानपूर्वक विचार करके समझें॥

१. इस साधु के वेश में कुछ लोग ऐसी बात कहते हैं—हम षट्कायिक जीवों के रक्षक हैं, क्योंकि हम जीव बचाने के लिए जाते हैं।

२. वे ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि जीव बचाने से पाप कर्म का बंध नहीं होता। पूछने पर वे पलट जाते हैं। भोले लोगों को कुछ भी पता नहीं है।

३. सौ श्रावकों का पेट दुःख रहा है। मानो कि शरीर और प्राण अलग अलग हो रहे हैं। उस समय साधु वहां आ गए। पेट पर हाथ फेरने से उनको सुख होता है।

४. साध पधास्या देख नें जी, ग्रहस्थ बोल्या वाय।
थे हाथ फेरो पेट उपरें जी, अें श्रावक जीवा जाय॥

५. जब कहें हाथ न फेरणों जी, ए साधु नें कल्पें नांहि।
कहिता जीव वचावणों तो, बोंले नें बदलो कांय॥

६. गोसाला नें वीर वचावीयो जी, तिणमें कहें छें धर्म।
सों श्रावक नही वचावीयां, त्यांरी सरधा रो निकल्यों भर्म॥

७. गोसाला रें कारणें जी, लब्द फोडी जगनाथ।
सों श्रावक मरता देंख नें, ते कांय न फेरों हाथ॥

८. धर्म कहें भगवंत नें, पोतें कांय छोडी रीत।
सों श्रावक नही वचावीयां, त्यांरी कुण मांनें परतीत॥

९. गोसाला नें वचावीयां में, धर्म कहें साख्यात।
तों सों श्रावक नहीं वचावीयां, त्यांरी विगडी सरधा वात॥

१०. इम कह्यां जाब न ऊपजें, जब कूडी करें बकवाय।
हिवें साध कहें तुम्हें सांभलों जी, गोसाला रों न्याय॥

११. साध नें लब्द न फोडणी जी, कह्यों सूत्र भगोती रे मांहि।
पिण मोह कर्म वस राग थी जी, लीयों गोसालों वचाय॥

१२. छ लेस्या हूंती जद वीर में जी, हूंता आठोई कर्म।
छदमस्थ चूका तिण समें जी, मूर्ख थापें धर्म॥

१३. छदमस्थ चूक पड्यों तकों जी, मूंढें आंणें बोल।
निरवद्य कोई म जांणजो जी, अकल हीया री खोल॥

४. साधुओं को आते देख कर गृहस्थ बोले, आप पेट पर हाथ फेर दें, नहीं तो ये श्रावक मर जाएंगे।

५. तब कहते हैं – साधुओं को हाथ फेरना नहीं कल्पता है। आप जीव बचाने के लिए कहते थे, फिर बोल कर क्यों बदल रहे हैं?।

६. गोशालक को भगवान ने बचाया, उसमें धर्म कहते हो, परन्तु सौ श्रावकों को नहीं बचाया, इससे उनकी श्रद्धा (मान्यता) का भ्रम निकल जाता है।

७. गोशालक के लिए जगत प्रभु महावीर ने लब्धि का प्रयोग किया, तो फिर सौ श्रावकों को मरते हुए देख कर तुम हाथ क्यों नहीं फेरते?।

८. भगवान को धर्म हुआ बताते हैं तो स्वयं तुमने यह रीति क्यों छोड़ी? इस प्रकार सौ श्रावकों को नहीं बचाने से उनका विश्वास कौन करेगा?।

९. गोशालक को बचाने में साक्षात् धर्म कहते हैं। यदि सौ श्रावकों को नहीं बचाते हैं तो उनकी श्रद्धा की बात बिगड़ जाती है।

१०. ऐसा कहने पर जब उत्तर नहीं आता, तब झूठी बकवास करते हैं। अब साधु गोशालक का न्याय कहते हैं। तुम ध्यान से सुनो।

११. भगवती सूत्र (शतक १६, उ. १, सूत्र २३,२४) में कहा है कि साधुओं को लब्धि नहीं फोड़ना है। पर मोह कर्म जनित राग के कारण भगवान ने गोशालक को बचाया।

१२. उस समय भगवान में छह लेश्याएं थीं। आठों ही कर्म थे। छद्मस्थ होने के कारण उस समय प्रभु चूक गए। मूर्ख लोग उसमें धर्म की स्थापना करते हैं।

१३. छद्मस्थ प्रभु चूक गए, इस बात को ही लोग मुंह पर लाते हैं, परन्तु आन्तरिक विवेक को काम में लेकर इसे कोई निरवद्य मत जानना।

१४. ज्यूं आणंद श्रावक नें घरे जी, गोतम बोल्या कूड।
पडीया छदमस्थ चूक में, सुध हुवा वीर हजूर॥

१५. इम अवस उदें मोह आवीयों, नही टाल सक्या जगनाथ।
ते तो न्याय न जांणीयों, त्यारें माहे मूल मिथ्यात॥

१६. गोसाला नें नही वचावता तों, घटतों अछेरों एक।
निश्चें होणहार टलें नही जी, समझों आंण ववेक॥

१७. गोसाला नें वचावीयो तों, वधीयों घणों मिथ्यात।
लोहीठांण कीयो भगवंत नें, वले दोय साधां री घात॥

१८. गोसाला नें वचावीयां में, धर्म जांणें ए सांम।
तो दोय साध वचावत आपणा, वले करता ओहीज कांम॥

१९. गोसाला नें वचायनें जी, धर्म जांणें जिणराय।
दोय साध न राख्या आपणा, ओ किण विध मिलसी न्याय॥

२०. जगत नें मरता देख नें जी, आडा न दीधा हाथ।
धर्म जांणें तो आगों न काढता, अें तिरण तारण जगनाथ॥

२१. ए विवरा सुध वतावीयों जी, सूत्र भगोती रे न्याय।
कुबदी करें कदागरों जी, सुबुधी रे आवें दाय॥

२२. साधां रा मुख आगलें, पंखी पडीयों माला थी आय।
कहें मेहलां ठिकांणें हाथ सूं तों, दया रहें घट माहि॥

२३. तपसी श्रावक उपाश्रे जी, काउसग दीयो ठाय।
तांगी मिरगी आय ढहि पर्यो जी, गाबड भागें जीव जाय॥

१४. जैसे आनन्द श्रावक के घर गोतम स्वामी असत्य बोले। छद्मस्थ थे अतः भूल हो गई। पर वे वीर प्रभु के सामने उपस्थित होकर शुद्ध हो गए।

१५. इस प्रकार भगवान महावीर के मोहकर्म अवश्य उदय आया था। जगत प्रभु उसे टाल नहीं सके। जिनके हृदय में मिथ्यात्व बद्धमूल है। वे इस न्याय को नहीं समझ सकते।

१६. यदि भगवान गोशालक को नहीं बचाते तो एक अछेरा (आश्चर्य) कम हो जाता। पर होनहार निश्चय टलती नहीं है। विवेक से समझें।

१७. गोशालक को बचाने से बहुत मिथ्यात्व बढ़ा। उसने भगवान के रक्तस्राव कर दिया, और दो साधुओं की घात की।

१८. यदि भगवान गोशालक को बचाने में धर्म समझते तो अपने दो साधुओं को *भी बचाते। फिर यही काम करते।*

१९. गोशालक को बचाने में भगवान धर्म समझे और अपने दो साधुओं को नहीं बचाए, यह न्याय कैसे मिलेगा?।

२०. जगत को मरते हुए देखकर भगवान ने बीच में हाथ देकर किसी को नहीं बचाया। यदि उसमें धर्म समझते तो जरा भी विलम्ब नहीं करते, क्योंकि आप तो तीर्ण तारक जगत् प्रभु थे।

२१. भगवती सूत्र के न्यायानुसार यह पूर्ण विवरण सहित बता दिया। कुबुद्धि कदाग्रह करते हैं और सुबुद्धि को यह अच्छा लगता है।

२२. साधुओं के सामने कोई पक्षी अपने घोसले से नीचे गिर पड़े। वे कहते हैं, उसे हाथ से उठाकर पुनः वहीं रखें, तब ही दिल में दया रह सकती है।

२३. तपस्वी श्रावक उपाश्रय में कायोत्सर्ग कर रहा है। चक्कर और मूर्छा के कारण गिर पड़ा। गर्दन टूटने से मरने वाला है।

२४. कोइ ग्रहस्थ आए नें कहें जी, थे मोटा मुनीराज।
थे बेंठों न कर्‌यों एहनें जी, ओं मरे छें गाबड भाज॥

२५. जब तों कहें म्हें साध छां जी, श्रावक बेठों करां केम।
मांहरें कांम कांई ग्रहस्थ सूं जी, बोंलें पाधरा एम॥

२६. श्रावक ने बेंठों करें नही, पंखी मेले माला माहि।
देखों पूरों अंधारों एहनें जी, ए चोडें भूला जाय॥

२७. पंखी माला मे मेलतां जी, संके नही मन माहि।
तो श्रावक नें बेठों कीयां में, धर्म न सरधे कांय॥

२८. इतरी समझ पडें नही, त्यांनें समकत आवें केम।
छकीया मोह मिथ्यात में, बोंलें मतवाला जेम॥

२९. कहें साध नें उंदर छुडावणों जी, मिनकी पाछें जाय।
श्रावक नें बेठों करें नही, अें किण विध मिलसी न्याय॥

३०. मुंसादिक वचावतां जी, मिनकी नें दुख थाय।
श्रावक नें बेंठां कीयां जी, नही किण रें अंतराय॥

३१. मुसादिक नें कारणें, मिनकी नें न्हसावें डराय।
श्रावक मरें मुख आगलें, बेठों न करें हाथ संभाय॥

३२. ए प्रतक्ष वात मिलें नही जी, तावड़ा छांही जेम।
श्री जिण मारग ओळख्यों, त्यारें हिरदें बेंसें केम॥

३३. लाय लागें तों ढांढा खोल नें, साधू काढें उघाड़ें दुवार।
श्रावक नें बेठों करें नही, आ सरधा करसी खुवार॥

३४. ढांढा नें तो खोलतां जी, खप घणी छें ताहि।
सों श्रावक हाथ फेर्‌यां वचें, त्यांरी नांणें काई मन माहि॥

२४. कोई गृहस्थ आकर कहे, आप बड़े मुनिराज हैं। आपने इसे उठाया नहीं। यह गर्दन दब जाने से मर रहा है।

२५. तब कहते हैं, हम तो साधु हैं। श्रावक को कैसे उठा सकते हैं? वे साफ यों कहते हैं, गृहस्थ से हमारा क्या काम है?।

२६. श्रावक को तो उठाते नहीं। पक्षी को उठाकर घोंसले में रख देते हैं। देखिए, इनके हृदय में कैसा अंधेरा है। ये स्पष्टतः भटक गए हैं।

२७. पक्षी को घोंसले में रखते समय मन में संकोच नहीं होता फिर श्रावक को उठा लेने में धर्म है, यह श्रद्धा क्यों नहीं करते?।

२८. जिन्हें इतनी भी समझ नहीं पड़ती, उनको सम्यक्त्व कैसे आएगा? जो मोह और मिथ्यात्व में छके हुए हैं, वे मतवाले लोगों की तरह बोलते हैं।

२९. कहते हैं, साधुओं को बिल्ली के पीछे जाकर चूहे को छुड़ा देना चाहिए। वे ही लोग श्रावक को नहीं उठाते, यह न्याय कैसे मिलेगा?।

३०. चूहे आदि को बचाने से तो बिल्ली को दुःख होता है। श्रावक को उठा लेने से किसी के अन्तराय नहीं होती।

३१. चूहे आदि के लिए बिल्ली को डराकर भगा देते हैं। श्रावक मुंह के सामने मर रहा है, उसे हाथ लगा कर नहीं उठाते।

३२. धूप और छाया की तरह यह बात प्रत्यक्ष नहीं मिलती। जिन्होंने जिनेश्वर देव के मार्ग को पहचान लिया, उनके हृदय में यह बात कैसे समा सकती है।

३३. आग लगे तो साधु द्वार खोल कर पशुओं को निकाल देते हैं। श्रावक को नहीं उठाते। यह श्रद्धा (मान्यता) नाश करने वाली है।

३४. पशुओं (गाय, भैंस) को खोलने में तो बहुत परिश्रम करना पड़ता है। सौ श्रावक यदि हाथ फेरने से बच जाते हैं, उनके लिए कुछ भी मन में नहीं लाते।

३५. कहें ढांढा खोल वचावसां, पिण श्रावक रें न फेरां हाथ।
एह अग्यांनी जीव री जी, कोइ मूर्ख मांनें वात॥

३६. गाडा नीचें आवें डावडों, कहे साधु नें लेंणों उठाय।
श्रावक नें बेंठों करें नही, ओं उंधों पंथ इण न्याय॥

३७. रित वरसाला नें समें जी, जीव घणा छें ताहि।
लटां गजायां नें कातरा जी, पडीया मारग माहि॥

३८. साधु बारे नीकल्या जी, जोय जोय मूंकें पाय।
लारें ढांढा देख्या आवतां, पिण साधु न लें उठाय॥

३९. जे बालक लेवें उठाय नें, यां जीवां नें न लें उठाय।
तों उणरी सरधा रें लेखें, उणरें दया नही घट माहि॥

४०. जों बालक नें लेवें उठाय नें, ओर जीव देखी ले नांहि।
इण सरधा रों करजों पारिखों, कोई रखे पडों फंद मांहि॥

३५. वे कहते हैं – गाय, भैंस आदि को बचाएंगे, परन्तु श्रावक के पेट पर हाथ नहीं फेरेंगे। ऐसे अज्ञानी व्यक्तियों की कोई मूर्ख ही बात मानता है।

३६. गाड़ी के नीचे कोई बालक आ रहा है तो कहते हैं, साधुओं को उठा लेना चाहिए। श्रावक को नहीं उठाते, इस न्याय से यह मार्ग उल्टा है।

३७. वर्षा ऋतु के समय जीव अधिक होते हैं। लट, गजाईयां और कातरे मार्ग में पड़े रहते हैं।

३८. साधु बाहर निकले, देख देख कर पैर रखते हैं। पीछे से पशु (गाय, भैंस) आ रहे हैं, परन्तु साधु उन जीवों को नहीं उठाते।

३९. यदि बालक को उठा लेते हैं और इन जीवों को नहीं उठाते तो उनकी मान्यता के अनुसार उनके दिल में दया नहीं है।

४०. जो बालक को उठा लेते हैं, अन्य जीवों को देखकर नहीं उठाते। इस श्रद्धा की परीक्षा करनी चाहिए। ऐसा न हो कि कोई इस फंदे में फंस जाए।

दूहा

१. मछ गलागल लोक में, सबला ते निबलां खाय।
तिणमें धर्म परूपीयों, कुगुरां कुब्द चलाय॥

२. मूला जमीकंद खवारीयां, कहें छें मिश्र धर्म।
आ सरधा पाखंड्या री आदर्या, जाडा बंधसी कर्म॥

३. मूला खवायां पांणी पावीयां, ओर सचितादिक अनेक।
खाधा खवायां भलो जांणीयां, ए तीनां री विध एक॥

४. ए तो न्याय न जांणीयों, उझड पडीया अजांण।
करण जोग विगटावीया, अें मिथ्यादिष्टी अेंलांण॥

५. कुहेत लगाए लोक नें, हंसा धर्म भाखंत।
हिवें सात दिष्टंत साधु कहे, ते सुणजो कर खंत॥

६. मूला पांणी अग्न नो, चोथों हूका रो जांण।
तस जीव कलेवर तस तणों, सात्मों मिनख वखांण॥

७. त्यांमें तीन दिष्टंत करला कह्या, जांणें अग्यांनी विरूध।
समदिष्टी जिण धर्म ओळख्यों, न्याय सूं जांणें सुध॥

८. केशी कुमर दिष्टंत करडा कह्या, तो छोडी प्रदेसी रूढ।
न्याय मेले हुवो समकती, झगडो झालें ते मूढ॥

दोहा

१. लोक में मच्छ गलागल लग रही है। सबल जीव निर्बल जीव को खा रहे हैं। कुगुरू ने कुबुद्धि के द्वारा उसमें धर्म प्ररूपित किया है।

२. मूली, जमींकद खिलानें में मिश्र धर्म कहते हैं। यह श्रद्धा पाखंडी लोगों की है। इसे स्वीकार करने से सघन कर्म बंधेगें।

३. मूला खिलाना, पानी पिलाना और नाना प्रकार के सचित्त खाना, खिलाना एवं इसका अनुमोदन करना इन तीनों की एक ही विधि है।

४. उन अज्ञानियों ने न्याय नहीं समझा। वे उत्पथ में पड़ गए हैं। करण और योगों का विघटन किया है। ये मिथ्यादृष्टि होने के लक्षण हैं।

५. ये कुहेतु लगा कर लोगों को हिंसा में धर्म बता रहे हैं। अब 'साधु' उस पर सात दृष्टान्त कह रहे हैं। उन्हें शांति से सुनें।

६. मूला, पानी, अग्नि, हुक्का, त्रस जीव, त्रस कलेवर (शरीर) और मनुष्य—ये सात दृष्टान्त हैं।

७. इन सात दृष्टान्तों में तीन दृष्टान्त बहुत कड़े हैं। अज्ञानी उनको विपरीत समझते हैं। सम्यग् दृष्टि लोगों ने जिन धर्म को पहचाना है। वे उसे न्यायपूर्वक शुद्ध मानते हैं।

८. केशी स्वामी ने कड़े दृष्टान्त कहे तो प्रदेशी राजा ने अपनी रूढ़ि-पकड़ छोड़ दी। न्याय को समझकर वह सम्यक्त्वी हो गया। वे मूर्ख होते हैं, जो झगड़ा करते हैं।

९. जिणरी बुध छें निरमली, ते लेसी न्याय विचार।
सुणें भारीकर्मा जीवडा, तो लडवा नें छें त्यार॥

१०. ए सात दिष्टंत धुर सूं चलें, आगें घणों विस्तार।
भिन भिन भवियण सांभलों, अंतर आंख उघाड॥

ढाल : ७

(लय - वीर कहे भवियण सुणो......)

भवीयण जिण धर्म ओळखो॥

१. मूला खवायां मिश्र कहें, ते लगावें हो खोटा दिसटंत एह।
कहें पाप लागों मूलां तणों, धर्म हूवो हो खाधां वचीया एह।

२. कहें कूआ बाव खणावीयां, हंसा हूइ हो तिण रा लागा कर्म।
लोक पीयें कुसले रह्यां, साता पांमी हो तिणरो हूओ धर्म॥

३. इम कहें मिश्र परूपतां, नही संके हो करता बकवाय।
इण सरधा रो प्रश्न पूछीयां, जाब नावें हो जब लोक लगाय॥

४. हिवे सात दिष्टंत री थापना, त्यांरी सुणजों हो विवरा सुध वात।
निरणो करजों घट भिंतरे, बुधवंता हो छोड नें पखपात॥

५. सो मिनखां नें मरता राखीया, मूला गाजर हो जमीकंद खवाय।
वले कुसले राख्या सो मांनवी, काचों पांणी हों त्यांनें अणगल पाय॥

६. पोह माह महीनें ठारी परें, तिण कालें हों वाजें शीतल वाय।
अचेत पड्या सों मांनवी, मरता राख्या हो त्यांनें अग्न लगाय॥

९. जिनकी बुद्धि निर्मल है, वे न्यायपूर्वक सोचेंगे। भारीकर्मा जीव इसे सुनकर लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं।

१०. ये सात दृष्टान्त प्रारंभ से चल रहे हैं। आगे इनका बहुत विस्तार है। भव्यजनों? अन्तर की आंख खोल कर भिन्न-भिन्न प्रकार से सुनें।

ढाल : ७

भव्यजनों! जिन धर्म को पहचानें।

१. मूला खिलाने में मिश्र धर्म कहते हैं। उसके लिए यह गलत दृष्टान्त देते हैं कि मूला खाने का पाप लगा, परन्तु मूला खाने से जो जीव बचे, वह धर्म हुआ।

२. कहते हैं-कुआं, बावड़ी खुदाने में जो हिंसा होती है, वह पाप है, उससे कर्म बंध हुआ। परन्तु लोग पानी पीकर सकुशल रहें, उन्हें साता हुई, उसका धर्म हुआ।

३. इस प्रकार मिश्र धर्म की प्ररूपणा करते हुए जरा भी संकोच नहीं करते, बल्कि बकवास करते हैं। इस श्रद्धा (मान्यता) के विषय में पूछने पर उत्तर नहीं आता तब लोगों को भड़काते हैं।

४. अब सात दृष्टान्तों की स्थापना की जाती है। उनका विस्तृत वर्णन सुनें। बुद्धिमानों! पक्षपात को छोड़ कर हृदय से निर्णय करना चाहिए।

५. किसी ने सौ मनुष्यों को मूला, गाजर, जमीकंद खिलाकर मरने से बचाया और किसी दूसरे ने सौ मनुष्यों को सचित्त और अनछाना पानी पिलाकर सकुशल रखा।

६. पौष, माघ के महीने में ठंडी पड़ रही है, उस समय शीतल हवाएं चल रही हैं। सौ आदमी मूर्च्छित (ठिठुरे) पड़े हैं, उनको अग्नि जलाकर मरने से बचाया।

७. पेट दुखें तलफल करें, जीव दोरा हो करें हाय विराय।
साता वपराइ सों जणा, मरता राख्या हो त्यांनें होको पाय॥

८. सों जणा दुरभख काल में, अन विनां हो मरें उजाड मांहि।
कोइ एक मारें तसकाय नें, सों जणा नें हो मरता राख्या जीमाय॥

९. किण हीक कालें अन विना, सों जणा रा हो जुदा हुवें जीव काय।
सहजें कलेवर मूओं पड्यों, कुसले राख्या हो त्यांनें एह खवाय॥

१०. मरता देखी सों रोगला, ममाइ विण हो तें तो साजा न थाय।
कोइ ममाइ कर एक मिनख री, सों जणां रे हो साता कीधी वचाय।

११. जमीकंद खवायां पांणी पावीयां, त्यांमें थापें हो धर्म नें पाप दोय।
तों अगन लगायां होको पावीयां, इत्यादिक हो सगलें मिश्र होय॥

१२. जो धर्म सरधें वचीया तकों, हंस्या तिणरा हो लागा जांणें कर्म।
तो सातोइ सारिखा लेखवे, कहि देंणों हो सगलें पाप नें धर्म॥

१३. जों सातां में मिश्र कहे नही, तों किम आवें हो इण बोल्या री परतीत।
आप थापें आप उथपें, तो कुण मांनें हो आ सरधा विपरीत॥

१४. जों सातांइ में मिश्र कहें, तों नहीं लागें हो गमती लोकां नें वात।
मिलती कह्यां विण तेहनी, कुण करें हो कूडां री पक्षपात॥

१५. एक दोय बोलां में मिश्र कहे, सगलां में हो कहितां लाजें मूढ।
एहवो उलटों पंथ झालीयों, त्यांरे केडें हो तांणें मूर्ख रूढ॥

७. सौ आदमियों का पेट दर्द कर रहा है। वे तड़फ रहे हैं। जीव मिचला रहा है। सबने हाय-तोबा मचा रखा है। उन सौ व्यक्तियों को हुक्का पिलाकर साता पहुंचायी, मरने से बचाया।

८. सौ व्यक्ति जंगल में दुर्भिक्ष के कारण अन्न बिना मर रहे हैं। एक व्यक्ति ने त्रसकाय (जानवर) को मार कर उन्हें खिलाया, सौ व्यक्तियों को मरने से बचाया।

९. किसी समय सौ व्यक्ति अन्न के बिना मर रहे हैं। किसी ने सहज प्राप्त उस मृत कलेवर को खिलाकर उन्हें सकुशल रखा।

१०. सौ रोगियों को मरते हुए देखा। जो ममाई के बिना स्वस्थ नहीं हो सकते। किसी ने एक मनुष्य की ममाई (विशेष चिकित्सा) कर सौ मनुष्यों को बचाया। उन्हें साता पहुंचायी।

११. यदि जमीकंद खिलानें तथा पानी पिलाने में पाप और धर्म दोनों की स्थापना करते हैं तो अग्नि लगाने और हुक्का पिलाने जैसे सभी कार्यों में मिश्र धर्म होना चाहिए।

१२. यदि जो बचे उसमें धर्म है और जो हिंसा हुई उसमें कर्म बंध हुआ तो सातों ही दृष्टान्तों को समान रूप से समझकर पाप और धर्म कह देना चाहिए।

१३. यदि सातों में मिश्रधर्म नहीं कहते तो उनके कथन का विश्वास कैसे होगा? स्वयं ही सिद्धान्त की स्थापना करते हैं और स्वयं ही उसे उठा देते हैं। इस विपरीत श्रद्धा को कौन मानेगा?।

१४. यदि सातों ही प्रसंगों में मिश्र कहे तो लोगों को बात प्रिय नहीं लगती और मिलती बात कहे बिना उन झूठों का पक्षपात कौन करे?।

१५. एक या दो प्रसंगों में मिश्र कहते हैं। शेष सबमें मिश्र कहते हुए मूर्ख लज्जा का अनुभव करते हैं। ऐसा विपरीत मार्ग उन्होंने पकड़ लिया है। उनके पीछे मूर्ख लोग दृढ़ता से बात को तानते हैं।

१६. सों सों मिनख सगलें वच्या, थोडी घणी हों सगलें हुइ घात।
जो धर्म बरोबर न लेखवें, तों उथपगी हो मूला पांणी री वात॥

१७. वात उथपती जांण नें, कदा कहिदे हो सगलें पाप नें धर्म।
पिण समदिष्टी सरधें नही, ए तों काढ्यों हो खोटी सरधा रो भर्म॥

१८. असंजती रों मरणों जीवणों, वंछा कीधां हो निश्चें राग नें धेख।
ओ धर्म नही जिण भाखीयों, सांसों हुवें तो हो अंग उपंग देख॥

१९. काच तणा देखी मिणकला, अण समझ्या हो जांणे रत्न अमोल।
ते निजर पड्या सराफ री, कर दीधो हो त्यांरों कोड्यां मोल॥

२०. मूला खवायां मिश्र कहें, आ सरधा हो काच मणी समांण।
तों पिण झाली रत्न अमोल ज्यूं, नाय न सूझें हो चाला कर्मां रा जांण॥

२१. जीव मारे झूठ बोल नें, चोरी करनें हो पर जीव वचाय।
वले करे अकार्य एहवा, मरता राख्या हो मेथुन सेवाय॥

२२. धन दे राखें पर प्रांण नें, क्रोधादिक हो अठारें पाप सेवाय।
ए सावद्य कांम पोंतें करी, पर जीवां नें हो मरता राखें ताहि॥

२३. जों हिंसा करे जीव राखीयां, तिणमें होसी हो धर्म नें पाप दोय।
तों इम अठारेंइ जांणजों, ए चरचा में हो विरलो समझें कोय॥

२४. जों एकण में मिश्र कहे, सतरां में हो भाषा बोलें ओर।
उंधी सरधा रों न्याय मिलें नही, जब उलटी हो कर उठें झोर॥

१६. सौ सौ व्यक्ति सभी प्रसंगों में बचे हैं। कम ज्यादा हिंसा भी सब जगह हुई है। सब प्रसंगों में यदि धर्म बराबर नहीं बताते तो मूले और पानी की बात भी कट जाती है।

१७. बात जाती हुई देख कर कभी कह देते हैं कि सभी स्थानों में (सातों में) पाप और धर्म दोनों है, किन्तु सम्यग् दृष्टि इस पर विश्वास नहीं करते। उन्होंने तो असत्य श्रद्धा का भ्रम निकाल दिया।

१८. असंयति जीव के जीने और मरने की वांछा करना निश्चय ही राग और द्वेष है। इसे जिनेश्वर देव ने धर्म नहीं बताया। यदि संशय हो तो अंग और उपांग सूत्रों को देख लो।

१९. काच के मणकलों को देख कर अज्ञानी उसे बहुमूल्य रत्न समझता है। जब वह जौहरी की नजर में आता है, तब उसका मूल्य कोडियों में हो जाता है।

२०. मूला खिलाने में जो मिश्र धर्म कहते हैं, वह श्रद्धा काच-मणि के बराबर है। तथापि वह श्रद्धा बहुमूल्य रत्न की तरह धारण की गयी है। यह कर्मों का प्रभाव है, जिससे न्याय नहीं दीखता।

२१. जो जीव हिंसा कर, झूठ बोल कर, चोरी कर और मैथुन-सेवन जैसा अकार्य कर मरते जीवों को बचाता है।

२२. धन देकर, क्रोध आदि अठारह पापों का सेवन कराके तथा स्वयं इन पापों का सेवन करके दूसरे जीवों को मरने से बचाता है।

२३. हिंसा करके जीवों को बचाने में यदि पाप और धर्म दोनों होते हैं तो अठारह पापों के विषय में भी यही समझना चाहिए। पर इस चर्चा को कोई बिरला व्यक्ति ही समझ सकता है।

२४. जो एक पाप में मिश्र कहते हैं और सतरह प्रकार के पाप कार्य में दूसरी भाषा बोलते हैं। इस विपरीत मान्यता का न्याय नहीं मिलता। तब उल्टा झगड़ा करने लग जाते हैं।

२५. जीव मारें जीव राखणा, सूतर में हो नही भगवंत वेंण।
उधो पंथ कुगुरे चलावीयों, सुध न सूझें हो फूटा अंतर नेंण॥

२६. कोइ जीवता मिनख तिर्यंच ना, होम करें हो जुध जीपण सगरांम।
एक तों ओं पाप मोटको, जीव होम्या हो बीजों सावद्य कांम॥

२७. कोई नाहर कसाइ मार नें, मरता राख्या हो घणा जीव अनेक।
जों गिणें दोयां नें सारिखा, त्यांरी विगडी हो सरधा वात ववेक॥

२८. पेंहिला कहिता जीव बचावणा, तिण लेखें हो बोले सुध न काय।
जीव वचीयां रो धर्म गिणें नहीं, खिण थापें हो खिण में फिर जाय॥

२९. देवल धजा तेहनी परें, फिरता बोलें हो न रहें एकण ठांम।
त्यांनें पाखंडी जिण कह्या, झगरो झाल्यों हो नही चरचा रों कांम॥

३०. जो एकण नें अधर्म कहें, तो दूजा नें हो कहिणों धर्म नें पाप।
ए लेखो कीयां तो लड पडें, त्यांरें घट में हो खोटी सरधा री थाप॥

३१. वले सरणों लेइ श्रेणक तणों, सावद्य बोलें हों तिणरी खबर न काय।
जोरी दावें पेंला नें वरजीया, तिण माहे जो जिण धर्म बत्ताय॥

३२. कहें श्रेणक पडहो वजावीयो, हणों मती हो फेरी नगरी में आंण।
तिण मोक्ष हेते धर्म जांणीयों, एहवों भाखे हो मिथ्यादिष्टि अजांण॥

२५. जीव मार कर जीवों को बचाना ऐसा सूत्र में कहीं भी भगवान का वचन नहीं है। यह उल्टा मार्ग कुगुरूओं ने चलाया है। अन्तरदृष्टि नष्ट हो ज़ाने के कारण उन्हें शुद्ध मार्ग दिखाई नहीं देता।

२६. कोई युद्ध में विजय पाने के लिए जीवित मनुष्य और तिर्यञ्च का होम करते हैं। एक तो युद्ध स्वयं बड़ा पाप है, फिर जीवों का होम करने से दूसरा पाप-कार्य और हो जाता है।

२७. किसी ने व्याघ्र और कसाई को मार कर अनेक जीवों को मरने से बचा लिया। यदि दोनों को एक जैसा ही माने तो उनकी श्रद्धा और बात का विवेक विकृत हो जाता है।

२८. पहले कहते थे, जीवों को बचाना चाहिए। अब उस बात पर स्थिर क्यों नहीं रहते? जीव के बचने में धर्म नहीं मानते। एक क्षण में धर्म की स्थापना करते हैं, और दूसरे क्षण में बदल जाते हैं।

२९. मन्दिर की ध्वजा की तरह बदलते हुए बोलते हैं। एक जगह स्थिर नहीं रहते। उन्हें जिनेश्वरदेव ने पाखंडी कहा है। उनका काम झगड़ा करना है, चर्चा करना नहीं।

३०. यदि एक कार्य (पद्य २६) को अधर्म कहे तो दूसरे (पद्य २७) को धर्म और पाप (मिश्र) कहना चाहिए। इसका न्याय मिलाने पर तो वे लड़ पड़ते हैं। क्योंकि उनके हृदय में विपरीत श्रद्धा की स्थापना है।

३१. श्रेणिक राजा का आश्रय लेकर सावद्य बात बोलते हैं, इसकी उन्हें कोई जानकारी नहीं है। बलपूर्वक किसी को पाप करने से रोक देने में जिन धर्म बताते हैं।

३२. कहते हैं कि श्रेणिक राजा ने नगरी में पड़ह बजवाया-किसी को मत मारो। यह नगरी में उद्घोषणा करा दी। यह सब मोक्ष धर्म के लिए किया था, ऐसा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहते हैं।

३३. कहें राय श्रेणक तो समकती, धर्म विना हो किम करसी ए कांम।
इम कहि कहि भोला लोक नें, फंद में न्हाखें हो श्रेणक रो ले नांम॥

३४. श्रेणक नें करें मुख आगलें, आमी साहमीं हो मांडें खांचातांण।
आप छांदे उटंका मेलतां, कुण पालें हो श्री जिणवर आंण॥

३५. समदिष्टी तणों कोइ नांम ले, भरमा हो अणसमझ्या अजांण।
तो सकंद्र समदिष्टी देवता, जिण भगता हो एका अवतारी जांण॥

३६. ते भीड आए कोणक तणी, झूध कीधा हो तिण सावद्य जांण।
एक कोड असी लाख उपरें, मिनखां रो हो कर दीधो घमसांण॥

३७. श्रेणकराय फडहो फेरावीयों, ए तों जांणो हो मोटा राजा री रीत।
भगवंत न सरायों तेहनें, तो किम आवें हो तिणरी परतीत॥

३८. फडहो फेर्यों हणों मती, इतरी छें हो सूत्र में वात।
कोइ धर्म कहें श्रेणक भणी, ते तों बोलें हो चोडें झूठ मिथ्यात॥

३९. लोकां सूं मिलती बात जांण नें, कर रह्या हो कूडी बकवाय।
मिश्र कहें ते पिण अटकलां, साचा हुवें तो हो सूत्र में दे वताय॥

४०. ए तों पुत्रादिक जायां परणीयां, ओछवादिक हो ओरी सीतला जांण।
एहवो कारण कोई उपनें, श्रेणक राजा हो फेरी नगरी में आंण।

४१. ते रूकीया नही कर्म आवता, नही कटीया हो तिणरा आगला कर्म।
नरक जातो रह्यों नही, न सीखायो हों तिणनें भगवंत धर्म॥

३३. कहते हैं, राजा श्रेणिक तो सम्यक्त्वी था। धर्म नहीं होता तो वह ऐसा काम कैसे करता? यह कह कह करके भोले लोगों को राजा श्रेणिक का नाम लेकर जाल में डालते हैं।

३४. श्रेणिक का नाम सामने रखकर खींचातान खड़ी करते हैं। मनचाही गप्पें हांकते हैं। जिनेश्वर देव की आज्ञा कौन पालता है?।

३५-३६. कुछ लोग श्रेणिक समदृष्टि था, यह कहकर अनजान लोगों को भरमाते हैं। यदि ऐसा है तो सम्यक्दृष्टि शक्रेन्द्र, जो परम जिनभक्त और एकाभवतारी था, वह कोणिक को सहयोग देने आया। सावद्य समझते हुए भी उसने युद्ध किया और एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्यों का उसने संहार किया।

३७. राजा श्रेणिक ने ढिंढोरा पिटवाया, वह तो बड़े राजाओं की रीति थी, किन्तु भगवान महावीर ने इस कार्य की प्रशंसा नहीं की, तो ऐसा कहने वालों का विश्वास कैसे हो?।

३८. जीव हिंसा मत करो यह ढिंढोरा पिटवाया, आगम में केवल इतना ही कथन है। श्रेणिक राजा को धर्म हुआ—यह कहने वाले तो प्रत्यक्ष ही झूठ बोलते हैं।

३९. लोकमत के अनुकूल समझ कर इस बात पर व्यर्थ ही विवाद कर रहे हैं। मिश्र धर्म भी अटकते हुए कह रहे हैं। यदि वे लोग सत्य होते तो सूत्र का आधार बता देते।

४० पुत्र आदि के जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, ओरी-चेचक आदि के उत्सव पर तथा ऐसे अन्य किसी कारण के उत्पन्न होने पर राजा श्रेणिक ने नगरी में ढिंढ़ोरा पिटवाया होगा।

४१. उस कार्य में राजा श्रेणिक के आने वाले कर्म रूके नहीं और न पूर्व संचित कर्मों का नाश हुआ। वह नरक जाते हुए भी रूका नहीं और न भगवान महावीर ने राजा श्रेणिक को ऐसा धर्म सिखाया।

४२. भगवंते मोटा मोटा राजवी, प्रतिबोध्या हो आंण्या मारग ठाय।
साध श्रावक धर्म वतावीयों, न सीखायो हो पडहो फेरणो ताहि।।

४३. तो श्रेणक सीख्यो किण आगलें, भगवंत हों पूछ्यां साझें मूंन।
वले न जणावें आंमना, आज्ञा विण हो करणी जांणों जबूंन॥

४४. *वासुदेव चक्रवत मोटका, त्यांरी वरती हो तीन छ खंड में आंण।*
जो पडहो फेर्यां मुगत मिलें, तो कुण काढें हो आघो जिण धर्म जांण॥

४५. कोउ रांगण दीवादिक सिनांन नें, विसन साते हो विना मन दे छुडाय।
जों इण विध जिण धर्म नीपजें, तो छ खंड में हो वरजें आंण फेराय॥

४६. फल फूल अनंत काय नें, हिंसादिक हो अठारें पाप नें जांण।
जोडी दावें पेंला नें मनें कीयां, धर्म हुवें तो हो फेरें छ खंड में आंण॥

४७. तीथंकर घर में थकां, त्यांनें हुंता हो तीन ग्यांन विशेख।
हाल हुकम थो लोक में, त्यां नही फेर्यों हो पडहो सूतर देख॥

४८. बलदेवादिक मोटा राजवी, घर छोडी हो कीया पाप पचखांण।
श्रेणक जिम पडहो न फेरीयों, जोरी दावें हों नही वरताइ आंण॥

४९. ब्रह्मदत चक्रवत तेहनें, चित मुनी हो प्रतिबोधण आय।
साध श्रावक रो धर्म कह्यों, पडहा री हो न कही आंमना काय॥

४२. भगवान महावीर ने बड़े-बड़े राजाओं को प्रतिबोध देकर जिनमार्ग में स्थिर किया। भगवान ने उनको साधु एवं श्रावक का धर्म बताया, किन्तु उनको पड़ह फिरवाना नहीं सिखाया।

४३. तब श्रेणिक ने यह किससे सीखा? भगवान तो इस विषय में पूछने पर मौन रहते हैं। अपना अभिप्राय भी प्रगट नहीं करते। आज्ञा बिना की करणी (क्रिया) को निकृष्ट जानें।

४४. वासुदेव-चक्रवर्ती शक्तिशाली पुरुष होते हैं। उनकी क्रमशः तीन खण्ड़ों में और छह खण्ड़ों में आज्ञा चलती है। यदि ढ़िढ़ोरा पिटवाने से ही मुक्ति मिलती तो जैन धर्म का जानकार कौन व्यक्ति इस कार्य में विलम्ब करता?।

४५. चमड़ा रंगना, दीप जलाना, स्नान करना और सातों व्यसन बिना मन के बलपूर्वक किसी से छुड़वाना, यदि इस विधि से जिन धर्म होता तो चक्रवर्ती छह खण्ड़ों में निषेधाज्ञा प्रचारित करा देते।

४६. यदि बलपूर्वक छुड़ाने में धर्म होता तो फल-फूल, अनन्तकाय वनस्पति की हिंसा आदि अठारह पापों के सेवन की निषेधाज्ञा छह खण्डों में प्रचारित करवाई जा सकती थी।

४७. तीर्थंकर जब गृहस्थावास में थे तब उनके पास तीन ज्ञान थे, संसार में उनका आदेश-निर्देश चलता था। उन्होंने कभी पड़ह नहीं फिरवाया। सूत्रों को देख लो।

४८. बलदेव आदि बड़े राजाओं ने घर छोड़ कर पाप-प्रत्याख्यान किया, परन्तु श्रेणिक की तरह न पड़ह फिरवाया और न बलपूर्वक निषेधाज्ञा लागू की।

४९. ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को चित्तमुनि प्रतिबोध देने आए। उसे साधु एवं श्रावक का धर्म बताया, परन्तु पड़ह फेरने का कोई संकेत नहीं किया।

५०. वीसां भेदां रुकें कर्म आवता, बारें भेदां हो कटें आगला कर्म।
ए मोक्ष रा मारग पाधरा, छोडा मेला हो सगला पाखंड धर्म॥

५१. दोय वेस्या कसाइवाडें गइ, करता देख्या हो जीवां रा संघार।
दोनूं जण्यां मतो करी, मरता राख्या हो जीव एक हजार॥

५२. एकण गेंहणों देइ आपणों, तिण छुडाया हो जीव एक हजार।
दूजी छुडाया इण विधें, एकां दोयां हो चोथों आश्रव सेवार॥

५३. एकण नें पाखंडी मिश्र कहें, तो दूजी नें हो पाप किण विध होय।
जीव बरोबर वचावीया, फेर पडीयों हों ते तो पाप में जोय॥

५४. एकण सेवायो आश्रव पांचमो, तो उण दूजी हो चोथो आश्रव सेवाय।
फेर पड्यों तों इण पाप में, धर्म होसी हो ते तों सरीखों थाय॥

५५. एकण नें धर्म कहिता लाजें नही, दूजोडी नें हो कहितां आवें संक।
जब लोक सूं करें लगावणी, एहवों जांणो हो चोडें कुगुरां रा डंक॥

५६. एक वेस्या सावद्य कांमों करी, सहंस नांणो हो ले वली घर मांहि।
दूजी किरतब करी आपणा, मरता राख्या हो सहंस जीव छोडाय॥

५७. धन आण्यो खोटा किरतब करी, तिणरें लागा हो दोनूं विध कर्म।
दूजी जीव छोडाया तेहनें, उण लेखें हो हुवो पाप नें धर्म॥

५८. पाप गिणें मइथुन में, जीव वचीयां हो तिणरों न गिणें धर्म।
पोत्तें सरधा री खबर पोंतें नही, तांणे तांणे हो बांधे भारी कर्म॥

५०. संवर के बीस भेदों से आते हुए कर्म रूकते हैं और निर्जरा के बारह भेदों से संचित कर्म टूटते हैं। ये दोनों सीधे मोक्ष के मार्ग हैं। दूसरी सारी खटपट पाखण्ड धर्म है।

५१. दो वेश्याएं कसाईखाने में गई। जीवों का संहार होते हुए देखा। दोनों वेश्याओं ने परस्पर विचार करके एक-एक हजार प्राणियों को मरते हुए बचाया।

५२. एक ने अपने आभूषण देकर हजार प्राणियों को बचाया। दूसरी ने एक या दो पुरूषों के साथ चतुर्थ आश्रव-अब्रह्मचर्य का सेवन करके हजार प्राणियों को बचाया।

५३. पाखण्डी लोग एक को मिश्र धर्म कहते हैं तो दूसरी को केवल पाप कैसे हुआ? जीव तो दोनों ने बराबर बचाए हैं। अन्तर केवल पाप के प्रकार में रहा है।

५४. एक ने पांचवें आश्रव-परिग्रह का सेवन कराया और दूसरी ने चौथे आश्रव अब्रह्मचर्य का सेवन कराया। अन्तर केवल पाप की संख्या चोथे और पांचवें में पड़ा। धर्म यदि होगा तो दोनों को समान ही होगा।

५५. एक को धर्म कहने में उन्हें संकोच नहीं होता। दूसरी को धर्म कहने में संकोच करते हैं। जब लोगों को बहकाते हैं, तब ऐसा समझो, यह कुगुरूजनों के द्वारा साक्षात् सांप की तरह दंश लगाता है।

५६. एक वेश्या पापकारी कार्य करके हजार रूपये लेकर अपने घर में आई, दूसरी ने वेश्यावृत्ति से प्राप्त धन से मरते हुए हजार प्राणियों को बचाया।

५७. जिसने पापात्मक कार्य करके हजार रूपये कमाए, उसके दोनों तरफ से कर्म बंध हुआ। दूसरी ने पापात्मक कार्य कर जीव छुड़वाए—उनके मतानुसार उसमें पाप और धर्म दोनों हुए।

५८. अब्रह्मचर्य के सेवन में पाप मानते हैं, परन्तु उससे जो जीव बचे उसमें धर्म नहीं मानते। स्वयं की श्रद्धा का पता स्वयं को नहीं है। व्यर्थ की खींचतान से सघन कर्मों का बंध कर रहे हैं।

५९. ए प्रश्नां रो जाब न उपजें, चरचा में हो अटकें ठांम ठांम।
तो पिण निरणों करें नही, बक उठें हो जीवां रो ले नांम॥

६०. जीव जीवें काल अनाद रो, मरें तेहनी हो परजा पलटी जांण।
संवर निरजरा तो न्यारा कह्या, ते ले जावें हो जीव नें निरवांण॥

६१. प्रथवी पांणी अग्न वाय नें, वनसपती हो छठी तसकाय।
मोल ले ले छुडावें तेहनें, धर्म होसी हों ते तों सगलां नें थाय॥

६२. तसकाय छुडायां धर्म कहें, पांच काय में हो नही बोले निसंक।
भर्म में पाड्या लोक नें, त्यां लगाया हो मिथ्यात रा डंक॥

६३. त्रिविधे त्रिविधे छकाय हणवी नही, एहवा छें हो भगवंत रा वाय।
मोल लीयां कर्म कहें मोख रो, ए फंद मांड्यो हो कुगुरां कुबद चलाय॥

६४. देव गुर धर्म रतन तीनूं, सुतर में हो जिण भाख्या अमोल।
ए मोल लीयां नही नीपजें, साची सरधो हो आख हीया री खोल॥

६५. ग्यांन दरसण चारित नें तप, मोक्ष जावा हो मारग छें च्यार।
त्यांनें भिन-भिन ओळखे आदरें, सुध पालें हो ते पांमें भव पार॥

५९. उन्हें इन प्रश्नों का उत्तर नहीं आता। चर्चा करते समय जगह-जगह अटकते हैं। तो भी निर्णय नहीं करते। जीव रक्षा का नाम लेकर बकवास करते हैं।

६०. जीव अनादि काल से जी रहा है। जो मरता है वह उसकी पर्याय (अवस्था) बदलती है। संवर एवं निर्जरा की बात तो अलग है। वे तो आत्मा को मोक्ष ले जाने वाले हैं।

६१. पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय इन छह प्रकार के जीवों को मूल्य पर खरीद कर बचाने में यदि धर्म है तो सभी प्रकार से बचाने में धर्म होगा।

६२. केवल त्रसकाय बचाने में धर्म कहते हैं। शेष पांच काय को बचाने में नि:संकोच नहीं कहते। उन्होंने लोगों को भ्रम में डाला है और उनके मिथ्यात्व का डंक मारा है।

६३. तीन करण एवं तीन योग से छह काया के जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिए, यह भगवान का वचन है। मोल लेकर जीवों को बचाने में जो मोक्ष धर्म कहते हैं, वह कुगुरूओं की कुबुद्धि का मायाजाल है।

६४. देव, गुरू और धर्म इन तीन रत्नों को सूत्र में भगवान ने अमूल्य कहा है। ये तीनों मोल से निष्पन्न नहीं होते। अन्तर की आंखें खोलकर सच्ची श्रद्धा प्राप्त करनी चाहिए।

६५. मोक्ष जाने के चार मार्ग है- 'ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप। इन चारों को विविध प्रकार से पहचान कर स्वीकार करे। शुद्ध प्रकार से पालन करने वाला इस भव-सागर से पार उतर जाता है।

दूहा

१. दया दया सहूको कहें, ते दया धर्म छें ठीक।
दया ओळख नें पाळसी, त्यांनें मुगत नजीक॥

२. आ दया तों पहिलो व्रत छें, साध श्रावक नो धर्म।
पाप रुकें तिणसूं आवता, नवा न लागें कर्म॥

३. छ काय हणें हणावें नही, हणीयां भलो न जांणें ताहि।
मन वचन काया करी, आ दया कही जिणराय॥

४. आ दया चोखें चित पालीयां, तिरें घोर रुदर संसार।
वले आहीज दया परूपनें, भव जीवां उतारें पार॥

५. एक नांम दया लोकीक री, तिणरा भेद अनेक।
तिणमें भेषधारी भूला घणा, ते सुणजों आंण ववेक॥

ढाल : ८

(लय - आ अणुकंपा जिण आज्ञा में.....)

भेषधर नें भूला रो निरणों कीजों॥

१. द्रवे लाय लागी भावे लाय लागी, द्रवे कूवो नें भावे कूवो।
ए भेद न जांणें मूंढ मिथ्याती, संसार नें मुगत रो मारग जूवो॥

दोहा

१. दया-दया सभी कहते हैं वह दया धर्म सही है। जो दया की पहचान करके उसका पालन करेंगे, उनके मुक्ति निकट होगी।

२. यह दया (अहिंसा) साधु और श्रावक का पहला व्रत धर्म है। उससे आने वाले कर्म रुकते हैं और नए कर्मों का बंधन नहीं होता।

३. मन, वचन और काया से षट्कायिक जीवों की हिंसा न करे, न कराए और न करने वालों का अनुमोदन करे। इसे जिनेश्वर देव ने दया कहा है।

४. जो इस प्रकार की दया का शुद्ध हृदय से पालन करता है, वह भयंकर, विकराल संसार को तर जाता है और इसी दया की प्ररूपणा करके भव्य जीवों को संसार-सिंधु से पार उतार देता है।

५. एक लौकिक दया है उसके अनेक भेद हैं। उस दया में अनेक वेशधारी साधु भ्रमित हो रहे हैं। उसे विवेक पूर्वक सुनें।

ढाल : ८

साधु का वेश धारण करके जो भूल गए हैं उनका निर्णय करें।

१. द्रव्य लाय (अग्नि) लगी है और भाव लाय (रागद्वेषमय) लगी है। द्रव्य कुआ (मिट्टी से बना) है और भाव कुआ (यह संसार) है। मूर्ख मिथ्यात्वी इस भेद को नहीं जानते। संसार और मोक्ष का मार्ग तो अलग-अलग है।

२. कोइ द्रवे लाय सूं बळतों राखें, दवे कूवे पडता नें झाल वचायों।
ओं तो उपगार कीयो इण भव रों, जे ववेक विकल त्यांनें खबर न कायो॥

३. घट में ग्यांन घाले नें पाप पचखावं, तिण पडतो राख्यो भव कूआ माह्यां।
भावे लाय सूं बळता नें काढें रक्षेसर, ते पिण गेंहलां भेद न पायो॥

४. सूंने चित सूतर वांचे मिथ्याती, त्यांरें द्रव नें भाव रा नही निवेरा।
पिरवार सहीत कुपंथ में पडीया, त्यां नरक सूं सनमुख दीधा डेरा॥

५. ग्रहस्थ नें ओषध भेषद देइ नें, अनेक उपाय करे जीवा बचावें।
ए संसार तणा उपगार कीयां में, मुगत रो मारग मूंढ बतावें॥

६. करें मितर-जंतर झाडा-झपटा, सरपादिक नों जेंहर देवें उतारी।
काढें डाकण साकण भूत जक्षादिक, तिणमेंइ धर्म कहें सांगधारी॥

७. एहवा किरतब सावद्य जांणे, त्रिविधे त्रिविधे साधां त्याग कीधो।
भेषधारी लोकां सूं मिलनें अग्यांनी, त्यां जीव बचावणों सरणों लीधो॥

८. उवे जीव वचावण रो मुख सुं कहे पिण, कांम पड्यां बोलें फिरती वांणों।
भोला नें भर्म में पाड विगोया, ते पिण डूबें छें कर कर तांणो॥

९. कीड्यां-मकोडा नें लटां-गजायां, ढांढां रा पग हेठें चींत्या जावें।
भेषधारी कहें म्हें जीव वचावां, तो चुण चुण जीवां नें क्यूं न वचावें॥

१०. कोइ आखा चोमासा उपदेस देवं तां, दश पांच जीवां नें दोहरा समझावं।
जो उदम करें च्यार महीना माहे, तो लाखां गमे जीव तेह वचावें॥

२. कोई इस अग्नि में जलन से बचाता है, कोई कूए में पड़ने से बचाता है। ये सब तो लौकिक उपकार हैं। जो विवेक शून्य लोग हैं, उनको इसका कुछ भी ज्ञान नही है।

३. किसी के हृदय में ज्ञान पैदाकर पाप का प्रत्याख्यान करा दिया तो उसने भव-कूप में पड़ते हुए को बचाया। साधु जन्म-मरण की अग्नि में जलते लोगों को बाहर निकालते हैं। मूढ लोगों ने इसका भी रहस्य नहीं समझा है।

४. मिथ्यादृष्टि शून्यचित्त सूने मन से सूत्रों को पढ़ते हैं। उन्हें द्रव्य (लौकिक) और भाव (लोकोत्तर) के भेदों का निर्णय-ज्ञान नहीं होता। वे सपरिवार कुपथ में पड़ गए और नरक के सम्मुख अपना डेरा डाल लिया है।

५. गृहस्थ को औषध-भैषज देकर तथा अन्य अनेक उपाय करके जीवों को बचाते हैं। इस सांसारिक उपकार के करने में मुग्ध लोग उसे मुक्ति का मार्ग बताते हैं।

६. यंत्र, मंत्र और झाड़ा-झपटा करके सर्प आदि का जहर उतार देते हैं। डाकिन, शाकिन, भूत, यक्ष आदि को निकाल देते हैं। वेशधारी साधु इन कामों में भी धर्म कहते हैं।

७. ऐसे कार्यों को साधुओं ने सावद्य समझकर तीन करण तीन योग से छोड़ा है, किन्तु वेशधारी अज्ञानी साधुओं ने लोगों से मिलकर जीव बचाने की शरण ली है।

८. वे जीव बचाने की बात मुख से कहते हैं, परन्तु काम पड़ने पर बात बदल देते हैं। भोले लोगों को भ्रम में पटक कर डुबो दिया और स्वयं भी आग्रह कर-करके डूबते हैं।

९. कीड़ियां, मकोड़े, लट और गजाईयां पशुओं के पैरों के नीचे कुचले जाते हैं। वेशधारी साधु कहते हैं, हम जीव बचाते हैं, तो चुग-चुग कर (उठाकर) उन जीवों को क्यों नहीं बचाते?।

१०. कोई पूरे चतुर्मास में उपदेश देकर दस-पांच व्यक्तियों को बड़ी कठिनाई से समझा सकता है। यदि चार महिनों तक जीव बचाने के कार्य में उद्यम करें तो लाखों जीव वे बचा सकते हैं।

११. सों घर रें आंतर कोई लेवें संथारो, तो तुरत आलस छोडी देवण जावें।
सों पगलां गयां जीव लाखां बचें छें, त्यां जीवां नें जाए क्यूं न वचावें॥

१२. घर छोडतों जांणे सों कासों उपरें, तो सांग पेंरावण सताब सूं जावें।
एक कोस गयां जीव कोडां बचें छें, त्यां जीवां नें जाय नें क्यूं न बचावे॥

१३. जब तों कहें म्हांरो कल्प नही छें, म्हें तों संसार सूं हूआ न्यारा।
कब ही कहें म्हें जीव बचावां, उवे वांणी न बोलें एकण धारा॥

१४. साधु तो आपरा व्रत राखण नें, त्रिविध त्रिविध जीव नही संतावें।
संसार माहे जीव पच रह्या छें, त्यांसूं तो साध हुवा निरदावें।
आ सरधा श्री जिणवर भाखी॥

१५. जीवणों मरणों त्यांरो नही चावें, समझें तो देखे तो साध समझावें।
ग्यांनादिक गुण घट माहे घालें, मुगतनगर में साध पोहचावें॥

१६. ग्रहस्थ रा पग हेठें जीव आवें तो, भेषधारी कहें म्हें तुरत बतावां।
ते पिण जीव बचावण काजें, म्हें सर्व जीवां रों जीवणो चावां॥

१७. इविरती जीवां रो जीवणों वांछें,
तिण धर्म रो परमारथ नही पायो।
आ सरधा अग्यांनी री पग-पग अटकें,
ते सांभलजों भवीयण चित ल्यायो॥

१८. ग्रहस्थ रे तेल जांअें मूंण फूटां, ते कीड्यां रा दर माहे रेळो आवें।
बिच में जीव आवे ते तेल सूं वहिता, वले तेल वूहो वूहो अगन में जावें॥

११. सौ घरों की दूरी पर यदि कोई संथारा करे तो तत्काल आलस्य छोड़कर उसे आमरण अनशन दिलाने के लिए जाते हैं। सौ कदम जाने से ही लाखों जीव बच जाते हैं तो फिर वहां जाकर उन जीवों को क्यों नहीं बचाते?।

१२. सौ कोस की दूरी पर भी यदि कोई दीक्षा लेने वाला है तो वे वेशधारी उसे वेश प्रदान करने के लिए बड़े ठाठ से जाते हैं। एक कोस दूर जाने में करोड़ों जीव बचते हैं तो उन जीवों को जाकर क्यों नहीं बचाते?।

१३. तब कहते हैं, ऐसा करना हमारा कल्प-आचार नहीं है। हम संसार से अलग हो गए हैं। कभी कहते हैं, हम जीव बचाते हैं। वे एक जैसी बात नहीं कहते।

१४. साधु तो अपने व्रत को रखने के लिए तीन करण, तीन योग से किसी भी जीव को नहीं सताते। संसार में जो जीव आसक्त हो रहे हैं, उनसे साधुओं का कोई लगाव नहीं है। यह श्रद्धा जिनभाषित-प्ररूपित है।

१५. उनका जीना, मरना साधु नहीं चाहते। कोई समझने योग्य होता है तो साधु उन्हें समझाते हैं। ज्ञान आदि (दर्शन, चारित्र, तप) गुण उनके हृदय में भरकर उन्हें मोक्ष नगर पहुंचा देते हैं।

१६. गृहस्थ के पैर के नीचे यदि कोई जीव आ रहा है तो वेशधारी साधु कहते हैं, हम उसे तुरंत बचाते हैं। वे यह भी कहते हैं, हम जीव रक्षा के अवसर पर सभी जीवों का जीना चाहते हैं।

१७. जो अव्रती जीवों के जीवन की कामना करते हैं, उन्होंने धर्म का परमार्थ नहीं पाया है। अज्ञानी लोगों की यह श्रद्धा कदम-कदम पर अटकती है। उसे एकाग्रचित्त से सुनें।

१८. गृहस्थ का घट फूट जाने से तैल बह रहा है। चींटियों के बिल में धारबंद बहाव के साथ जा रहा है। उस तैल के साथ बहते हुए जीव भी बीच में आ रहे हैं, और वह तैल बहता-बहता अग्नि में जा रहा है।

१९. जो अगन उठें तो लाय लागें छें, तो तस थावर जीव मास्या जावें।
ग्रहस्थ रा पग हेठें जीव वतावें तो, तेल ढूलें ते बासण क्यूं न वत्तावें॥

२०. पग सूं मरता जीव वतावें, तेल सूं मरता जीवों नें नही वत्तावें।
आ खोटी सरधा उघाडी दीसें, पिण अभिंतर आंधां रें निजर न आवें॥

२१. वले भेषधारी विहार करतां मारग में,
त्यांनें श्रावक सांहमां मिलीया आयो।
ते मारग छोड नें उझड पडीयां, तस थावर जीवां नें चीथता जायो॥

२२. श्रावकां नें उझड पडीया जांणें, तस थावर जीवां नें मरता देखें।
ग्रहस्थ रा पग हेठें जीव वतावें, तो मारग बताय देंणों इण लेखे॥

२३. एक पग हेठें जीव मरे ते वतावें, तो थोडा सा जीवां नें वचता जांणो।
श्रावकां नें उजाड सूं मारग घाल्या, घणा जीव वचें तस थावर प्रांणो॥

२४. एक पग हेठें जीव बचाए अग्यांनी, ठाला बादल अंबर ज्यूं गाजें।
त्यांनें श्रावक उजाड में मारग पूछें तों, मुन साझें बोलता काय लाजें॥

२५. थोड़ी दूर वतायां थोडो धर्म हुवे तों, घणी दूर वतायां घणों धर्म जांणों।
घणी दूर रों नांम लीयां बक उठें, त्यांरी खोटी सरधा रा अें अहलांणों॥

२६. कोइ आंधो पुरष गामतरें जातां, ओ आंख विनां जीव किण विध जोवें।
कीड्यां मांकादिक चीथतो जाअें, तस थावर जीवां रो घमसांण होवें॥

१९. यदि अग्नि उठती है तो लाय लगती है। त्रस और स्थावर जीव मरते हैं। गृहस्थ के पैरों के नीचे आने वाले जीवों को बचाते हैं तो जिस बर्तन से तैल बह रहा है उस पात्र को क्यों नहीं बताते?।

२०. पैर से मरते जीवों को बताते हैं, पर तैल से मरते जीवों को नहीं बतलाते, यह तो प्रत्यक्ष ही गलत श्रद्धा दिखाई दे रही है, परन्तु आभ्यंतर आंख जिनकी खुली नहीं है, उन्हें सत्य नजर नहीं आता।

२१. वेशधारी साधु विहार कर रहे थे, रास्ते में कुछ श्रावक उन्हें सामने मिले। वे सब मार्ग भूलकर जंगल में भटक गए। त्रस, स्थावर जीवों को रोंदते हुए चल रहे हैं।

२२. जंगल में पथ भूले श्रावकों को देखा और मरते हुए त्रस, स्थावर जीवों को। गृहस्थ के पैरों के नीचे आने वाले जीवों को यदि वे बताते हैं तो उनकी मान्यता के अनुसार श्रावकों को मार्ग भी बता देना चाहिए।

२३. एक पैर के नीचे आने वाले जीवों को बताने से तो थोड़े ही जीव बचते हैं। जबकि उत्पथ में चल रहे श्रावकों को सही मार्ग पर लाने से तो अनेक त्रस, स्थावर प्राणी बच जाते हैं।

२४. एक पैर के नीचे आने वाले जीवों को तो अज्ञानी लोग बचाते हैं। वे खाली-बादल वाले आकाश की तरह गर्जारव करते हैं। उन्हें जंगल में श्रावक मार्ग पूछे तो मौन कर लेते हैं। बोलने में लज्जा क्यों करते हैं।

२५. थोड़ी दूरी बताने में थोड़ा धर्म होता है तो अधिक दूरी बताने में अधिक धर्म होना चाहिए। अधिक दूरी का नाम लेने पर बकवास करते हैं। उनकी गलत श्रद्धा की यह पहचान है।

२६. कोई अंध पुरूष किसी गांव जा रहा है। आंख के बिना वह जीवों को कैसे देख सकता है? चींटियां, मकोड़े आदि जीवों को कुचलता चलता है। त्रस, स्थावर जीवों का संहार होता है।

२७. भेषधारी सहजांइ साथे जातां, आंधा रा पग सूं जीव मरता देखें।
जो पग पग जीवां नें नही वतावें, तो खोटी सरधा जांणजों इण लेखें॥

२८. त्यांनें वताय वताय नें जीव वचावणा, कें पूंजी पूंजी नें करणा दूरो।
इण धर्म करण सूं तों पोंतेइ लाजें, तो दूजों कुण मांनसी ओ मत कूडो॥

२९. वले इल्यां सुलसलीयां सहीत आटों छें, ते ग्रहस्थ रे ढुळें मारग माह्यों।
ते तपती रेत उनाला री तिणमें, ते परत पांण जुदा हुवें जीव कायों॥

३०. ते ग्रहस्थ नही देखें आटो ढुलतों, ते भेषधार्‍यां री निजर्‍यां आवें।
उवे पग सूं मरता जीव वतावें, आटें ढुलतें मरता जीव क्यूं न वतावें॥

३१. इत्यादिक ग्रहस्थ रा अनेक उपध सूं, तस थावर जीव मूआ नें मरसी।
जे पग हेठें जीव वतावें त्यांनें, सगली ठोड वतावणा पडसी॥

३२. किण ही एक ठोडे जीव वतावें, किण ही एक ठोड संका मन आंणें।
समझ पड्यां विण सरधा परूपें, पीपल बांधी मूर्ख ज्यूं तांणें॥

३३. ए पग-पग जाब अटकता देखें, कदा सर्व आरे हुवें अग्यांनी थूलो।
कूड कपट करें मत कुसले राखण नें, पिण बुधवंत वात न मांनें मूलो॥

३४. ग्रहस्थ रों न वांछणों जीवणों मरणों, ते वांछे वतायां लागें पाप कर्मो।
राग धेष रहीत रहिणों निरदावें, एहवों निकेवल श्रीजिण धर्मो॥

२७. वेशधारी साधु सहज में उसके साथ चल रहे हैं। अचक्षु पुरूष के पैरों के नीचे मरते जीवों को भी देख रहे हैं। यदि उन कदम-कदम पर मरने वाले जीवों को नहीं बताते तो उनकी मान्यता को गलत मान लेना चाहिए।

२८. उस अचक्षु पुरूष को बता बताकर जीवों को बचाना चाहिए, या फिर प्रमार्जन करके उन्हें हटाना चाहिए। ऐसा धर्म करने से यदि स्वयं लज्जित होते हैं तो कौन दूसरा इस मत को मानेगा?।

२९. इल्ली और सुलसल्यों सहित आटा है। किसी गृहस्थ से वह रास्ते में गिर रहा है। ग्रीष्म-ऋतु की तपती धूल पर गिरते ही उन जीवों के शरीर और प्राण अलग हो रहे हैं।

३०. आटा गिर रहा है, यह उस गृहस्थ के ध्यान में नहीं है, किन्तु वेशधारी साधु की दृष्टि में आ गया। वे पैर से दबाकर मरने वालों को जब बताते हैं तो गिरते आटे से मरने वाले जीवों को क्यों नहीं बताते?।

३१. ऐसे गृहस्थ के अनेक उपकरणों से त्रस, स्थावर जीव मरे हैं और मरते रहेंगे यदि वे पैर के नीचे आने वाले जीवों को उन्हें बतलाते हैं तो सभी जगह बतलाना पड़ेगा।

३२. किसी जगह वे जीवों को बतलाते हैं और किसी जगह वे ऐसा कहने में संकोच करते हैं। बिना समझे जो अपनी श्रद्धा की प्ररूपणा करते हैं, वे मूर्ख की तरह पीपल को बांधकर खींचते हैं।

३३. जब वे अपने उत्तर को कदम-कदम पर अटकते हुये देखते हैं तो कभी-कभी वे बड़े अज्ञानी सभी प्रसंगों पर "जीव बतलाने" की बात स्वीकार कर लेते हैं। यह सब अपने असत्य-पक्ष को सुरक्षित रखने के लिए करते हैं, परन्तु बुद्धिमान उसकी बात को बिल्कुल नहीं मानते।

३४. गृहस्थ के जीने-मरने की बांछा नहीं करनी चाहिए। वह बांछा करके बताने में पाप कर्म का बंध होता है। राग द्वेष रहित होकर तटस्थ रहना—यही श्री जिनेश्वर देव का धर्म है।

३५. समोसरण ते एक जोजन मांडला में, तठें नर नारयां रा व्रंद आवें नें जावें।
अरिहंत आगें वांणी सुणवा, त्यांनें भगवंत भिन भिन भाव सुणावें॥

३६. च्यार कोस माहे तस थावर हूंता, मर गया जीव उरांणें आया।
नर नारयां रा पगां सूं विण उपयोगें, पिण भगवंत कठेय न दीसें वताया॥

३७. नंदण मिणीयारो डेडकों हुय नें,
वीर वांदण जांतो मारग माह्यों।
तिणनें चीथ मारयों श्रेणक रें वछें रे,
वीर साध स्हांमा मेली क्यूं न वचायो॥

३८. ग्रहस्थ रा पग हेठें जीव आवें ते, साधां नें वतावणों कठेंय न चाल्यों।
भारी कर्मा लोकां नें भिष्ट करण नें, ओ पिण घोचो कुगुरा रा घाल्यों॥

३९. जब साधां रो नांम तो अलगों मेलें, श्रावकां री चरचा मुख ल्यावें।
साध सूं मरता जीव साध वतावें, ज्यूं श्रावक श्रावका नें जीव वत्तावें॥

४०. सिधंत रा बल विण बोलें अग्यांनी,
श्रावकां रो संभोग साधां ज्यूं बत्तायो।
अे गालां रा गोला मुख सूं चलाया,
ते न्याय सुणों भवीयण चित ल्यायो॥

४१. साधां रें पग हेठें जीव मरें ते, संभोगी साध देखे जो नही वत्तावें।
तो अरिहंत नी आगन्या लोपावें, पाप लागो नें विराधक थावें॥

३५. एक योजन (चार कोश) प्रमाण परिमण्डल में समवसरण लगता है। अरिहंत देव की देशना सुनने के लिए वहां स्त्री-पुरूषों के समूह आते हैं, जाते हैं। भगवान उन्हें विविध प्रकार के विषय सुनाते हैं।

३६. चार कोश प्रमाण उस क्षेत्र में त्रस, स्थावर अनेक जीव थे। आते-जाते स्त्री-पुरूषों के बिना उपयोग के कारण पैरों में आकर अनेक जीव यों ही मर गए होंगे, किन्तु भगवान ने उन जीवों को बताया हो, ऐसा कहीं भी नहीं आता।

३७. नंदन मणिहारा मेंढ़क के भव में भगवान की वंदना के लिए जा रहा था। राजा श्रेणिक के घोड़े के पैर के नीचे आकर वह मर गया। महावीर स्वामी ने साधुओं को सामने भेजकर उसे क्यों नहीं बचाया?।

३८. गृहस्थ के पैर के नीचे जीव आते हों, साधु उसे बताए, यह कहीं भी वर्णन नहीं है। बहु-कर्मा लोगों को भ्रमित करने के लिए यह भी कुगुरू लोगों का ही डाला हुआ फांस है।

३९. ये तब साधुओं का नाम तो अलग कर देते हैं, श्रावकों की चर्चा मुंह पर लाते हैं। साधु के द्वारा मरते हुए जीवों को साधु बताते हैं, और श्रावक के द्वारा मरते हुए जीवों को श्रावक बताते हैं।

४०. अज्ञानी लोग शास्त्र ज्ञान के बल बिना बोलते हैं। साधुओं की तरह श्रावकों का भी परस्पर संभोग बतलाते हैं। ये कपोल कल्पित बातें मुंह से यों ही चलाते रहते हैं। भव्यजनों! इसका ध्यान लगाकर न्याय सुन।

४१. किसी साधु के पैर के नीचे आकर कोई जीव मर रहा है, संघ का साधु उसे देखते हुए भी यदि नहीं बताता है तो वह अरिहंत भगवान की आज्ञा का भंग करता है। पाप का बंध करता है, और विराधक हो जाता है।

४२. साधु तो साधां नें जीव वत्तावें, ते पोता रो पाप टालण रे काजें।
श्रावक श्रावका नें जीव नही बतावे,
तों किसों पाप लागों किसों वरत भाजें॥

४३. श्रावक श्रावक नें न वतायां पाप लागों कहें,
ओ भेष धास्यां मत काढ्यों कूडों।
श्रावका रें संभोग साधां ज्यूं हुवें तो,
पग पग बंध जायें पाप रा पूरो॥

४४. पाट बाजोटादिक साध बारें मेलें, ठरलें मातरादिक कार्य जावें।
लारें ओर साधु त्यांनें भीजतों देखें, जो ओळें न ल्यावें तो प्राछित आवें॥

४५. रोगी गरढा गिलांण साधु री वीयावच,
साधु न करें तों श्री जिण आगना बारें।
महा मोहणी कर्म तणों बंध पाडें,
इह लोक नें परलोक दोनूं विगाडें॥

४६. आहार पांणी साधु वेंहरे ने आंणें, संभोगी साधु नें वांटे देवा री रीतों।
आप आंण्यों जांण इधिको लेवें तो, अदत लागें नें जाअें परतीतो॥

४७. इत्यादिक साध साध रें अनेक बोलां रों,
संभोगी साध सूं न कीयां अटकें मोखो।
यांहिज बोलां रो श्रावक श्रावका रे,
न करें तों मूल न लागें दोखो॥

४८. श्रावक रे संभोग साधां ज्यू हुवें तों,
तो श्रावक श्रावका नें पिण इण विध करणों।
ए सरधा रो निरणों न काढें अग्यांनी,
त्यां विटल थइ लीयो लोकां रों सरणों॥

४२. एक साधु दूसरे साधु को जीव बताता है, वह तो स्वयं को पाप से बचाने के लिए बताता है। एक श्रावक यदि श्रावकों को नहीं बताता है तो उनको कौनसा पाप लगता है और कौनसा व्रत टूटता है?।

४३. श्रावक यदि श्रावक को जीव नहीं बताता है, तो पाप लगता है, यह तो वेशधारियों ने झूठा मत निकाला है। यदि श्रावकों का पारस्परिक संभोग(कल्प व्यवस्था) साधुओं जैसा ही हो तो कदम-कदम पर भरपूर पापबंध होता रहेगा।

४४. पाट (चौकी), बाजोट (तख्त) आदि सामान को साधु बाहर रखकर शौचादि के लिए जंगल जाए। पीछे जो साधु हैं, वे पाट-बाजोट आदि सामान को यदि वर्षा में भीगते हुए देखते रहें, उन्हें उठाकर भीतर न लाए तो प्रायश्चित्त आता है।

४५. रोगी, वृद्ध और ग्लान साधु की सेवा साधु यदि नहीं करे तो यह कार्य जिन आज्ञा के बाहर-विरूद्ध है। महामोहनीय कर्म का बंध करता है। वह इहलोक, परलोक दोनों को बिगाड़ता है।

४६. आहार, पानी साधु गोचरी (भिक्षा) से लाता है। उसे अपने संभोगी साधुओं के बीच बांट देने का विधान है। स्वयं लेकर आया है, इसलिए वह अधिक ले तो उसे चोरी का पाप लगता है और उसका विश्वास उठ जाता है।

४७. इस प्रकार के अनेक बोल हैं, वे कार्य संभोगी साधुओं के साथ नहीं करने से मोक्ष रूक जाता है, परन्तु ये सभी कार्य श्रावक, श्रावकों के लिए नहीं करता है तो उसे जरा भी दोष नहीं लगता है।

४८. श्रावकों के लिए यदि साधुओं की तरह संभोग व्यवस्था हो तो उन्हें भी साधुओं की तरह करना चाहिए। अज्ञानी लोग इस श्रद्धा का निर्णय नहीं निकालते बल्कि उन्होंने नीति से भ्रष्ट होकर गृहस्थों का आश्रय लिया है।

४९. जो ए श्रावक श्रावका रां नही करें तों,
भेषधाऱ्यां रे लेखें भागल जांणों।
त्यां श्रावका रें संभोग साधां ज्यूं परूप्यों,
ते पड गया मूर्ख उलटी तांणो।।

५०. श्रावक रें संभोग तों श्रावक सूं छें, वले मिथ्याती सूं राखें भेलापों।
त्यांरा संभोग तों अविरत में छें, ते त्याग कीयां सू टलसी पापो॥

५१. त्यांसूं सरीरादिक रो संभोग टाले नें, ग्यांनादिक गुण रो राखें भेलापो।
उपदेस देइ निरदावें रहिणों, पेंलो समझे नें टालें तो टलसी पापो॥

५२. लाय लागी जो ग्रहस्थ देखें तो, तुरत बुझावें छ काय नें मारी।
ए सावद्य किरतब लोक करें छें, तिणमेंइ धर्म कहें सांगधारी॥

५३. अगन पांणी छ काय मूई त्यांरो, थोडो सों पाप कहें हुवें कांनी।
ओर जीव वच्या त्यांरो धर्म वताए, लाय बुझावण री करें सांनी॥

५४. ए पाप नें धर्म रो मिश्र परूपें, तोटा विचें लाभ घणों वत्तावें।
त्यां भेषधाऱ्यां री परतीत आवें तो, लाय बुझावण दोऱ्या जावें॥

५५. एहवी दया वत्तावें अग्यांनी, छ काय रा पीहर नांम धरावें।
मिश्र धर्म कहें लाय बुझायां, पिण प्रश्न पूछ्यां रा जाब न आवें॥

५६. छ काय जीवां री हंसा कीधां, ओर जीव वच्या त्यांरों कहें छें धर्मो।
आ सरधा सुण सुण नें बुधवंता, खोटा नाणा ज्यूं काढीयो भर्मो।।

४९. यदि श्रावक श्रावक के लिए ये कार्य नहीं करते हैं तो वेशधारियों के मतानुसार वे व्रतभ्रष्ट हैं। श्रावकों के संभोग को साधु-संभोग की तरह बताने वाले वे मूर्ख (नासमझ) उल्टी खींचातान में पड़ गए।

५०. श्रावक के श्रावक से संभोग है और मिथ्यात्वी से भी। वे संभोग तो अव्रत में है। उनका त्याग करने से ही पाप से बचाव होगा।

५१. उनसे शारीरिक संबंध (संभोग) छोड़कर ज्ञानादिक गुणों की एकता रखनी चाहिए। उपदेश देकर तटस्थ रहना चाहिए। अगला व्यक्ति समझकर पाप से टलना चाहेगा तभी पाप से टलेगा।

५२. आग लगते ही यदि कोई गृहस्थ देख लेता है, वह तत्काल छह काया की हिंसा करके उसे बुझाता है, यह सावद्य कर्तव्य लोगों का है। उसमें भी वेशधारी धर्म कहते हैं।

५३. अग्नि, पानी आदि छह काय के जीवों की हिंसा हुई, उसमें थोड़ा सा पाप हुआ यह कहकर अलग हो जाते हैं, और जो जीव बचे उनका धर्म बताते हैं। आग बुझाने का संकेत करते हैं।

५४. यह पाप और धर्म की मिश्र प्ररूपणा करते हैं। हानि की तुलना में अधिक लाभ बताते हैं। जो इन वेशधारियों का विश्वास करते हैं, वे आग बुझाने के लिए दोड़ते हुए जाते हैं।

५५. इस प्रकार की दया अज्ञानी लोग बताते हैं, और छह काय के रक्षक होने का दावा करते हैं। आग बुझाने में मिश्र धर्म कहते हैं, परन्तु प्रश्न पूछने पर उन्हें उत्तर नहीं आता है।

५६. षट्कायिक जीवों की हिंसा करने में जो दूसरे जीव बचे, उनका धर्म कहते हैं। इस मान्यता को सुन-सुनकर जो बुद्धिमान हैं, उन्होंने तो खोटे रूपये की तरह पहचान कर भ्रम निकाल दिया।

५७. नित रा नित पांच सों जीवां नें मारें, कोइ करें कसाइ अनार्य कर्मो।
जो मिश्र धर्म छें लाय बुझायां, तो इणनेंइ मारयां हुवें मिश्र धर्मो।।

५८. लाय सूं बळता जीव जांणी नें, छ काय हणें नें लाय बुझाइ।
ज्यूं कसाइ सूं मरता जीवा नें देखें, कोई जीव वचावण हणें कसाइ॥

५९. जो लाय बुझायां जीव वचें तों, कसाइ नें मारयां वचें घणां प्रांणों।
लाय बुझाया कसाइ नें मारयां, ए दोयां रो लेखों बरोबर जांणों॥

६०. वले नाहर सिंघादिक चीता वघेरा, अें दुष्टी जीव करे पर घाता।
जो लाय बुझायां जीव वचें छें, तों यांनेंइ मारयां घणां रे हुवें साता॥

५७. कोई अनार्यकर्मा-कसाई पांच सौ जीवों को प्रतिदिन मारता है। यदि आग बुझाने में मिश्रधर्म है तो कसाई को मार देने में भी मिश्रधर्म होना चाहिए।

५८. अग्नि में जलते जीवों के लिए षट्कायिक जीवों की हिंसा करके आग बुझाई जाती है। वैसे ही कसाई से मरते जीवों को देखकर कोई उन जीवों को बचाने के लिए कसाई की हत्या कर डालता है।

५९. जब अग्नि को बुझाने से जीव बचते हैं तो कसाई को मार देने से बहुत सारे जीव बच जाते हैं। अग्नि को बुझाने और कसाई को मार देने इन दोनों का लेखा बराबर समझना चाहिए।

६०. सिंह, चीता, बाघ और नाहर ये दुष्ट जीव दूसरों की हत्या करते हैं। यदि आग बुझाने से जीव बचते हैं तो उन दुष्टों को मार देने में बहुत लोगों के साता होती है।

दूहा

१. जीव हंसा छें अति बुरी, तिण माहे ओगुण अनेक।
दया धर्मी में गुण घणा, ते सुणजो आंण ववेक॥

ढाल : ९

(लय - ओ भव रतन चिंतामण सरिसो....)

दया धर्म श्री जिणजी री वांणी॥

१. दया भगोती छें सुखदाई, ते मुगत पुरी नीं साइ जी।
साठ नाम दया रा कह्या जिण, दसमां अंग रे माही जी।

२. पूजणीक नांम दया रो भगोती, मंगलीक नांम छें नीको जी।
जे भव जीव आया इण सरणें, त्यांनें छें मुगत नजीको जी॥

३. त्रिविधे त्रिविधे छ काय न हणवी, आ दया कही जिणरायो जी।
तिण दया भगोती रा गुण छें अनंता, ते पूरा केम कहवायो जी॥

४. त्रिविधे त्रिविधे छ काय जीवां नें, भय नही उपजावें तांमो जी।
ए अभयदांन कह्यों भगवंते, ए पिण दया रो नांमो जी॥

५. त्रिविधे त्रिविधे छ काय मारण रा, त्याग करें मन सूधें जी।
आ पूरी दया भगवंते भाखी, तिणसूं पाप रा बारणा रूधें जी॥

दोहा

१. जीव हिंसा अति बुरी है। उसमें अनेक अवगुण हैं। जो दया धर्मी है, उसमें अनेक गुण हैं, उन्हें विवेक पूर्वक सुनें।

ढाल : ९

दया धर्म जिनेश्वर देव की वाणी है।

१. दया भगवती अत्यन्त सुखदाई है। यह मोक्षपुरी की साई है। दसवां अंग प्रश्नव्याकरण सूत्र (श्रु. २, अ. १, सूत्र १०७) में दया के ६० नाम बताए हैं।

२. दया का पूजनीय, मांगलिक श्रेष्ट नाम है भगवती। जो भव्य प्राणी इसकी शरण में आए हैं, उनकी मुक्ति निकट है।

३. तीन करण, तीन योग से षट्कायिक जीवों की हिंसा नहीं करना, जिनेश्वर देव ने इसे दया कहा है। उस दया-भगवती के अनन्तगुण हैं। उन्हें पूर्णतः कैसे कहा जा सकता है।

४. तीन करण, तीन योग से षट्कायिक जीवों को भयभीत नहीं करना, उसे भगवान ने अभय दान कहा है। यह भी दया का एक नाम है।

५. तीन करण, तीन योग से षट्कायिक जीवों को न मारने का शुद्ध मन से संकल्प करना, इसे भगवान ने पूर्ण दया बताया है। इससे पाप आगमन के द्वार रूक जाते हैं।

६. त्याग कीयां विण हंसा टालें, तो कर्म निरजरा थायो जी।
हिंसा टाल्यां सुभ जोग वरतें छें, तिहां पुन रा थाट बंधायो जी॥

७. इण दया सूं पाप कर्म रुक जावें, वले कर्म करें चकचूरो जी।
यां दोय गुणां में अनंत गुण आया, ते पाले छें विरला सूरो जी॥

८. आहीज दया छें महावरत पेहिलों, तिणमें दया दया सर्व आइ जी।
ते पूरी दया तो साधु जी पालें, बाकी दया रही नही काइ जी॥

९. छ काय नें हणें हणावें नांही, वले हणतां नें नही सरावें जी।
इसरी दया निरंतर पाळें, त्यांरें तुलें बीजों कुण आवें जी॥

१०. आहीज दया चोखें चित पालें, ते केवलीया री छें गादी जी।
आहीज दया सभा में परूपें, तिणनें वीर कह्यों न्यायवादी जी॥

११. आहीज दया केवलीयां पाळी, मनपरया अवधिगिनांनी जी।
वले मतिगिनांनी नें सुरतगिनांनी रे, आहीज दया मन मांनी जी॥

१२. आहीज दया लबद धारयां पाळी, आहीज पूर्वधर ग्यांनी जी।
संका हुवे तो निसंक सूं जोवों, सूतर में नही छें वात छांनी जी॥

१३. देस थकी दया श्रावक पाळें, तिणनें पिण साध बखाणें जी।
ते श्रावक हिंसा करें घर बेंठा, पिण तिण माहे धर्म न जांणें जी॥

१४. प्रांण भूत जीव नें सतव, त्यांरी घात न करणी लिगारो जी।
आ तीन काल ना तीथंकर नीं वांणी, आचारंग चोथा धेन मझारो जी॥

६. त्याग किए बिना यदि हिंसा टाली जाती है, तो भी कर्मों की निर्जरा होती है। हिंसा टालने से शुभयोगों की प्रवृत्ति होती है। पुण्य समूह का बंध होता है।

७. इस दया से आने वाले पाप कर्म रूक जाते हैं और पूर्व संचित पाप कर्म चूर-चूर (नष्ट) हो जाते हैं। इन दो गुणों में अनंत गुण समा जाते हैं। विरल शूरवीर व्यक्ति ही इसका पालन करते हैं।

८. यही दया प्रथम महाव्रत है। जिसमें सभी प्रकार की दया का समावेश होता है। उस पूर्ण दया का पालन तो साधु ही करते हैं। उससे अवशिष्ट कोई दया नहीं रह जाती।

९. छहकाय के जीवों को मारे नहीं, मरवाए नहीं और मारने वालों की प्रशंसा करे नहीं, ऐसी दया का जो निरन्तर पालन करते हैं, उनकी तुलना में दूसरा कौन आ सकता है?

१०. इसी दया का जो अच्छे मन से पालन करता है, वह केवलियों की परम्परा है। इसी दया का जो सभा में निरूपण करता है उसे भगवान महावीर ने न्यायवादी कहा है।

११. इसी दया का पालन केवलियों ने किया है और मन:पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिज्ञांनी एवं श्रुतज्ञानी सभी ने इसी दया का मन से पालन किया है।

१२. इसी दया का पालन लब्धिधारी साधुओं ने किया है और इसी दया का पालन पूर्वधरों ने किया है। शंका हो तो नि:संकोचरूप से सूत्रों को देखलो। कोई भी बात छुपी हुई नहीं है।

१३. श्रावक दया का आंशिक पालन करता है। साधु उसकी भी प्रशंसा करते हैं, किन्तु जो श्रावक घर बैठा हिंसा करता है, उसे धर्म नहीं मानते।

१४. आचारांग सूत्र के चतुर्थ अध्ययन (उ. १ सूत्र १) में कहा गया है- प्राण, भूत, जीव और सत्व की हिंसा तनिक भी नहीं करनी चाहिए। यह तीनों ही काल के तीर्थंकरों की वाणी है।

१५. मत हणों मत हणों कह्यों अरिहंतों, अें जीव हणें किण लेखें जी।
ज्यांरी अभिंतर आंख हीया री फूटी, ते सूतर सांहमों न देखें जी।।

१६. जीवां री हंसा छें दुखदाई, ते नरक तणी छें साई जी।
खोटा खोटा नांम तीस हिंसा रा, कह्या दसमा अंग रे माही जी।
हिंसा धर्म कुगुरां री वांणी॥

१७. प्राणघात हंसा छें खोटी, ते सर्व जीव नें दुखदायो जी।
तिण जीव हिंसा माहे अवगुण अनेक, ते पूरा केम कहवायो जी॥

१८. केइ कहें म्हें हिंसा कीयां में, जांणां छां पाप एकंतो जी।
पिण हिंसा कीयां विण धर्म न हुवें, म्हें किण विध पूरां मन खंतो जी॥

१९. कोइ कहे म्हें हणां एकिंद्री, पंचिंद्री जीवां रे तांइ जी।
एकंद्री मार पंचिंद्री पोख्यां, धर्म घणों तिण मांही जी॥

२०. एकिंद्री थी पंचिंद्रीना, मोटा घणा पुन भारी जी।
एकिंद्री मार पंचिंद्री पोख्यां, म्हांनें पाप न लागे लिगारी जी॥

२१. केई इसडों धर्म धारे नें बेंठा, ते तो कुगुरां तणो सीखायो जी।
निसंक थका छ काय नें मारें, वले मन में हरषत थायो जी॥

२२. कोइ पांच थावर नें सहल गिणी नें, मास्यां न जांणें पापो जी।
तिण सूं त्यांनें हणतां संक न आंणे, ओं तों कुगुरां तणों परतापो जी॥

२३. पांच थावर ना आरंभ सेती, दुरगत दोष वधारें जी।
कह्यों दसवीकालिक छठें अधेनें, तो बुधवंत किण विध मारें जी॥

१५. अरिहन्त प्रभु ने साधु को माहण (मतहणो) इस संबोधन से सम्बोधित किया है। तो फिर ये जीवों की हिंसा किस आधार पर करते हैं? जिनकी भीतरी आंख नष्ट हो गई, वे आगम की ओर नहीं देखते।

१६. जीव हिंसा महादुःख देने वाली है। वह नरक गमन की साई है। प्रश्न व्याकरण सूत्र (श्रु. १, अ. १, सूत्र ३) में हिंसा के बहुत ही बुरे तीस नाम बताए हैं। हिंसा में धर्म है, यह कुगुरू की वाणी है।

१७. प्राणघात करने वाली हिंसा बुरी है। वह सब जीवों के लिए दुःखदाई है। उस जीव हिंसा में अनेक अवगुण हैं। वे पूरे कैसे बताए जा सकते हैं।

१८. कुछ लोग कहते हैं, हम जानते हैं हिंसा करने में एकान्त पाप होता है। परन्तु हिंसा किए बिना धर्म भी नहीं हो सकता। हम अपनी धर्म भावना को कैसे पूरी करें।

१९. कुछ लोग कहते हैं, हम पंचेन्द्रिय जीवों के लिए एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा करते हैं। एकेन्द्रिय जीवों को मार कर पंचेन्द्रिय जीवों का पोषण करने में बहुत बड़ा धर्म होता है।

२०. एकेन्द्रिय जीवों से पंचेन्द्रिय जीवों के पुण्य अधिक होते हैं। इसलिए एकेन्द्रिय जीवों को मारकर पंचेन्द्रिय जीवों का पोषण करने में हमें जरा भी पाप नहीं लगता।

२१. कुछ लोग ऐसा धर्म धारण करके बैठे हैं, वह तो कुगुरू लोगों के द्वारा सिखाया गया है। वे निःशंक होकर छहकाय के जीवों को मारते हैं और मन में हर्षित होते हैं।

२२. कुछ लोग पांच स्थावर जीवों को सहज समझकर उन्हें मारने में पाप नहीं समझते। इसलिए उन्हें निःसंकोच मारते हैं। यह कुगुरूज़नों का प्रताप है।

२३. पांच स्थावर जीवों की हिंसा से दुर्गति रूप दोष बढ़ते हैं। दशवैकालिक के छट्ठे अध्ययन (श्लो. २६,२७,२८) में जब यह कहा गया है फिर बुद्धिमान हिंसा कैसे करे?।

२४. छ काय जीवां नें जीवां मारे नें, सगा सेंण न्यात जीमावें जी।
ए प्रतख सावद्य संसार नों कांमो, तिणमें धर्म वतावें जी॥

२५. जीवां नें मारे जीवां नें पोखें, ते तो मारग संसार नों जांणो जी।
तिण माहे साधु धर्म वतावें, पूरा छें मूंढ अयांणो जी॥

२६. मूला गाजर सकरकंद कांदा, इत्यादिक नीलोती अनेको जी।
ते पिण दांन दीयां में पुन परूपें, ते बूडें छें विनां ववेको जी॥

२७. केइ जीव खवायां में पुन परूपें, केई मिश्र कहें छें मूढ़ो जी।
अें दोनूंई हंसा धर्मी अनार्य, ते बूडें छें कर कर रूढो जी॥

२८. जीवां री हंसा में पुन परूपें, त्यांरी जीभ वहें तरवारो जी।
वले पहरण सांग साधु रो राखें, ध्रिग त्यांरो जमवारो जी॥

२९. केइ साधु रो विडद धरावें लोकां में, वले वाजें भगवंत रा भगता जी।
पिण हंसा माहे धर्म परूपें, त्यांरा तीन वरत भागें लगता जी॥

३०. छ काय मारयां माहे धर्म परूपें, त्यांनें हिंसा छ काय री लागे जी।
तीन काल री हंसा अणुमोदी, तिणसूं पेंहिलो महावरत भागें जी॥

३१. हिंसा में धर्म तो जिण कह्यो नांही, हिंसा धर्म कह्यां झूठ लागों जी।
दूसरो झूठ निरंतर बोले, त्यांरो बीजोइ महावरत भागों जी॥

३२. ज्यां जीवां नें मारयां धर्म परूपें, त्यां जीवां रो अदत लागो जी।
वले आगना लोपी श्री अरिहंत नी, तिणसूं तीजोई महावरत भागो जी॥

२४. छहकाय के जीवों को मारकर अपने सगे सम्बन्धी एवं बिरादरी (जातिवाले) के लोगों को खिलाते हैं। यह प्रत्यक्ष ही पाप सहित सांसारिक कार्य है। इसमें धर्म बताते हैं।

२५. जीवों को मार कर जीवों का पोषण करें, यह तो संसार का मार्ग है। इसमें जो साधु धर्म बताते हैं, वे पूरे मूर्ख, अज्ञानी हैं।

२६. मूला, गाजर, सकरकंद, प्याज इत्यादि अनेक प्रकार की वनस्पतियों का दान करने में पुण्य की प्ररूपणा करते हैं। वे अविवेकी डूब रहे हैं।

२७. कुछ लोग जीवों को खिलाने में पुण्य की प्ररूपणा करते हैं और कुछ मूढ़ लोग मिश्रधर्म की प्ररूपणा करते हैं। वे दोनों ही प्रकार के लोग हिंसाधर्मी अनार्य हैं। ये रूढ़ियों को पकड़-पकड़ करके डूब रहे हैं।

२८. जीव हिंसा में पुण्य की प्ररूपणा करने वालों की जीभ तलवार की तरह चलती है। वे साधु का स्वांग (वेश) रखते हैं। धिक्कार है उनके जीवन को।

२९. कुछ लोग साधु होने का गौरव रखते हैं। लोगों में भगवान के भक्त कहलाते हैं। पर वे हिंसा में धर्म की प्ररूपणा करते हैं। उनके प्रथम तीन महाव्रत टूट जाते हैं।

३०. जो छहकाय की हिंसा में धर्म की प्ररूपणा करते हैं, उन्हें छहकाय की हिंसा का दोष लगता है। तीन काल की हिंसा की अनुमोदना होती हैं, इससे पहला महाव्रत टूट जाता है।

३१. जिनेश्वर देव ने हिंसा में धर्म नहीं कहा है। हिंसा में धर्म कहने से झूठ का दोष लगता है। ऐसा झूठ यदि निरन्तर बालते रहें तो उनका दूसरा महाव्रत टूट जाता है।

३२. जिन जीवों को मारने में धर्म की प्ररूपणा करते हें, उन जीवों का अदत्त लगता है और अरिहन्त भगवान की आज्ञा का भंग होता है। इससे तीसरा महाव्रत भी भंग हो जाता है।

३३. छ काय मार्‍यां माहे धर्म वतावें, त्यांरी सरधा घणी छें उंधी जी।
ते मोह मिथ्यात में जडीया अग्यांनी, त्यांनें सरधा न सूझें सूंधी जी।।

३४. त्यांनें पिण पूछ्यां कहें म्हें दयाधर्मी छां, पिण निश्चं छ काय रा घाती जी।
त्यां हिंसाधर्म्यां ने साध सरधें केई, ते पिण निश्चें मिथ्याती जी॥

३५. केई कहें साध जीव वचावें, राखें रखावें भलो जांणें जी।
ते जिण मारग रा अजांण अग्यांनी, इसडी चरचा आंणें जी॥

३६. साधु तो जीवां नें क्यांनें वचावें, ते पच रह्या निज कर्मो जी।
कोइ साधु री संगत आय करे तो, सीखाय देवें जिण धर्मो जी॥

३७. छ काय रा सस्त्र जीव इविरती, त्यांरो जीवणों मरणों न चावें जी।
त्यांरो जीवणों मरणों साध वंछे तो, राग धेष बेहूं आवें जी॥

३८. छ काय रा सस्त्र जीव इविरती, त्यांरो जीवणों मरणों खोटो जी।
त्यांनें हणवा रो त्याग कीयो तिण माहे, दया तणों गुण मोटो जी॥

३९. असंजम जीतब नें बाल मरण, यां दोया री वंछा न करणी जी।
पिंडत मरण नें संजम जीतब, यांरी आसा वंछां मन धरणी जी।।

४०. छ काय रा सस्त्र जीव इविरती, त्यांरो असंजम जीतब जांणो जी।
सर्व सावद्य रा त्याग कीया त्यांरो, संजम जीतब एह पिछांणो जी॥

४१. त्रिविधे त्राइ छ काय रा साधु, त्यांरी दया निरंतर राखे जी।
ते छ काय रा पीहर छ काय नें मार्‍यां, धर्म किसें लेखें भाखें जी॥

३३. जा छहकाय को मारने में धर्म बतलाते हैं, उनकी श्रद्धा अत्यन्त विपरीत है। वे अज्ञानी मोह और मिथ्यात्व में जकड़े हैं। इसलिए उन्हें सम्यक् श्रद्धा दिखाई नहीं देती।

३४. उन्हें पूछने पर वे कहते हैं, हम दयाधर्मी हैं, परन्तु वे निश्चय में छहकाय के हिंसक हैं। उन हिंसाधर्मियों को यदि कोई साधु मानता है, वह भी निश्चय में मिथ्यात्वी है।

३५. कोई कहते हैं—साधु जीव बचाते हैं, जीव की रक्षा करते हैं, दूसरों से रक्षा करवाते हैं और रक्षा करने वालों को अच्छा समझते है, जो इस प्रकार की चर्चाएं करते हैं—वे जैन धर्म के अजानकार, अज्ञानी हैं।

३६. साधु जीवों को क्यों बचाए? जब कि जीव तो अपने अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख पाते हैं। कोई आकर साधु की संगति करे तो वे उसे जैन धर्म सिखा देते हैं।

३७. साधु छहकाय के शस्त्र अव्रती जीवों के जीने मरने की कामना नहीं करते हैं। यदि वे उनके जीने मरने की वांछा साधु करे तो राग और द्वेष दोनों की प्रवृत्ति होगी।

३८. छहकाय के शस्त्र अव्रती जीवों का जीना एवं मरना दोनों ही बुरे हैं। जिसने जीवों को मारने का त्याग किया, उसमें दया का महान गुण है।

३९. असंयमी जीवन एवं बालमरण इन दोनों की वांछा नहीं करनी चाहिए। पंडित मरण और संयमी जीवन की वांछा करनी चाहिए।

४०. अव्रती जीव छहकाय के शस्त्र हैं। उनके जीवन को असंयमी जीवन समझना चाहिए। जिन्होंने सब सावद्य योग का त्याग किया है, उनका जीवन संयमी जीवन पहचानें।

४१. साधु तीन करण, तीन योग से षट्कायिक जीवों के रक्षक हैं। वे उनके प्रति निरन्तर दया भाव रखते हैं। वे षट्काय के रक्षक साधु षट्काय को मारने में धर्म किस आधार से कहें?

४२. छ काय रा जीवां नें हणें संसारी, त्यारें विचें पडें नहीं जायो जी।
विचें पड्यां वरत भागें साधु रों, ते विकलां नें खबर न कायो जी॥

४३. केइ तों कहें साधां नें विचें न परणों , केई कहें विचें परणों जी।
साधां नें समभावें रहणों, ते विकलां रे नही छें निरणो जी॥

४४. साधां नें विचे परणों त्रिविधे नषेध्यो, ते हणतां विचें न पड़ें जायो जी।
पिण ग्रहस्थ नें धर्म कहं विच पड़ीयां, तो घर रा धर्म कांय गमायो जी॥

४५. हणें जीतव नें परसंसा रे हेतें, हणें मांन नें पूजा रें कांमो जी।
वले जनम मरण मूकावा हणें छें, हणें दुख गमावण तांमो जी॥

४६. यां छ कारणां छ काय नें मारें तो, अहेत रो कारण थावें जी।
जन्म मरण मूंकावण हणें तो, समकत रतन गमावें जी।।

४७. ए छ कारणें छ काय नें मार्‍यां, आठ करमां री गांठ बंधायो जी।
मोह नें मार वधे घणी निश्चें, वले पडे नरक में जायो जी।।

४८. अर्थ अनर्थ हिंसा कीधां, अहेत रो कारण तासो जी।
धर्म रें कारण हिंसा कीधां, बोध बीज रो न्हासो जी॥

४९. छ कारणें छ काय नें मारें, ते तो दुख पांमें इण संसारो जी।
ए तो आचारंग रे पेंहलें अधेनें, छ उदेसा में कह्यों विसतारो जी॥

४२. संसारी पाणी छह ही काय के जीवों की हिंसा करते हैं। साधु उनके बीच नहीं पड़ते। बीच में पड़ने से साधु का व्रत भंग होता है। विवेकशून्य लोगों को कोई खबर नहीं पड़ती।

४३. कुछ तो कहते हैं—साधु को बीच में नहीं पड़ना चाहिए और कुछ कहते है—उन्हें बीच में पड़ना चाहिए। साधु को तो समभाव में ही रहना चाहिए। किन्तु विवेक शून्य लोक यह निर्णय नहीं कर पाते।

४४. साधु को बीच में पड़ने का तीन करण, तीन योग से निषेध है। इसलिए वे हिंसा करते समय बीच में नहीं जाते। फिर भी गृहस्थ के बीच में पड़ने में धर्म कहते है। तब उन्होंने घर के धर्म को (आत्मधर्म) क्यों खोया ?।

४५. जीवों की हिंसा की जाती है - प्रशंसा, सम्मान, पूजा, जन्म-मृत्यु से मुक्ति पाने के लिए एवं दु:ख को मिटाने के लिए।

४६. इन छह कारणों से छहकाय के जीवों की हिंसा की जाती है तो वह अहित का कारण बनती है। यदि जन्म-मरण से मुक्ति पाने के लिए हिंसा करता है, तो वह सम्यक्त्व रत्न खोता है।

४७. इन छह कारणों से छहकाय के जीवों की हिंसा करने से आठ कर्मों की ग्रन्थि बंध जाती है। मोह और मार (जन्म-मरण) की निश्चय में वृद्धि होती है और जीव नरकगामी बनता है।

४८. अर्थ या अनर्थ (प्रयोजन, बिना प्रयोजन) किसी भी प्रकार की हिंसा की जाए वह अहित का कारण बनती है। धर्म के लिए हिंसा करने से बोधिबीज का नाश होता है।

४९. छह कारणों से छहकाय के जीवों की हिंसा करता है, वह इस संसार में दु:ख पाता है। आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन के छ उद्देशकों में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

५०. केइ समण माहण अनार्य पापी, करें हंसा धर्म री थापो जी।
कहे प्राण भूत जीव नें सतव, धर्म हेतें हण्यां नही पापो जी॥

५१. एहवी उंधी परूपणा करें अनार्य, त्यांनें आर्य बोल्या धर पेमो जी।
थे भूंडों दीठों नें भूंडो सांभलीयों, भूंडो मांन्यो भूंडो जांण्यों एमो जी॥

५२. जीव मारयां में धर्म परूपें, अें तो अनार्य री वांणो जी।
ते तो मूंढ मिथ्याती भारीकरमा, त्यांरी सुध बुध नही ठीकांणो जी॥

५३. तिण हंसा धर्मी नें आर्य पूछ्यो, थांनें मारयां धर्म कें पापो जी।
जब कहें मांनें मारयां छें पाप एकंत, साच बोले कीधी सुध थापो जी॥

५४. जब आर्य कहें थांनें मारयां पाप छें, तो सर्व जीव नें इम जांणो जी।
ओरां नें मारयां धर्म परूपें, थे कांय बूडो कर कर तांणो जी॥

५५. इम हिंसाधर्मी अनार्य त्यांनें, कीधा जिण मारग सूं न्यारा जी।
जोवों आचारंग चोथा धेन माहे, बीजे उदेसें विसतारो जी॥

५६. ओरां नें मार्यां धर्म परूपें, आप नें मारयां कहें पापो जी।
आ सरधा विकलां री उंधी, तिणमें कर रह्या मूंढ विलापो जी॥

५७. अर्थ अनर्थ धर्म रे काजें, जीव हणें छ कायो जी।
तिणनें मंदबूधी कह्यों दसमां अंग में, पेंहला अधेन रें माह्यो जी॥

५८. छ काय रा जीवां रो घमसांण करनें, श्रावकां नें जीमावें जी।
उणनें मंदबूधी तों कह दीयो भगवंत, तिणनें धर्म किसी विध थावें जी॥

५०. कुछ पापी-अनार्य श्रमण-ब्राह्मण हिंसा-धर्म की स्थापना करते हैं। वे कहते हैं—धर्म के लिए प्राण, भूत, जीव, सत्व की हिंसा करने में पाप नहीं है।

५१. इस प्रकार की विपरीत प्ररूपणा अनार्य लोग करते हैं। उन्हें आर्यलोग प्रेम से कहते हैं—यह तुमने बुरा देखा है। बुरा सुना है। बुरा माना है और बुरा जाना है।

५२. जीव मारने में धर्म कहना—यह अनार्य की वाणी है। वे मूढ़ मिथ्यात्वी भारीकर्मा जीव हैं। उनकी समझ ठिकाने—मूल पर केन्द्रित नहीं है।

५३. उन हिंसाधर्मियों से आर्य ने पूछा—तुम्हें कोई मारे तो वह धर्म है या पाप? तब तो वे कहते हैं—हमें मारने में एकान्त पाप है। यों पूछने पर तो सत्य बोलते हैं। शुद्ध श्रद्धा की स्थापना करते हैं।

५४. तब आर्य कहते हैं—तुम्हें मारने में यदि पाप होता है तो सब जीवों के विषय में यही जानना चाहिए। दूसरों को मारने में धर्म की प्ररूपणा कर तुम खींचातान करके क्यों डूब रहे हो?।

५५. इस प्रकार हिंसाधर्मी अनार्य लोगों को जिनमार्ग से अलग किया है। आचारांग सूत्र के चतुर्थ अध्ययन के दूसरे उद्देशक में इसका विस्तृत वर्णन है, उसे देखें।

५६. अन्य जीवों को मारने में धर्म कहते हैं और स्वयं को मारने में पाप कहते हैं। मूर्ख और विवेकहीन लोगों की यह श्रद्धा विपरीत तथा प्रलाप मात्र है।

५७. जो प्रयोजन से अथवा बिना प्रयोजन से छहकाय के जीवों की हिंसा करता है, उसे दशवें अंग प्रश्न व्याकरण सूत्र के प्रथम अध्ययन (सूत्र १८) में मंद बुद्धि वाला कहा गया है।

५८. जो छहकाय के जीवों की हिंसा करके श्रावकों को भोजन कराता है। भगवान ने जब उसे मंद बुद्धि कहा है तो फिर श्रावकों को खिलाने में धर्म कैसे होगा?।

५९. कोइ तों जीवां नें मार खवावें, केई जीव खवावें आखा जी।
तिण माहे एकंत धर्म परूपें, ते अनार्य री भाखा जी॥

६०. केई जीव मास्यां माहे धर्म कहें छें, ते पूरा अग्यांनी ऊंधा जी।
त्यांनें जांण पुरुष मिलें जिण मारग रो, किण विध बोलावें सूधा जी॥

६१. लोह नो गोळो अगन तपाए, ते अगन वर्ण करें तातो जी।
ते पकड संडास आयों त्यां पास, कहे बलतो गोळा थे झालो हाथो जी॥

६२. जब पाखंडीयां हाथ पाछो खांच्यों, तब जांण पुरूष कहें त्यांनें जी।
थे हाथ पाछो खांच्यों किण कारण, थांरी सरधा म राखों छांनें जी॥

६३. जब कहें गोळों म्हें हाथे ल्यां तो, म्हांरों हाथ बळें लागें तापो जी।
तो थारा हाथ बाळें तिणनें पाप के धर्म, जब कहं उणनें लागां पापो जी॥

६४. थांरो हाथ बाळे तिणनें पाप लागें तों, ओरां नें मास्यां धर्म नांही जी।
थे सर्व जीव सरीखा जांणों, थे सोच देखों मन मांही जी॥

६५. जे जीव मास्यां में धर्म कहें ते, रूळें काल अनंतो जी।
सूंयगडाअंग अधेन अठारमें, तिहां भाख गया भगवंतो जी॥

६६. थांनक करावें छ काय हणे ते, करें अनंत जीवां री घातो जी।
अहेत नो कारण निश्चें हुवो छें, धर्म जांणें तों आयो मिथ्यातो जी॥

६७. जब कहें म्हें थांनक करावां तिणमें, जांणां छां एकंत पापो जी।
तिण कहवा नें पाप कह्यों झूठ बोले, सरधा गोप विगोयो आपो जी॥

५९. कुछ लोग जीवों को मारकर खिलाते हैं और कुछ लोग ज्यों का त्यों कच्चा धान खिला देते हैं। उसमें एकान्त धर्म की प्ररूपणा करना अनार्य-वचन है।

६०. कुछ लोग जीव मारने में धर्म कहते हैं। वे पूर्णतया अज्ञानी एवं विपरीत हैं। उन्हें जब कोई जिन-मार्ग का जानकार पुरुष मिलता है तो वे उनसे सीधी बात कैसे करेंगे?।

६१. कोई पुरुष लोहे के गोले को तपाकर अग्नि-वर्ण जैसा लाल बनाकर उसे संड़ासे से पकड़ कर उन लोगों के पास आकर बोला-यह जाज्वल्यमान तप्त गोला, आप अपने हाथ में लीजिए।

६२. जब उन पाखंडियों ने अपना हाथ वापिस खींच लिया। तब उस ज्ञानी-पुरुष ने उनसे कहा-तुमने अपना हाथ पीछे क्यों खींचा? अपनी श्रद्धा को छुपाकर मत रखो।

६३. तब वे कहते हैं यदि गोला हाथ में लें तो हमारा हाथ जलता है, ताप लगता है। बताओ जो तुम्हारा हाथ जलाता है उसे पाप होता है या धर्म? तब कहते हैं पाप लगता है।

६४. जो तुम्हारा हाथ जलाता है, उसे पाप लगता है तो दूसरों को मारने में धर्म नहीं हो सकता। तुम्हें सब जीवों को समान समझना चाहिए। मन में विचार करके देख।

६५. जो व्यक्ति जीव मारने में धर्म बताता है, वह अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है। सूत्रकृतांग सूत्र के अठारहवें अध्ययन (सूत्र ७८) में भगवान महावीर ने ऐसा कहा है।

६६. षट्कायिक अनन्त जीवों की हिंसा करके स्थानक बनवाते हैं। यह निश्चित ही अहित का कारण है। उसे धर्म समझे तो मिथ्यात्व आती है।

६७. तब वे कहते हैं—हम स्थानक बनवाते हैं, उसमें एकान्त पाप समझते हैं। यह तो केवल कहने के लिए कहा जाता है, परन्तु झूठ बोलकर मान्यता को छुपाकर अपने अस्तित्व को खोया है।

६८. कोई मिनख आंतरीयों छें तिण कालें, धन उदकें थांनक काजो जी।
जो उ पाप जांणें तो परभव जातें, इसडों कांय कीयों अकाजो जी॥

६९. घर रो धन देनें जीव मराया, ते अर्थ न दीसें कांई जी।
अनर्थ पिण जांण्यों नही दीसें, धर्म जांण्यों दीसें तिण मांही जी॥

७०. हिंसा री करणी में दया नही छें, दया री करणी में हिंसा नांही जी।
दया नें हंसा री करणी छें न्यारी, ज्यूं तावडो नें छांही जी॥

७१. ओर वसत में भेल हुवें पिण, दया में नही हिंसा रो भेलो जी।
ज्यूं पूर्व नें पिछम रों मारग, किण विध खाये मेलो जी॥

७२. केई दया नें हिंसा री मिश्र करणी कहे, ते कूडा कुहेत लगावें जी।
मिश्र थापण नें मूढ मिथ्याती, भोला लोकां नें भरमावें जी॥

७३. जो हिंसा कीयां थी मिश्र हुवें तो, मिश्र हुवे पाप अठारो जी।
एक फिर्‌यां अठारे फिरे छें, कोइ बुधवंत करजो विचारो जी॥

७४. जिण मारग री नींव दया पर, खोजी हुवे ते पावें जी।
जो हिंसा मांहें धर्म हुवे तो, जल मथीयां घी आवें जी॥

७५. संवत अठारें वरस चमाले, फागुण सुद नवमीं रिववारो जी।
जोड़ कीधी दया धर्म दीपावण, बगड़ी सहर मझारो जी॥

६८. कोई मनुष्य जीवन के अंतिम समय अपना धन स्थानक के लिए दान देता है। यदि वह इसे पाप समझता है तो परभव जाते समय ऐसा अकार्य क्यों करता है?

६९. अपना धन देकर जीवों को मरवाया—यह अर्थ हिंसा हुई हो, ऐसा नहीं है। अनर्थ हिंसा भी उसको जाना हो, ऐसा नहीं लगता। संभव यही लगता है कि उसने उसमें धर्म समझा है।

७०. हिंसा युक्त कार्य में दया और दया युक्त कार्य में हिंसा नहीं हो सकती। दया और हिंसा की क्रिया इतनी पृथक् है जितनी कि धूप और छाया।

७१. और वस्तुओं में मिलावट हो सकती है, किन्तु दया में हिंसा की मिलावट नहीं हो सकती। जैसे पूर्व और पश्चिम दिशा के मार्ग मेल कैसे खा सकते हैं?।

७२. कुछ लोग दया और हिंसा इन दोनों से होने वाली संयुक्त क्रिया को "मिश्रक्रिया" कहते हैं। उसके लिए असत्य हेतु लगाते हैं। वे मूढ़ मिथ्यात्वी लोग मिश्रक्रिया की स्थापना करने के लिए भोले लोगों को भरमाते हैं।

७३. यदि हिंसा करने में मिश्रधर्म होता है तो अठारह प्रकार के सभी पापों के करने से भी मिश्रधर्म होगा। एक फिर (बदल) जाने से अठारह ही फिर जाते हैं। बुद्धिमान लोगों को इस पर विचार करना चाहिए।

७४. जैन धर्म की नींव दया पर आधारित है। जो खोजी (गवेषक) होते हैं, वे ही इसे पा सकते हैं। यदि हिंसा में धर्म हो सकता है तो जल मथने से भी घी निकल सकता है।

७५. सं. १८४४, फाल्गुन शुक्ला नवमी, रविवार के दिन बगड़ी शहर में दया धर्म की प्रभावना के लिए इस गीत की रचना की है।

दूहा

१. नमूं वीर सासण धणी, गणधर गोतम सांम।
त्यां मोटा पुरषां रा नांम थी, सीझें आतम कांम॥

२. त्यां घर छोडे संजम लीयों, भगवंत श्री विरधमांन।
बारें वरस नें तेरें पक्षे, छदमस्थ रह्या भगवांन॥

३. त्यां गोसाला नें चेलो कीयो, ते तों निश्चें अजोग साख्यात।
सराग भाव आयों तेह थी, ते पिण छदमस्थ पणा री वात॥

४. तीथंकर साध छदमस्थ थका, चेलों न करें दीख्या देवें नांहि।
धर्मकथा पिण कहे नही, नवमें ठांणे अर्थ माहि॥

५. बारें वरस नें तेरें पक्ष मझे, दीख्या दे चेलों न कर्यो कोय।
एक गोसाला अजोग नें चेलों कीयों, निश्चें होणहार टलें नही सोय॥

६. तीर्थंकर साथे दीख्या लीयें, तिणनें दीख्या दे जिणराय।
पछें केवली हुवें नही त्यां लगें, किण नें दीख्या न देवें त्याहि॥

७. गोसाला नें वीर वचावीयो, छदमस्थ पणा रो सभाव।
मोह राग आयों तिण उपरे, तिणरो विकल न जांणें न्याव॥

८. गोसाला नें वीर बचावीयों, तिणनों मूर्ख थापें धर्म।
सूनें चित बकबो करें, ते भूला अग्यांनी भर्म॥

दोहा

१. शासन अधिनायक भगवान महावीर प्रभु और गणधर गौतम स्वामी को प्रणाम करता हूं। उन महापुरूषों के स्मरण से आत्मिक कार्य सिद्ध होते हैं।

२. भगवान श्री महावीर ने गृहस्थ जीवन को छोड़कर संयम स्वीकार किया। भगवान बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ रहे।

३. भगवान ने गोशालक को अपना शिष्य बनाया। वह वास्तव में ही अयोग्य था। छद्मस्थता के कारण भगवान को राग भाव आया।

४. छद्मस्थ तीर्थंकर साधु अवस्था में दीक्षा देकर किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते। वे धर्म कथा (प्रवचन) भी नहीं करते। स्थानांग के नवमें स्थान के अर्थ में यह उल्लेख हैं।

५. बारह वर्ष और तेरह पक्ष में भगवान ने किसी को शिष्य नहीं बनाया। केवल एक अयोग्य गोशालक को शिष्य बनाया। यह न टल सकने वाली भवितव्यता थी।

६. तीर्थंकरों के साथ जो दीक्षा लेते हैं, उन्हें तीर्थंकर दीक्षा देते हैं, फिर जब तक वे केवली नहीं बन जाते तब तक किसी को दीक्षा नहीं देते।

७. भगवान श्री महावीर को छद्मस्थ स्वभाव के कारण मोह आया और उन्होंने गोशालक को बचाया। विवेक शून्य लोग इस न्याय को नहीं जानते।

८. गोशालक को भगवान महावीर ने बचाया। उसमें मूर्ख व्यक्ति धर्म की स्थापना करते हैं। शून्यचित्त होकर बकवास करते हैं। वे अज्ञानी भ्रम से भ्रमित हो गए हैं।

९. कहें भगवंत दीख्या लीयां पछें, न कीयों किंचित परमाद नें पाप।
जांणतां नें अजांणतां, कहे दोष न सेव्यों जिण आप॥

१०. इम कही कही भोला लोकां भणी, न्हांखे छें फंद माहि।
तिणरो न्याय निरणो जथातथ कहूं, ते सुणजों चित्त ल्याय॥

ढाल - १०

(लय - पाखंड वधसी आरे पांचमे.......)

गोसाला नें बचायो वीर सराग थी रे॥

१. गोसाला नें वचायो वीर सराग थी रे, तिण माहे धर्म नही लिगार रे।
ओ तो निश्चें होणहार टलें नही रे, तिणरो भोला न जांणें मूल विचार रे।

२. कुपातर नें वचायों वीर सराग थी रे, तिणमें म जांणों कोइ कूड रे।
संका हुवें तो भगोती रों अर्थ देखनें रे, खोटी सरधा नें कर दों दूर रे॥

३. भारीकर्मा जीवां ने समझ पडें नही रे, ते तो कुगुरां रें बदले बोलें कूड रे।
तांणातांण में जासी तांणीया रे, वहिती अगाध नंदी रे पूर रे॥

४. गोसालो तों अधर्मी अवनीत थो रे, भारीकर्मो कुपातर जीव रे।
वले दावानल छें जिण धर्म रो रे, दुष्ट्यां में दुष्टी घणों अतीव रे॥

५. भगवंत नें झूठा पारण नें पापीयें रे, तिल नें उखणीयो पापी जांण रे।
मिथ्यात पडवजीयो श्री भगवांन थी रे, त्यांरी मूल न राखी पापी कांण रे॥

९. कहते हैं, भगवान ने दीक्षा लेने के बाद ज्ञात एवं अज्ञात किसी भी अवस्था में प्रमाद एवं पाप का आचरण नहीं किया और न किसी अन्य दोष का जिनेश्वर देव ने सेवन किया।

१०. इस प्रकार कहकर अज्ञानी लोगों को मायाजाल में डाल रहे हैं। उस विषय का यथार्थ न्याय एवं निर्णय मैं कहता हूं, उसे ध्यान से सुनें।

ढाल - १०

१. गोशालक को भगवान ने सराग भाव से बचाया। उसमें किंचित भी धर्म नहीं है। यह तो निश्चित होनहार थी जिसे टाला नहीं जा सकता था, किन्तु अज्ञानी इस मौलिक विचार को नहीं समझते।

२. भगवान ने कुपात्र को सरागभाव से बचाया, इसमें जरा भी असत्य मत समझो। यदि किसी को शंका हो तो भगवती सूत्र का अर्थ देखकर गलत श्रद्धा को दूर कर दें।

३. भारीकर्मा जीवों को सही समझ नहीं होती। वे तो कुगुरू के बदले—पक्ष में असत्य बोलते हैं। खींचातान् करने वाले बहती नदी के अथाह बहाव में खींचे जाएंगे।

४. गोशालक तो अधर्मी, अविनीत, बहुकर्मी और कुपात्र जीव था। जैन धर्म के लिए दावानल तुल्य और दुष्टों में अतिदुष्ट स्वभाव वाला था।

५. भगवान महावीर को असत्य प्रमाणित करने के लिए पापात्मा गोशालक ने तिल के पौधे को उखाड़ा। भगवान के प्रति मिथ्यात्व का आचरण किया। उनका जरा भी सम्मान नहीं रखा।

६. जगत तणा सगला चोरां थकी रे,
गोसालो छें इधिको चोर निसंक रे।
वले कूड नें कपट तणो थो कोथलो रे,
तिणरे करडों मिथ्यात तणों छें डंक रे।।

७. तिणनें वीर वचायों बलतों जांण नें रे, लबद फोड़वें सीतल लेस्या मूंक रे।
राग आंण्यों तिण पापी उपरे रे, छदमस्थ गया तिण कालें चूक रे।।

८. केइ भेषधारी भागल इसडी कहे रे, गोसाला नें वचायां हूवो धर्म रे।
त्यां धर्म जिणेसर नों नही ओळख्यो रे, ते तों भूल गया अग्यांनी भर्म रे।।

९. वले कहें छें भगवंत तो घर छोड्यां पछें रे, दोष न सेव्यों मूल लिगार रे।
परमाद किंचत मात्र सेव्यों नही रे, वले आश्रव न सेव्या किण ही वार रे।।

१०. इम कहि कहि नें सचवाया हुवे रे,
पिण एकंत बोलें छें मूसावाय रे।
त्यां धर्म जिणेसर नों नही ओळख्यो रे,
फूटा ढ़ोले ज्यूं बोलें विरुआ वाय रे।।

११. ते झूठ बोलें छें सुध बुध बाहिरो रे,
त्यांरी सरधा री त्यांनें खबर न काय रे।
त्यां विकलां री सरधा नें परगट करूं रे,
ते भवीयण सांभलजो चित ल्याय रे।।

१२. भगवंत आहार कीयों छें जांण ने रे,
तिणमें कहें छें परमाद नें आश्रव पाप रे।
वले निद्रा लीधा में कहें पाप छें रे,
ते निद्रा पिण लीधी भगवंत आप रे।।

६. संसारवर्ती सभी चोरों से गोशालक निश्चय ही बड़ा चोर था। वह झूठ और कपट का थैला था। उसके मिथ्यात्व का बहुत कठोर डंक लगा हुआ था।

७. उसे जलता हुआ जानकर भगवान ने शीतल तेजोलेश्या से बचाया। उस पापात्मा के प्रति भगवान को रागभाव आया। छद्मस्थ होने के कारण भगवान उस समय चूक गए।

८. कुछ व्रतभ्रष्ट वेशधारी ऐसी बात कहते हैं, गोशालक को बचाने में धर्म हुआ। उन्होंने जिनेश्वर देव के धर्म को नहीं पहचाना। वे तो अज्ञानी भ्रम में भूल रहे हैं।

९. और वे लोग कहते हैं भगवान ने गृह त्याग के बाद कभी किंचित् भी दोष का सेवन नहीं किया तथा प्रमाद और अन्य किसी आश्रव का कभी आसेवन नहीं किया।

१०. ऐसा बार बार कहकर वे स्वयं सत्यवादी बनते हैं। परन्तु वे एकांत असत्य बोलते हैं। उन्होंने जिनेश्वर देव के धर्म को नहीं पहचाना है। फूटे ढ़ोल की तरह वे विरूप वचन बोलते हैं।

११. वे सुध बुध भूलकर झूठ बोलते हैं। उन्हें अपनी मान्यता का भी पता नहीं है। मैं उन विकल लोगों की श्रद्धा को प्रगट करता हूं। भव्यजनों! ध्यान लगाकर सुनें।

१२. भगवान जानकर आहार करते थे। उसे वे प्रमाद और पापाश्रव (अशुभ आश्रव) कहते हैं। निद्रा लेने में भी पाप बताते हैं, जबकि भगवान ने नींद भी ली थी।

१३. परमाद न सेव्यों कहें भगवांन नें रे, वले कहिता जाओं पापी परमाद रे।
न्याय निरणो विकला रें छें नही रे, यूंही करे कूडों विषवाद रे॥

१४. मोह कर्म उदें सूं सावद्य सेवीयो रे, छदमस्थ थका श्री भगवांन रे।
अजांणपणें नें विण उपीयोग छें रे, ते बुधवंत सुणो सुरत दे कांन रे॥

१५. दस सुपना पिण भगवंत देखीया रे,
दस सुपनां रो पाप लागों छें आंण रे।
ते पिण दसूं सुपनों रो पाप जू जूओ रे,
तिणरी संका म करजों चतुर सुजांण रे॥

१६. कोइ कहें भगवंत तो घर छोड्या पछें रे,
पाप रो अंस न सेव्यों मूल रे।
जो उवे सुपना देख्यां में पाप परूपसी रे,
तो त्यांरें लेखें त्यांरी सरधा में धूल रे॥

१७. सात प्रकारे छदमस्थ जाणीये रे, कह्यो छें ठाणा अंग सूतर मांहि रे।
हिंस्या लागें छें प्रांणी जीव री रे, वले लागें मिरषा नें अदतज ताहि रे॥

१८. शब्दादिक अस्वादें रागें करी रे, पूजा स्तकार वांछें छें मन माहि रे।
कदे असणादिक पिण सावद्य भोगवे रे, वागरें जेंसों करणी नावें ताहि रे॥

१९. ए सातोइ सावद्य रा थांनक कह्या रे, छदमस्थ सेवें छें किण ही वार रे।
त्यांरो पिण प्राछित जथाजोग छें रे, जांण अजांण सेव्या रो करे विचार रे॥

२०. ए सातोइ बोल न सेवें केवली रे, छदमस्थ पिण निरंतर सेवें नांहि रे।
सेवें तो मोह कर्म उदें हुआं रे, संका हुवें तो जोवों सूतर रे मांहि रे॥

१३. वे कहते हैं भगवान ने प्रमाद का सेवन नहीं किया, और उसके साथ यह भी कहते हैं, यह भगवान का प्रमाद था। विकल लोगों के न्याय, निर्णय कुछ भी नहीं है। ऐसे ही वे असत्य एवं बेमेल (विरोधाभासी) बातें करते रहते हैं।

१४. छद्मस्थ भगवान ने मोहकर्म के उदय से सावद्यकार्य का सेवन किया। वह अज्ञात एवं अनुपयोग अवस्था थी। बुद्धिमानों! ध्यान लगाकर इस बात को सुनें।

१५. भगवान ने दश स्वप्न भी देखे थे। उनका पाप लगा। वह भी दशों स्वप्नों का अलग-अलग पाष लगा। विज्ञजनों को उसमें शंका नहीं करनी चाहिए।

१६. कई लोग कहते हैं कि गृहत्याग के पश्चात् भगवान ने अंशमात्र भी पाप का सेवन नहीं किया। यदि वे स्वप्न देखने में पाप की प्ररूपणा करेंगे तो उनके मतानुसार उनकी श्रद्धा में ही धूल है।

१७-१८. छद्मस्थ को सात बातों से पहचाना जाता है, यह स्थानांग सूत्र (स्थान ७, सूत्र २८) में वर्णन है। हिंसा करने से, झूठ बोलने से, चोरी करने से, शब्दादि विषयों का रागात्मक भाव से आस्वादन करने से, पूजा और सम्मान की मन में इच्छा करने से, कदाचित् सावद्य-आहारादि का भोग करने से, और कथनी-करनी की विषमता से।

१९. ये सातों ही सावद्य-स्थान कहे गए हैं। छद्मस्थ कभी-कभी इनका सेवन कर लेता है। उनके लिए भी यथायोग्य प्रायश्चित्त का विधान है, ज्ञात-अज्ञात में सेवन किए गए सभी अतिचारों का विचार किया गया है।

२०. इन पूर्वोक्त सातों ही बातों का केवली सेवन नहीं करते और छद्मस्थ भी उनका निरंतर सेवन नहीं करते। मोहकर्म का उदय होने से ही सेवन करते हैं। यदि शंका हो तो सूत्रों में देख लें।

२१. गोसाला नें वीर बचायों तिण दिनें रे,
छदमस्थ हुंता जिण दिन भगवांन रे।
मोह राग आयों भगवंत नें तिण दिनें रे,
निश्चें होणहार टालण नही आसांन रे॥

२२. छदमस्थ थकां पिण श्री भगवांन नें रे, समें समें लागता कर्म सात रे।
मोह कर्म विशेष थकी उदें हुवो रे, कुपातर नें वचाय लीधों साख्यात रे॥

२३. गोसालो दावानल श्री जिण धर्म नों रे, ते दुष्टयां में दुष्टी घणों अतीव रे।
वले कोथलो कूड कपट रों तेहनें रे, वचायां रा फल सुणों भव जीव रे॥

२४. गोसालें तेजू लेस्या मेलनें रे, दोय साधां री कीधी घात रे।
उंधो अवलों बोल्यों भगवांन नें रे, वीर सूं पडवजीयों मिथ्यात रे।
कुपातर नें वचायां धर्म किहां थकी रे॥

२५. वले लेस्या मेली पापी वीर नें रे, त्यांरी पिण एकंत करवा घात रे।
तिण जांण्यो जमाउ सासण माहरो रे, एहवों गोसालों दुष्ट कुपात रे॥

२६. तिल रो प्रश्न पूछ्यां भगवंते कह्यों रे, सुगली मांहे तिल वताया सात रे।
जब वीर नें झूठा घालण पापीयें रे, तिल उखण नें कीधी घात रे।
पापी नें बचायां धर्म किहां थकी रे॥

२७. तेजू लेस्या सीखाइ गोसाला भणी रे,
तिण लेस्या सूं कीधी साधां री घात रे।
वले लोही ठांण कीधो भगवंत नें रे,
इसडा कांम कीया पापी साख्यात रे॥

२८. गोसाला पापी नें वीर वचावीयों रे, तो वधीयो भरत में घणों मिथ्यात रे।
घणा जीवां नें पापी बोवीया रे, ऊंधी सरधा हीया में घात रे॥

२१. गोशालक को जिस दिन बचाया उस दिन भगवान छद्मस्थ थे। उस दिन भगवान को मोहराग आया, निश्चित भवितव्यता को टालना आसान नहीं है।

२२. छद्मस्थ अवस्था में भगवान के प्रतिसमय सात कर्म लगते थे। मोहकर्म का विशेष उदय हुआ तो उन्होंने कुपात्र गोशालक को साक्षात् बचा लिया।

२३. गोशालक जैन धर्म के लिए दावानल था। वह दुष्टों में अतिदुष्ट और कूड़-कपट का थैला था। उसे बचाने का क्या फल हुआ-भव्यजनों! ध्यान से सुनें।

२४. गोशालक ने तेजोलेश्या को छोड़कर दो साधुओं को मार डाला। वह भगवान से उल्टा-सीधा बोलने लगा और भगवान के साथ मिथ्यात्व का व्यवहार किया। कुपात्र को बचाने से धर्म कहां से होगा।

२५. इसके बाद उसने भगवान की घात सुनिश्चित करने के लिए तेजोलेश्या का प्रयोग किया। उसने सोचा मैं अपना शासन स्थिर करूं। ऐसा दुष्ट एवं कुपात्र था गोशाला।

२६. तिल के विषय में प्रश्न पूछने पर भगवान ने कहा-फली में सात तिल हैं। तब पापी गोशालक ने भगवान महावीर को झूठा करने के लिये तिल के पौधे को उखाड़कर उसे नष्ट कर दिया। ऐसे पापी को बचाने में धर्म कहां से होगा?।

२७. भगवान ने गोशालक को तेजोलेश्या की विधि बतलायी। उसी तेजोलेश्या से उसने साधुओं की घात की और भगवान के लोहीठाण-रक्तस्राव किया। ऐसे कार्य उस पापी गोशालक ने साक्षात् किए।

२८. गोशालक को भगवान ने बचाया, उससे भरत क्षेत्र में बहुत मिथ्यात्व बढ़ा। उस पापात्मा ने बहुत लोगों के हृदय में विपरीत श्रद्धा डाल कर उन्हें डुबो दिया।

२९. कूड कपट करे नें पापीये रे, झूठोइ सासण दीयो थाप रे।
अणहूंतो तीर्थंकर वाज्यो लोक में रे, वीर नों सासण दीयों उथाप रे॥

३०. गोसाला नें वीर वचायों तठा पछे रे, घणां जीवां रें हुवो विगाड रे।
ओ पापी धाडायत हूवो धर्म रो रे, इण गुण तों न कीधो मूल लिगार रे॥

३१. गोसाला पापीडो वचीयां पछे रे, तिण कीधा पीपाडे अनेक अकाज रे।
तिण दुष्टी नें वचायां धर्म किहां थकी रे, विकलां नें मूल न आवें लाज रे॥

३२. गोसाला नें बचायां धर्म कहें तके रे,
गोसाला रा केडायत जांण रे।
त्यां धर्म न जांण्यों श्री जिणराज रो रे,
यूं ही बूडें अग्यांनी कर कर तांण रे॥

३३. जो धर्म होसी गोसाला नें वचावीयां रे,
तो छ ही काय वचायां होसी धर्म रे।
जो उवे जीव वचा धर्म गिणें नही रे,
तो विकलां री सरधा रो नीकल्यों भर्म रे॥

३४. गोसाला नें वीर वचायों जिण विधे रे,
श्रावक नें तिण विध वचावें नांहि रे।
कहे छें तिण हीज विध करें नही रे,
तो धूर छें त्यांरी सरधा मांहि रे॥

३५. पेट दुखे छें सो श्रावकां तणा रे, जूदा हुवें छें जीव नें काय रे।
साध पधार्‌या छे तिण अवसरे रे, त्यांरें हाथ फेरें तो साता थाय रे॥

३६. लबदधारी तों साध पधार्‌या देख नें रे, ग्रहस्थ बोल्या छें इम वाय रे।
हाथ फेरो त्यांरा पेट उपरें रे, नही फेरो तो श्रावक जीवा जाय रे॥

२९. झूठ, कपट के द्वारा उस पापी ने मिथ्या शासन की स्थापना की। स्वयं तीर्थंकर न होते हुए भी तीर्थंकर कहलाया और महावीर के शासन को उत्थापित किया।

३०. भगवान के द्वारा गोशालक को बचाने के बाद बहुत सारे लोगों का बिगाड़ हुआ। वह पापात्मा तो धर्म का डाकू था। इसने गुण तो किंचित भी नहीं किया।

३१. बचने के बाद उस पापी ने अनेक अकार्य किए। उस दुष्ट को बचाने में धर्म कैसे हुआ? विवेक शून्य लोगों को जरा भी संकोच नहीं होता।

३२. गोशालक को बचाने में धर्म कहने वाले उनके ही अनुगामी हो सकते हैं। उन्होंने जिनेश्वर देव के धर्म को नहीं समझा है।अज्ञानी यों ही खींचातान करके डूब रहे हैं।

३३. यदि गोशालक को बचाने में धर्म होता तो छह ही काय के जीवों को बचाने में धर्म होगा। यदि उन जीवों को बचाने में वे धर्म नहीं मानते तो विवेक शून्य लोगों की श्रद्धा का भ्रम निकल जाता है।

३४. जिस विधि से भगवान महावीर ने गोशालक को बचाया, उस विधि से श्रावकों को नहीं बचाते। जैसा कहते हैं वैसा करते नहीं तो उनकी श्रद्धा में धूल है।

३५. सौ श्रावकों का पेट दर्द कर रहा है। शरीर और प्राण अलग हो रहे हैं। उस समय साधु आए, यदि वे पेट पर हाथ फिराएं तो साता हो सकती है।

३६. लब्धिधारी साधुओं को आए देखकर गृहस्थों ने कहा—उनके पेट पर हाथ फिराएं, नहीं तो वे श्रावक मर जाएंगे।

३७. जब कहें मांनें तो हाथ न फेरणा रे,
अें मरों भावें दुखी घणा हुवों तांम रे।
मरणों जीवणों मूल न वांछें तेहनो रे,
म्हारें ग्रहस्थ सूं कांइ कांम रे॥

३८. तो गोसाला दुष्टी नें वीर वचावीयों रे,
तिण माहे कहो छें निकेवल धर्म रे।
तो श्रावक मरता नें नही वचावीयां रे,
त्यांरी सरधा रो त्यांहीज काढ्यों भर्म रे॥

३९. श्रावक नें वचायां धर्म गिणें नही रे,
गोसाला नें वचायां गिणें धर्म रे।
ते ववेक विकल छें सुध बुध बाहिरा रे,
उंधी सरधा सूं बांधे पाप कर्म रे॥

४०. गोसाला पापी दुष्टी रे कारणें रे, लब्द फोडवी छें श्री जगनाथ रे।
तो सो श्रावक जीवा मरता देख नें रे, ते कांय न फेरे त्यांरें हाथ रे॥

४१. धर्म कहें गोसाला नें वचावीयां रे,
तो पोतें कांय छोडी धर्म री रीत रे।
सों श्रावक मरता नें वचावे नही रे,
त्यां विकलां री विकल करें परतीत रे॥

४२. गोसाला दुष्टी नें वीर वचावीयो रे,
तिण माहे धर्म कहें साख्यात रे।
सो श्रावक मरतां नें नही वचावीयां रे,
त्यां विकलां री विगड़ी सरधा वात रे॥

४३. श्रावक आखुड़ नें पड मरतों हुवें रे, जिण नें पड़तां झेलें राखें नांहि रे।
गोसाला नें वचायां कहे धर्म छें रे, ओं पिण अंधारों त्यांरें मांहि रे॥

३७. तब कहते हैं, हमें हाथ फेरना नहीं है। चाहे वे श्रावक मरें अथवा बहुत दु:खी हों। हम उनका जीना, मरना कुछ भी नहीं चाहते। हमें गृहस्थ से क्या काम है?।

३८. दुष्ट गोशालक को भगवान ने बचाया उसमें तो एकांत धर्म कहते हैं, और मरते हुए श्रावकों को नहीं बचाते। उनकी (अपनी) श्रद्धा का उन्होंने ही भ्रम प्रगट कर दिया।

३९. श्रावक को बचाने में धर्म नहीं मानते और गोशालक को बचाने में धर्म मानते हैं। वे विवेक शून्य, सुध बुध से रहित हैं। विपरीत श्रद्धा से पाप कर्म का बंधन करते हैं।

४०. जब पापात्मा दुष्टी गोशालक के लिए भगवान महावीर ने लब्धि फोड़ी तो सौ श्रावकों को मरते देखकर वे उनके हाथ क्यों नहीं फेरते?।

४१. गोशालक को बचाने में धर्म कहते हो तो स्वयं उस धर्म की रीति को क्यों छोड़ते हो? मरते हुए सौ श्रावकों को नहीं बचाते। ऐसे विवेक शून्य लोगों का विवेक शून्य लोग ही विश्वास करते हैं।

४२. दुष्टात्मा गोशालक को भगवान महावीर ने बचाया, उसमें तो साक्षात धर्म कहते हैं, किन्तु मरते हुए सौ श्रावकों को नहीं बचाते। ऐसे विवेक भ्रष्ट लोगों की श्रद्धा और बात दोनों ही बिगड़ गई।

४३. श्रावक टकराकर गिर रहा है। उसे सहारा देकर रक्षा नहीं करते और गोशालक को बचाने में धर्म कहते हैं। यह भी उनके भीतर अंधेरा है।

४४. ग्यांन दर्शण ने देस चारित श्रावक मझे रे,
गोसालो तों एकंत अधर्मी जांण रे।
तिणनें बचायां धर्म किहां थकी रे,
तिणरों न्याय न जांणें मूढ अयांण रे॥

४५. गोसाला नें वचायां रो कहें धर्म छें रे, श्रावक नें वचायां कहें पाप रे।
एहवो अंधारो छें विकलां तणे रे, उंधी सरधारी कर राखी छें थाप रे॥

४६. बारें वरस नें तेरें पख मझे रे,
छदमस्थ रह्या छें श्री भगवांन रे।
तिणमें एक गोसाला नें वचावीयो रे,
किणनें न वचाया श्री विरधमांन रे॥

४७. गोसाला नें दुष्टी नें बचावीयां रे,
जो धर्म कठेइ जांणे सांम रे।
तो दोनूंइ साध वचावत आपणा रे,
वले रात दिन करता ओहीज कांम रे॥

४८. गोसाला दुष्टी नें वचावीयां रे,
तिण माहे धर्म जांणें जिणराय रे।
दोय साध मरता नही राख्या आपणा रे,
ओ पिण किण विध मिलसी न्याय रे॥

४९. अकाले जगत नें मरतो देखीया रे,
पिण आडा न दीधा भगवंत हाथ रे।
धर्म हुवे तो भगवंत आघो नही काढ़ता रे,
निश्चेंइ तिरण तारण जगनाथ रे॥

५०. अनंत चोबीसी तो आगें हुइ रे, हिवडा तों रिषभादिक चोवीस रे।
त्यां तास्या भव जीवा नें समझाय नें रे,
पिण मरता न राख्या श्री जगदीश रे॥

४४. श्रावक में ज्ञान, दर्शन और देश चरित्र तीनों होते हैं। गोशालक तो एकांत अधर्मी था। उसे बचाने में धर्म कैसे होगा? मूर्ख अज्ञानी लोग इस न्याय को नहीं समझते।

४५. गोशालक को बचाया इसमें धर्म कहते हैं और श्रावकों को बचाने में पाप। विवेक रहित लोगों के घट में इतना अंधेरा है। उन्होंने विपरीत श्रद्धा की स्थापना करली है।

४६. बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक भगवान छद्मस्थ रहे। उस अवस्था में केवल एक गोशालक को बचाया और किसी को नहीं बचाया।

४७. यदि गोशालक को बचाने में भगवान कोई धर्म समझते तो अपने दोनों ही साधुओं को बचाते और रात दिन यही काम करते।

४८. दुष्ट गोशालक को बचाया, उसमें जिनेश्वर देव ने धर्म जाना, परन्तु अपने मरते दो संतों को नहीं बचाया। यह न्याय कैसे मिलेगा?।

४९. भगवान ने अकाल मृत्यु से मरते जगत को देखा, परन्तु उन्होंने कभी उनके संरक्षण के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। धर्म होता तो भगवान विलम्ब नहीं करते, क्योंकि भगवान तो निश्चय में तरण तारणहार होते हैं।

५०. अनंत चौबीसियां तो पहले हो चुकी हैं, और ऋषभ आदि चौबीस-तीर्थंकर अब हुए हैं। उन सभी ने भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर तारा, परन्तु उन्हें मरने से बचाने का प्रयत्न कभी नहीं किया।

५१. एक गोसालो वीर वचावीयो रे, ते तों निश्चेंइ होणहार रे।
मोह राग आयो भगवांन नें रे, तिणरो न्याय न जांणें मूढ लिगार रे॥

५२. संवत अठारें तेपनें समें रे,
असाढ़ विद इग्यारस मंगलवार रे।
गोसाला कुपातर नें ओळखावीयो रे,
जोड़ कीधी छें मांढ़ा गांव मझार रे॥

५१. एक गोशालक को भगवान ने बचाया, यह तो निश्चय में होनहार थी। भगवान को मोहानुराग आया था, इस न्याय को मूर्ख नहीं समझ सकते।

५२. सं. १८५३, आषाढ़ कृष्णा एकादशी, मंगलवार के दिन कुपात्र गोशालक की पहचान के लिए मांढ़ा गांव में यह रचना हुई।

दूहा

१. दोय उपगार श्री जिण भाखीया, त्यांरो बुधवंत करजों विचार।
तिणमें एक उपगार छें मोख रों, बीजों संसार नो उपगार॥

२. उपगार करें कोइ मोख रों, तिणरी जिण आगना दे आप।
उपगार करें संसार नों, तिहां आप रहें चुपचाप॥

३. उपगार करें कोइ मोक्ष रो, तिणनें निश्चेंइ धर्म साख्यात।
उपगार करें संसार नों, तिणमें धर्म नही तिलमात॥

४. दोनूं उपगार छें जू जूआ, ते कठेंइ न खाअें मेल।
पिण मिश्र पाखंड्यां परूप नें, कर दीयो भेल सभेल॥

५. कुण कुण उपगार छें मोख रों, कुण-कुण संसार ना उपगार।
त्यांरा भाव भेद परगट करूं, ते सुणजों विसतार॥

ढाल : ११

(लय - आ अणुकंपा जिण आज्ञा में......)

ओं तों उपगार निश्चेंइ मुगत रो।।

१. गिनांन दर्शण चारित नें वले तप,
यां च्यांरा रो कोइ करें उपगार।
तिणनें निश्चेंइ निरजरा धर्म कह्यों जिण,
वले श्री जिण आगना छें श्रीकार।

दूहा

१. श्री जिनेश्वर देव ने दो प्रकार के उपकार बताए हैं। बुद्धिमान लोगों को इसका विचार करना चाहिए। उनमें एक मोक्ष संबंधी उपकार है और दूसरा संसार-संबंधी उपकार है।

२. कोई मोक्ष संबंधी उपकार करता है, वहां जिनेश्वर देव स्वयं आज्ञा देते हैं। यदि कोई सांसारिक उपकार करता है, वहां आप मौन रहते हैं।

३. कोई मोक्ष संबंधी उपकार करता है, उसमें निश्चय ही साक्षात धर्म होता है, किन्तु संसार संबंधी उपकार करता है, उसमें अंश मात्र भी धर्म नहीं होता।

४. दोनों उपकार पृथक् पृथक् हैं। ये कहीं भी मेल नहीं खाते, किन्तु पाखंड़ी लोगों ने मिश्रधर्म की प्ररूपणा करके दोनों उपकारों में मिश्रण कर दिया।

५. कौन-कौन से उपकार मोक्ष के हैं, और कौन-कौन से उपकार संसार के? उनके स्वरूप एवं प्रकारों का वर्णन करता हूं, उसे विस्तार से सुनें।

ढाल : ११

यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

१. ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप इन चारों से संबंधित कोई उपकार करता है, उसे जिनेश्वर देव ने निश्चित ही निर्जरा धर्म कहा है और उसमें जिनेश्वर देव की आज्ञा है।

२. गिनांन दर्शण चारित नें तप,

यां च्यांरा विना कोइ करें उपगार।

तिणनें निश्चेंइ धर्म नही जिण भाख्यों,

वले जिण आगना पिण नही छें लिगार।

ओ तो उपगार संसार तणों छें॥

३. संसार तणों उपगार करें छें, तिणरें निश्चेंइ संसार वधतो जांणों।

मोक्ष तणो उपगार करें त्यांनें, निश्चेंइ नेडी होसी निरवांणों।

ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

४. कोइ दलदरी जीव नें धनवंत कर दें, नव जात रों परिग्रहो देइ भरपूर रे।

वले विविध प्रकारें साता उपजावें, उण रो जाबक दलदर कर दें दूर।

ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

५. छ काय रा सस्त्र जीव इविरती, त्यांरी साता पूछी नें साता उपजावें।

त्यांरी करें वीयावच विविध प्रकारें, तिणनें तीर्थंकर देव तों नही सरावें।

ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

६. ग्रहस्थ री साता पूछ्यां नें वीयावच कीधां,

तिणसूं साध तो होय जाऔं अणाचारी।

तो त्यांरी साता पूछ्यां नें वीयावच कीयां में,

जिण आगनां पिण नही छें लिगारी।

ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

७. साता पूछ्यां तो साधु नें पाप लागें छें,

तो साता कीधां में धर्म किहां थी होवें।

पिण मूढ़ मिथ्याती ववेक रा विकल,

ते श्रीजिण आज्ञा साहमों न जोवें।

ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२. ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारों के बिना कोई भी उपकार करता है, उसमें निश्चय ही न तो जिनेश्वर देव प्ररूपित धर्म है और न जिनेश्वर देव की किंचित आज्ञा है। यह उपकार सांसारिक है।

३. जो सांसारिक उपकार करता है, उसके निश्चित संसार बढ़ता है। जो मोक्ष का उपकार (आध्यात्मिक) करने वाला है, उसके निश्चित ही निर्वाण निकट होता है। यह निश्चित ही मोक्ष का उपकार है।

४. किसी दरिद्र व्यक्ति को नव प्रकार का भरपूर परिग्रह देकर उसको धनवान बना दे और विविध प्रकार की उसे साता (सुख) पहुंचाए एवं उसकी सम्पूर्ण दरिद्रता दूर कर दे, यह उपकार सांसारिक है।

५. अव्रती जीव षट्कायिक जीवों के शस्त्र होते हैं। उनका कुशलक्षेम पूछे, उन्हें साता-सुख प्रदान करे तथा उनकी विविध प्रकार से सेवा करे। उस कार्य की तीर्थंकर भगवान तो प्रशंसा नहीं करते, यह उपकार सांसारिक है।

६. गृहस्थ का कुशलक्षेम पूछने एवं उनकी सेवा करने से साधु अनाचारी हो जाता है। उसकी साता पूछने में तथा सेवा करने में जिनेश्वर देव की बिल्कुल भी आज्ञा नहीं है, यह उपकार सांसारिक है।

७. कुशलक्षेम पूछने में साधु को यदि पाप लगता है तो उसका कुशलक्षेम करने में धर्म कहां से होगा? किन्तु मूर्ख, मिथ्यात्वी, विवेक भ्रष्ट लोग जिनेश्वर देव की आज्ञा की ओर नहीं देखते, यह उपकार सांसारिक है।

८. कोइ मरता जीव नें जीवा वचावें, झाड़ा झपटा करे ओषध देइ तांम।
वले अनेक उपाय करे नें तिणनें, मरतों राख्यों साजो कीयो तमांम।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

९. कोइ मरता जीव नें सूंस करावें, च्यांरू सरणा देइ नें करावें संथारों।
ग्यांन ध्यांन माहे परिणाम चढ़ावें, न्यातीलां सूं देवें मोह उतारों।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

१०. श्रावक नों खांणों पेंणों छें सर्व इविरत में,
ते सेवे तो सावद्य जोग व्यापारों।
वले नव ही जात रो परिग्रह इविरत में,
तिणनें सेवारें छें कोइ वारूंवारो।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

११. श्रावक नों खांणो पेंणों छें सर्व इविरत में,
तिण रों त्याग करावें चढ़ाय वेरागों।
वले नव ही जात रो परिग्रहो इविरत में,
ते छोड़ें छोड़ावें त्यांरें सिर भागो।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

१२. कोइ लाय सूं बलता नें काढ़ वचायों,
वले कूअें पड़तां नें झाल वचायों।
तलाब माहे डूबा नें बारें काढ़ें,
वले उंचा थी पड़ता नें झाले लीयों ताह्यों।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

१३. जनम मरण री लाय थी बारें काढ़ें, भव कूआ माहि थी काढ़ दे बारें।
नरकादिक नीची गति माहे पड़ता नें राखें,
संसार समुद्र थी बारें काढ़ उधारें।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

८. कोई किसी मरते जीव को झाड़ फूंक (मंत्रादि प्रयोग), औषधोपचार तथा अन्य अनेक उपायों से उसको बचाता है। स्वस्थ करता है। यह उपकार सांसारिक है।

९. कोई मरते जीव को किसी प्रकार का त्याग कराते हैं अथवा चारों शरण दिराकर उसे आमरण अनशन कराते हैं। पारिवारिक जनों से मोह घटाकर ज्ञान, ध्यान में उसके परिणाम बढ़ाते हैं। यह निश्चित ही मोक्ष का उपकार है।

१०. श्रावक का खाना-पीना सब अव्रत में है। उसका सेवन करते हैं तो सावद्य योग की प्रवृत्ति है और नव ही प्रकार का परिग्रह अव्रत में है। उसका कोई बार-बार सेवन कराते हैं, यह उपकार सांसारिक है।

११. श्रावक का खाना-पीना सब अव्रत में है। वैराग्य बढ़ाकर यदि कोई उसका त्याग कराता है और नौ ही प्रकार का परिग्रह अव्रत में है उसको छोड़ता है या छुड़ाता है, वह भाग्यशाली है। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

१२. कोई अग्नि में जलते मनुष्य को बाहर निकाल लेता है। कोई कूए में गिरते व्यक्ति को संभालकर बचा लेता है। कोई तालाब में डूबते व्यक्ति को बाहर निकाल लेता है और कोई ऊपर से गिरने वाले व्यक्ति को झेल कर बचा लेता है। ये उपकार सांसारिक हैं।

१३. जन्म मरण की अग्नि तथा भवकूप से जो व्यक्ति को बाहर निकालते हैं, नरक आदि नीच गतियों में जाने से बचाते हैं और संसार सागर से बाहर निकालकर उसका उद्धार करते हैं। यह निश्चित ही मोक्ष के उपकार है।

१४. किण रें लाय लागी घर बलें छें तिणमें,
नांन्हा मोटा जीव बलें लाय मांहि।
कोइ लाय बुझाय त्यांनें बारें काढ़े,
घणां रे साता कीधी लाय बुझाय।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

१५. किण रें त्रिसणा लाय लागी घट भिंतर,
ग्यांनादिक गुण बलें तिण मांय।
उपदेस देइ तिणरी लाय बुझावें,
रूंम रूंम में साता दीधी वपराय।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

१६. कोइ टाबर पाले नें मोटा करें छें, आछी आछी वस्त तिण नें खवाय।
वले मोटें मंडाण करे परणावें, वले धन माल देवें कमाय कमाय।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

१७. कोइ बेटा नें रूड़ी रीत समझाए,
धन माल सगलोइ देवें छुड़ाय।
कांम भोग अस्त्रीयादिक खावों नें पीवों,
भली भांत सूं त्याग करावें ताहि।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

१८. मात पिता री सेव करें दिन रात, वले मन मांन्या भोजन त्यांनें खवावें।
वले कावड़ कांधें लीयां फिरें त्यांरी, वले बेहूं टकां रो सिनांन करावें।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

१९. कोइ मात पिता नें रूड़ी रीतें, भिन भिन कर नें धर्म सुणावें।
ग्यांन दर्शण चारित त्यांनें पमावें, कांम भोग शब्दादिक सर्व छुड़ावें।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

१४. किसी के घर में आग लगी, वह जल रहा है। उसमें छोटे-बड़े कई जीव भी जल रहे हैं। कोई उस आग को बुझाकर उन जीवों को बाहर निकालता है उस आग को बुझाकर अनेक जीवों को साता पहुंचाता है। यह उपकार सांसारिक है।

१५. किसी व्यक्ति के घट में तृष्णा की आग लगी है। जिसमें ज्ञानादि गुण जल रहे हैं। किसी ने उपदेश देकर उसके भीतर की आग को बुझाया, उसके रोम-रोम में सुख-संचार किया। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

१६. कोई व्यक्ति बालक को पाल-पोषकर मनोज्ञ पदार्थ खिला पिलाकर बड़ा करता है। फिर बड़े ठाठ से उसका विवाह करता है। फिर कमा-कमा कर धनमाल देता है। यह उपकार सांसारिक है।

१७. कोई व्यक्ति अपने पुत्र को भलीभांति प्रतिबोध देकर धन-माल छुड़ाता है। स्त्री संबंधी काम-भोग एवं खाना-पीना आदि सबका भली भांति से त्याग कराता है। यह निश्चय ही मोक्ष उपकार है।

१८. कोई दिन रात माता-पिता की सेवा करता है और उन्हें मनोज्ञ भोजन कराता है। उन्हें कावड़ में बिठा कंधे पर उठाकर घूमता है और दोनों समय उन्हें स्नान कराता है। यह उपकार सांसारिक है।

१९. कोई व्यक्ति माता-पिता को अच्छी तरह से भेद-प्रभेद करके धर्म सुनाता है। उन्हें ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति कराता है और काम भोग रूप शब्दादि विषयों को छुड़ाता है। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

२०. जिण रों खांणों पेंणों गेंहणों इविरत में छें,
तिणनें मन मांनें ज्यूं खवावें पीवावें।
वले मांगे जिको तिणनें धन धांन आपें,
वले विवध पणें तिणनें साता उपजावें।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२१. जिण रों खांणों पेंणों गेहणों इविरत में छें,
तिणनें उपदेस देइ नें परा छुड़ावें।
तिणरें ग्यांनादिक गुण घट में घालें,
तिणरी त्रिसणा लाय नें परी मिटावें।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

२२. किण रा वाला काढ़ें किण रा कीड़ा काढ़ें,
वले लटां जूंआदिक काढ़ें छें ताहि।
कानसिलाया बगादिक काढ़ें,
घणी साता उपजावें शरीर रें माहि।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२३. किण रे वाला कीड़ा नें लटां जूआदिक,
शरीर में उपना जीव अनेक।
तिणनें बारें काढ़ण रा त्याग करावें,
कहें सरीर बारें काढ़णों नही छें एक।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

२४. ग्रहस्थ भूलों उजाड़ वन में, अटवी नें वले उजड़ जावें।
तिणनें मारग वताय नें घरे पोहचावें, वले थाका हुवें तों कांधे बेसावें।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२५. संसार रूपणी अटवी में भूला नें, ग्यांनादिक सुध मारग वतावें।
सावद्य भार ने अलगों मेलाए, सुखे सुखे सिवपुर में पोहचावें।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो॥

२०. जिसका खाना-पीना, आभूषण आदि अव्रत में है, उसे मनचाहे ढंग से कोई खिलाता-पिलाता है। वह जो चाहता है, उसे वह धन-धान्य देता है। विविध प्रकार से साता (सुख) पहुंचाता है। यह सांसारिक उपकार है।

२१. जिसका खाना-पीना, आभूषण आदि अव्रत में है, उसे उपदेश देकर दूर छुड़ा देता है। उसके भीतर ज्ञानादि गुण भरता है और उसकी तृष्णाग्नि को निश्चय मिटा देता है। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

२२. कोई व्यक्ति किसी के शरीर से नहरूआ, कीडा, लट, जूं, कनखजूरा, बग आदि निकाल देता है। उसे शारीरिक बहुत साता पहुंचाता है। यह उपकार सांसारिक है।

२३. किसी व्यक्ति के शरीर में पूर्वोक्त जीव जूं आदि उत्पन्न हो गए हैं, किसी व्यक्ति ने एक भी जीव को शरीर से बाहर निकालने का त्याग कराया, यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

२४. कोई गृहस्थ मार्ग भूलकर जंगल में भटक गया और उजड़ चलता जा रहा है। उसे कोई व्यक्ति मार्ग बताकर, थका हो तो कंधे पर बिठाकर उसके घर पहुंचा देता है। यह उपकार सांसारिक है।

२५. संसार रूप अटवी में भटके हुए व्यक्ति को यदि कोई ज्ञानादि का शुद्ध मार्ग बताता है, उसके पापरूप भार को दूर रखवाकर सुख शांति पूर्वक उसे मोक्ष पहुंचा देता है। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

२६. नाग नागणी हुंता बळता लकड़ा में,
त्यांनें पारसनाथजी काढ्या कहें छें बार।
अगन में बळता नें राख्या जीवता,
पांणी नें अगनादिक रा जीवां नें मार।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२७. पारसनाथजी घर छोड़े काउसग कीधो जब,
कमठ उपसर्ग कर वरषायों पांणी।
जब पदमावती हेठें कीयों सिंघासण,
धरणिंद्र छत्र कीयों सिर आंणी।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

२८. नाग नागणी ने नोकार सुणाए, च्यारूं सरणा नें सूंस दराया जांणी।
ते सुभ परिणांमां सूं मर नें हूआ, धरणिंद्र नें पदमावती रांणी।
ओ तो उपगार निश्चेइ मुगत रो।

२९. सुग्रीव सूं उपगार कीयों राम लछमण,
जब सुग्रीव हुवों त्यांरो सखाइ।
सीता री खबर आंणें रावण नें मरायो,
तिण पाछों उपगार कीयों भीड़ आइ।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

३०. कोइ दुष्टी जीव जूं नें मारतो थो, तिणनें वरजे नें जूं नें वचाइ।
ते जूं रो जीव मनख हुवों जब, इण रों कजीयों इण पिण दीयों मिटाइ।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

३१. धणी रा मूंढ़ा आगें सेवग मरे नें,
धणीं नें जीवतों कुसले खेमें काढें।
जब धणी तूठों थको रिजक रोटी दें,
इण रो इहलोक रो कांम सिराड़े चाढ़ें।
ओ तो उपगार संसार तणों छे।।

२६. कहते हैं—लक्कड़ में जलते हुए नाग नागिनी को पार्श्वकुमार ने बाहर निकाला। अग्नि में जलते हुए दोनों को पानी और अग्नि के जीवों की हिंसा करके भी जीवित रखा। यह उपकार सांसारिक है।

२७. पार्श्वकुमार ने गृहत्याग करके जब कायोत्सर्ग किया, तब कमठ देव ने उन पर पानी बरसाकर उपसर्ग किया। उस समय पद्मावती देवी ने भगवान पार्श्वनाथ के नीचे सिंहासन बनाया और देव धरणेन्द्र ने उनके सिर पर छत्र किया। यह उपकार सांसारिक है।

२८. नाग नागिनी को नवकार मंत्र सुनाकर चारों शरण और त्याग प्रत्याख्यान कराए। उन शुभ परिणामों में मरकर वे नाग और नागिनी धरणेन्द्र और पद्मावती देव हुए। यह निश्चय ही मोक्ष का उपकार है।

२९. सुग्रीव का राम और लक्ष्मण ने उपकार किया तब सुग्रीव उनका सहयोगी–सखा बना। सीता की खबर लाकर रावण को मरवाया। इस प्रकार उसने दुविधा में प्रत्युपकार किया। यह उपकार सांसारिक है।

३०. कोई दुष्ट जीव जूं को मार रहा था। उसे समझाकर जूं को बचाया। उस जूं का जीव जब मनुष्य बना तो उस उपकारी का कोई झगड़ा उस जूं के जीव ने मिटा दिया। यह उपकार सांसारिक है।

३१. स्वामी के सामने सेवक मरकर अपने स्वामी को सकुशल बचा लेता है। तब स्वामी प्रसन्न होकर उसे पट्टा–परगना देता है और उसका इहलोक संबंधी कार्य सिद्ध कर देता है। यह उपाकर सांसारिक है।

३२. दोय इंदर आया कोणक री भीड़ी, कोणक रें साता कर दीधी तांम।
एक कोड़ असी लाख मिनखां नें मारे, कोणक रो सुधार्‍यों कांम।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

३३. एकीका जीव नें अनंती वार वचाया,
त्यां पिण इणनें अनंती वार वचायो।
आंमा सांहमां उपगार संसार ना कीधा,
त्यां सूं तो जीव री गरज सरी नही कायो।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

३४. हांती नेंतादिक देवे आंमा सांहमा, लाडू कोपरादिक देवें आमा सांहमा।
अथवा कोयक आघाइ पिण देवें, इत्यादिक छें अनेक संसार नां कांमा।
ओ तो उपगार संसार तणों छे॥

३५. संसार नों उपगार करें जिण सेती, कदा ते पिण पाछों करे उपगार।
ए तो उपगार एकीका जीवां सूं, कीधा छें अनंत अनंती वार।
आ सरधा श्री जिणवर भाखी॥

३६. संसार ना उपगार सब ही फीका, ते तों थोड़ा माहे विलें होय जावें।
संसार नां उपगार फक फीका छें, त्यां सूं मुगत तणा सुख कोय न पावें॥

३७. संसार तणा उपगार कीयां में,
केइ मूढ़ मिथ्याती धर्म वतावें।
त्यां श्री जिण मारग ओळखीयां विण,
मन मांनें ज्यूं गाळं रा गोळा चलावें॥

३८. जितला उपगार संसार तणा छें, जे जे करे ते मोह वस जांणों।
साधु तों त्यांनें कदे न सरावें, संसारी जीव तिण रा करसी बखांणों॥

३९. संसार तणा उपगार कीयां में, जिण धर्म रो अंस नही छें लिगार।
संसार तणा उपगार कीयां में, धर्म कहे ते तों मूढ़ गिंवार॥

३२. दो इंद्र कोणिक को सहयोग करने आए और उसे सुखी कर दिया। एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्यों को मारकर कोणिक का काम सुधार दिया। यह उपकार सांसारिक है।

३३. किसी एक जीव ने दूसरे जीव को अनंत बार बचाया है और उस जीव ने भी उसे अनंत बार बचाया है। ये सांसारिक उपकार परस्पर अनेक बार किए, परन्तु इनसे जीव का कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ, यह उपकार सांसारिक है।

३४. हांती न्योते परस्पर दिए जाते हैं। लड्डू, खोपरे परस्पर दिए जाते हैं। अथवा कोई अपनी ओर से (वापिस) भी देता है। इस प्रकार संसार के अनेक उपकार हैं, परन्तु यह उपकार सांसारिक है।

३५. सांसारिक उपकार जिस जीव के प्रति किया जाता है, कदाचित् वह भी प्रत्युपकार करता है। ये पारस्परिक उपकार तो एक-एक जीव से अनंतीबार किए जा चुके हैं। यह सिद्धान्त भी जिनेश्वर देव ने बताया है।

३६. संसार के उपकार सभी फीके-नीरस होते हैं। वे तो थोड़े में ही नष्ट हो जाते हैं। उन सांसारिक फीके उपकारों से कोई मुक्ति सुख को नहीं पा सकता।

३७. संसार के उपकार करने में कई मूर्ख, मिथ्यात्वी धर्म बताते हैं। वे जिनेश्वर देव के धर्म की पहचान किए बिना ही मनचाही गप्पें हांकते हैं।

३८. जितने सांसारिक उपकार हैं, वे सब मोहवश किए जाते हैं। साधु तो उनकी कभी सराहना नहीं करते। सांसारिक जीव ही उनका व्याख्यान करेंगे।

३९. सांसारिक उपकार करने में जैनधर्म का अंश भी नहीं है। सांसारिक उपकार करने में जो धर्म कहते हैं। वे मूढ़ और गंवार हैं।

४०. किण ही जीव नें खप करे नें बचायों,
किण ही जीव उपजाए नें कीधो मोटों।
जो धर्म होसी तों दोयां नें धर्म होसी,
जो तोटों होसी तो दोयां नें तोटों॥

४१. बचावण वाला विचें तो उपजावण वालों, सांप्रत दीसे उपगारी मोटो।
यांरो निरणों कीयां विण धर्म कहे छें, त्यांरो तो मत निकेवल खोटो॥

४२. बचावण वालों नें उपजावण वालों, अें तो दोनूं संसार तणां उपगारी।
एहवा उपगार करें आंमा सामा, तिणमें केवली रो धर्म नहीं छे लिगारी॥

४३. जीव नें जीव वचावें तिण सूं, बंध जाअें तिणरो राग सनेह।
ते परभव में ओ आय मिलें तों, देखत पांण जागें तिणसूं नेह॥

४४. जीव नें जीव मारें छें तिणसूं, बंध जाअें तिणसूं धेष विशेष।
ते परभव में उ आय मिलें तों, देखत पांण जागे तिणसूं धेष॥

४५. मित्री सूं मित्रीपणों चलीयों जावें, वेरी सूं वेरीपणों चलीयों जावें।
अें तों राग नें धेष कर्मा रा चाला, ते श्री जिण धर्म माहे नही आवे॥

४६. कोइ अणुकंपा आणी घर मंडावें, कोइ मंडता घर नें देवें भंगाय।
ओ प्रतख राग नें धेष उघाड़ों, ते आगेंलगा दोनूं चलीया जाय॥

४७. कोइ तो पेंला रा कांम भोग वधारें, कोइ कांम भोग री दे अंतराय।
ओ पिण राग नें धेष उघाड़ों, ते आगेंलगा दोनूं चलीया जाय॥

४८. कोइ पेंला रों धन गमीयो वतावें,
वले अस्त्रीयादिक पिण गमीया वतावें।
कोइ लाभ नें तोटो लोकां नें वतावें,
तिणसूं आगेंलगों राग चलीयों जावें॥

४०. किसी ने किसी जीव को प्रयत्न करके बचाया और किसी ने किसी जीव को जन्म देकर बड़ा किया। यदि धर्म होगा तो दोनों को होगा। यदि नुकसान होगा तो दोनों को होगा।

४१. बचाने वाले की अपेक्षा तो पैदा करने वाला प्रत्यक्ष ही बड़ा उपकारी है। इन बातों का निर्णय किए बिना ही धर्म कहते हैं, उनका अभिमत तो एकांत बुरा है।

४२. बचाने वाला और पैदा करने वाला ये दोनों तो संसार के उपकारी हैं। ऐसे जो उपकार और प्रत्युपकार करते हैं, उनमें किंचित भी केवली प्ररूपित धर्म नहीं है।

४३. जीव को जीव बचाता है तो उससे उसका राग बंधन हो जाता है। परलोक में यदि वह जीव कहीं मिल जाता है तो उसे देखते ही स्नेह जागृत हो जाता है।

४४. जीव को जीव मारता है, उससे उसके प्रति द्वेष का बंधन हो जाता है। परलोक में यदि वह कहीं मिल जाता है तो देखते ही उसके प्रति द्वेष जागृत हो जाता है।

४५. मित्र से मित्रता और शत्रु से शत्रुता भवान्तर में चलती जाती है। ये तो राग-द्वेष रूप कर्मों के प्रपंच हैं। जिनेश्वर देव के धर्म में यह नहीं आता।

४६. कोई व्यक्ति अनुकंपा करके किसी का घर मंडाता (विवाह कराता) है और कोई किसी के बनते घर को नष्ट कर देता है। यह तो प्रत्यक्ष ही राग और द्वेष है। जो आगे तक साथ चलते जाते हैं।

४७. कोई किसी के काम भोग की वृद्धि करता है और कोई किसी के काम भोग में अन्तराय देता है। यह भी प्रत्यक्ष राग और द्वेष है। जो आगे तक चलते जाते हैं।

४८. कोई किसी का खोया हुआ धन और स्त्री बता देता है। कोई लोगों को लाभ हानि बताता है। यह राग भाव भी आगे तक चलता जाता है।

४९. कोइ वेंदगरों करे करे लोकां रो, रोग गमाय नें जीवा वचावें।
ओं उपगार लोकां सूं कीधां, आगेंलगों राग चलीयों जावें॥

५०. कहि कहि नें कितरों एक कहूं, संसार तणा उपगार अनेक।
ग्यांन दरसण चारित नें तप विना, मोख तणों उपगार नही छें एक॥

५१. संवर ना वीस भेद कह्या जिण,
निरजरा तणा भेद कह्या छें बार।
अें बतीसोंइ बोल उपगार मुगत रा,
ओर मोख रों उपगार नही छें लिगार॥

५२. संसार नें मोख तणा उपगार,
समदिष्टी हुवें ते न्यारा न्यारा जांणें।
पिण मिथ्याती नें खबर पड़े नही सूधी,
तिणसूं मोह कर्म वस उंधी तांणें॥

५३. संसार नें मुगत रो मारग ओळखावण,
जोड़ कीधी छें खेरवा सहर मझारो।
संवत अठारें वरस चोपनें,
आसोज सुदि बीज नें सुकरवारो॥

४९. कोई व्यक्ति वैद्य वृत्ति कर रोग मिटाता है और उन्हें मरने से बचाता है। यह उपकार भी लोगों के साथ करने से तत्संबंधी राग भाव आगे तक चलता जाता है।

५०. कह-कहकर कितनों का वर्णन करूं। संसार के अनेक उपकार हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के बिना मोक्ष संबंधी एक भी उपकार नहीं है।

५१. जिनेश्वर देव ने संवर के बीस भेद बताए हैं, और निर्जरा के बारह भेद। ये बत्तीस भेद मोक्ष संबंधी उपकार के हैं। अन्य कोई भी मोक्ष का उपकार नहीं है।

५२. सम्यग् दृष्टि जीव संसार और मोक्ष के उपकार को पृथक्-पृथक् समझते हैं। परन्तु मिथ्यात्वी को उसकी सम्यग् समझ नहीं होती। इसलिए वह मोहकर्म के वश उल्टी खींचतान करता है।

५३. सं. १८५४, आश्विन शुक्ला द्वितीया, शुक्रवार के दिन संसार और मोक्ष के मार्ग की पहचान कराने के लिए खेरवा शहर में यह रचना की है।

दूहा

१. चोवीसमा जिनवर हुआ, महावीर विख्यात।
त्यांरी पहली वांणी निरफल गई, ते हुवो अछेरो इचरज वात॥

२. जंभीक गांम नें बाहिरें, सांम नामा करसणी रो खेत।
तिहां साल नामा विरख थों, गहर गंभीर पांन समेत॥

३. तिण साल विरख हेठें आवीया, भगवंत श्री विरधमांन।
वेंसाख सुदि दशम दिनें, उपनो केवल ग्यांन॥

४. केवल महोछव करवा भणी, तिहां देवता आया अनेक।
पिण मिनखां नें ठीक पड़ी नही, तिणसूं मिनख न आयो एक॥

५. देवता आगें वांणी वागरी, थित साचववा कांम।
कोइ साध श्रावक हुवों नही, तिणसू वांणी निरफल गई आंम॥

६. जो धन थकी धर्म नीपजें, ओ देवता पिण धर्म करंत।
वीर वांणी सफली करे, मन माहे पिण हरष धरंत॥

७. वरत पचखांण न हुवें देवता थकी, धन सूं पिण धर्म न थाय।
तिणसूं वीर वांणी निरफल गई, तिणरो न्याय सुणों चित ल्याय॥

ढाल : १२

(लय - जीव मोह अणुकंपा न आणिये.....)

भव करजों परख जिण धर्म री॥

१. जिन धर्म हुवें सोनइया दीया, तो देवता देता हाथोहाथ जी।
पूरत मनोरथ मन तणा, वीर वांणी निरफल न गमात जी।

दोहा

१. भगवान महावीर विश्वविख्यात चौबीसवें तीर्थंकर हुए। उनकी पहली देशना निष्फल गई, यह एक आश्चर्य हुआ।

२. जृंभिक गांव के बाहर श्यामाक नामक किसान जिसके खेत में एक पत्तों सहित सघन छायादार शाल वृक्ष था।

३. उस शाल वृक्ष के नीचे भगवान महावीर आए। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

४. केवल ज्ञान महोत्सव करने के लिए वहां अनेक देव आए, परन्तु मनुष्यों को ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए एक भी मनुष्य नहीं आया।

५. भगवान ने रीति निभाने के लिए देवों के बीच देशना दी। कोई भी व्यक्ति साधु और श्रावक नहीं बना, इसलिए वह देशना निष्फल गई।

६. यदि धन से धर्म निष्पन्न होता तो देवता भी कर लेते। भगवान की वाणी को सफल कर देते और मन में भी हर्षान्वित होते।

७. देवता से व्रत, प्रत्याख्यान नहीं होता। इसी प्रकार धन से भी धर्म नहीं होता। इससे भगवान महावीर की वाणी निष्फल गई। इसका न्याय चित्त लगाकर सुनें।

ढाल : १२

भव्यजनों! जैन धर्म की परीक्षा करें।

१. यदि सोनैया (स्वर्ण मुद्राएं) देने से जिन धर्म होता तो देवता तत्काल देते। अपने मनोरथ पूर्ण करते और भगवान् की वाणी को निष्फल नहीं गंवाते।

२. रत्न हीरा नें माणक पना, मन मांनें ज्यूं देवता देत जी।
वीर री वांणी सफल करे, देवता पिण लाहो लेत जी॥

३. धन दीयां हुवें धर्म जिण भाखीयों, देवता दांन दें दगचाल जी।
यूं कीयां वीर वांणी सफल हुवें, तों अछेरो नही हुवें तिण काल जी॥

४. धन धांनादिक लोकां नें दीयां, ए तों निश्चेंइ सावद्य दांन जी।
तिणमें धर्म नही जिणराज रो, ते भाख्यों छें श्री भगवांन जी॥

५. जो जीव वचायां जिण धर्म हुवें, ओं तों देवतां रें आसांन जी।
अनंता जीवां नें वचाय नें, वांणी सफल करंतां देवांन जी॥

६. असंख्याता समदिष्टी देवता, एकीको वचावत अनंत जी।
जो धर्म हुवें आघों न काढता, वीर री वांणी नें सफल करंत जी॥

७. साध श्रावक रों धर्म छें विरत में, जीव हणवा रा करें पचखांण जी।
ए धर्म देवतां थी हुवें नही, तिणसूं निरफल गई वीर वांण जी॥

८. जीवां नें जीवां वचावीयां हुवें, संसार तणों उपगार जी।
यूं तों सफल न हुवें वांणी वीर नी, धर्म रों नही अंस लिगार जी॥

९. असंजती नें जीवां नें वचावीयां, वले असंजती नें दीयां दांन जी।
इम कीयां वीर वांणी सफल हुवें, ओ तो देवतां रे पिण आसांन जी॥

१०. कुपातर जीवां नें वचावीयां, कुपातर नें दीधां दांन जी।
ओ सावद्य किरतब संसार नों, भाख्यो श्री भगवांन जी॥

११. उतराधेन अठावीसमें कह्यों, मोख ना मारग भाख्या च्यार जी।
बाकी सर्व कांमा संसार ना, सावद्य जोग व्यापार जी॥

२. हीरा, माणक एवं पन्ना आदि रत्न देवता स्वेच्छा से देते। भगवान की वाणी को सफलकर के देवता भी लाभ उठाते।

३. यदि धन देने से जिनभाषित धर्म होता तो देवता खुले हाथों धन देते। ऐसा करने से भगवान की वाणी सफल होती तो उस समय यह अछेरा (आश्चर्य) नहीं होता।

४. धन-धान्य आदि लोगों को देना, यह तो निश्चित ही सावद्य दान है। इसमें वीतराग का धर्म नहीं है, यह स्वयं भगवान ने कहा है।

५. यदि जीव बचाने से जिनधर्म होता हो तो वह देवताओं के लिए बहुत आसान था। अनंत जीवों को बचाकर भगवान की वाणी सफल कर देते।

६. असंख्य सम्यग् दृष्टि देव हैं। एक-एक देव अनंत जीवों को बचा लेता। यदि उसमें धर्म होता तो भगवान की वाणी को सफल करने में थोड़ा भी विलम्ब नहीं करते।

७. साधु और श्रावक का धर्म व्रत में है। वे जीव-हिंसा का प्रत्याख्यान करते हैं। यह धर्म देवताओं से नहीं होता इसलिए भगवान की वाणी निष्फल गई।

८. जीवों को जीवित रखने में संसार का उपकार होता है। इससे भगवान की वाणी सफल नहीं होती। इसमें जरा भी धर्म का अंश नहीं होता।

९. असंयति को जीवित रखने में और असंयति को दान देने में यदि भगवान की वाणी सफल होती तो देवों के लिए यह बहुत ही आसान काम था।

१०. कुपात्र जीवों को बचाना और कुपात्र को दान देना—यह संसार का सावद्य कर्तव्य है, ऐसा भगवान ने कहा है।

११. उत्तराध्ययन के अट्ठाईसवें अध्ययन में मोक्ष के चार मार्ग बताए हैं। शेष सब काम संसार के हैं और उनमें सावद्य योग का व्यापार है।

१२. जो धर्म हुवें सावद्य दांन में, असंजती नें वचायां हुवें धर्म जी।
तो निश्चें समदिष्टी देवता, ओ धर्म करे काटें कर्म जी॥

१३. कर्म कटे इण सावद्य धर्म सूं, एहवा सावद्य कांमा अनेक जी।
ते तो थोड़ा सा परगट करूं, ते सुणजों आंण ववेक जी॥

१४. मछ गलागल लग रही, सारा दीप समद्रां माहि जी।
मोटो मछ छोटा नें भखें, उणसूं मोटो उणनेंइ खाय जी॥

१५. जो उदम करें एक देवता, तो एक दिन में वचावें अनेक जी।
धर्म हुवें तो आघों काढें नही, ओ तो छें देवता में ववेक जी॥

१६. जीव वचायां अभयदांन हुवें, तो अभयदांन घणां नें देत जी।
धर्म जांणें जीव वचावीयां, देव भव में पिण लाहो लेत जी॥

१७. मछला वचावें एक दिन मझे, लाखा कोडाइ गिणिया न जाय जी।
इणमें धर्म हुवें जिण भाखीयों, तो देवता देवें मछला छुडाय जी॥

१८. मछ आगा सूं मछ छुडावीया, उणरे परती जांणें अंतराय जी।
तो अचित मछ उपजाय नें, उणनें पिण देवें खवाय जी॥

१९. जो धर्म हुवें मछलां नें वचावीयां, माछलां नें पोख्यां हुवें धर्म जी।
एहवों धर्म तों हुवें देवतां थकी, यूं कर कर काटें कर्म जी॥

२०. जो धर्म हुवें तों देवता, असंख्याता मछलां नें वचाय जी।
असंख्याताइ पोखें माछला, आलस पिण न करें ताहि जी॥

२१. प्रथवी पांणी तेउ वाउ मझे, जीव कह्या छें असंख्यात जी।
वनसपती में अनंत छें, यांनें पिण देव वचात जी॥

१२. यदि सावद्यदान में और असंयति को बचाने में धर्म होता तो निश्चित ही सम्यग् दृष्टि देवता उस धर्म को करके अपने कर्म काटते।

१३. इस सावद्य धर्म से यदि कर्म कटते तो ऐसे अनेक कार्य हैं। उनमें से कुछ कार्यों को मैं प्रगट करता हूं। विवेक जगाकर सुनें।

१४. समस्त द्वीप समुद्रों में मच्छ गलागल लग रही है। बड़ा मत्स्य छोटे मत्स्य को खा रहा है और उससे बड़ा उसे ही खा रहा है।

१५. यदि एक देवता उद्यम करे तो एक दिन में अनेक जीवों को बचा देता है। धर्म हो तो उस कार्य में वह विलम्ब नहीं करता। इतना तो देवता में विवेक है ही।

१६. जीव बचाने में यदि अभयदान होता है तो वह बहुतों को अभयदान दे देता। जीवों को बचाने में यदि धर्म जानता तो वह देव योनि में भी यह लाभ लेता।

१७. एक दिन में लाखों-करोड़ों एवं अगणित मत्स्यों को बचाया जा सकता है। यदि इसमें जिनभाषित धर्म होता तो देवता मत्स्यों को अवश्य बचाते।

१८. यदि मत्स्य के मुंह से मत्स्य को छुड़ाने में उसके अन्तराय लगे तो अचित्त मत्स्य को पैदाकर के उसको भी खिला देते।

१९. यदि मत्स्यों को बचाने में और उन्हें पोषण देने में धर्म होता तो वह धर्म तो देवता से भी संभव था। वह ऐसा करके कर्म काट लेता।

२०. यदि धर्म होता तो देवता असंख्य मत्स्यों को बचाता और असंख्य मत्स्यों का पोषण करता। इस काम में वह आलस्य भी नहीं करता।

२१. पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु इनमें असंख्य जीव कहे गए हैं। वनस्पति में अनंत जीव होते हैं। उनको भी देवता बचा लेता।

२२. तीन विकलिंद्री मिनख तिर्यंच नें, वचायां धर्म जांणें जो देव जी।
तो त्यानेंइ वचावण री खप करें, समदिष्टी देवता स्वमेव जी।।

२३. नाहर चीत्रादिक दुष्ट जीव छें, करें गायादिक री घात जी।
गायादिक नें तो खावा दें नही, त्यांनें पिण देव अचित खवात जी॥

२४. जीव जीव तणों भषण करें, त्यांने वचावें अचित्त खवाय जी।
जो यूं कीयां में धर्म नींपजे, तो देवता करें ओहीज उपाय जी॥

२५. अढ़ाइ दीप में मनखां तणें, घर घर आरंभ करें जांण जी।
ते तों कतल करें जीवां तणी, छ ही काय तणों घमसांण जी॥

२६. नित एकीका घर में जू जूओं, आरंभ हुवें दिन रात जी।
छेदन भेदन करें नीलोतरी, करें अनंत जीवां री घात जी॥

२७. दलणों पीसणों नें पोवणों, घर घर चूहलो धुकावें तास जी।
आवटकूटों करें छव काय नों, करें अनंत जीवां रो विणास जी॥

२८. एकीका समदिष्टी देवता, त्यांरी सक्त घणी छें अतंत जी।
अढ़ी दीप नों आरंभ मेट नें, वचावें जीव अनंत जी॥

२९. अढ़ी दीप तणा मंनखा भणी, भूखा त्रिषा न राखें कोय जी।
अचित अन्न पांणी नीपजाय नें, सगला नें करें तिरपत सोय जी॥

३०. विविध प्रकार ना भोजन करें, विविध प्रकार ना पकवांन जी।
खादिम सादिम विविध प्रकार ना, विविध प्रकारे शीतल पांन जी॥

३१. साग वंजन विविध प्रकार ना, फल नीलोती विविध प्रकार जी।
मनसा भोजन सगला मिनखां भणी, करावें देवता वार-वार जी॥

२२. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, मनुष्य और अन्य तिर्यञ्चों को बचाने में यदि देवता धर्म जानता तो सम्यग् दृष्टि देवता स्वयं उसको बचाने का प्रयत्न करता।

२३. बाघ, चीते आदि दुष्ट जीव गाय आदि पशुओं की घात करते हैं, उनको भी वह अचित्त वस्तु खिलाकर गाय आदि को खाने से बचा लेता।

२४. जीव जीव का भक्षण करता है। उसे अचित्त खिलाकर बचाया जा सकता है। यदि ऐसा करने में धर्म होता है तो देवता यही उपाय काम में लेता।

२५. अढ़ाई द्वीप में मनुष्यों के घर-घर में आरम्भ होता है। वे तो जीवों की हिंसा करते हैं। छह ही प्रकार के जीवों का संहार करते हैं।

२६. प्रतिदिन एक-एक घर में पृथक्-पृथक् हिंसात्मक प्रवृत्तियां (आरंभ) होती है। वनस्पति का छेदन-भेदन करते हैं। अनंत जीवों की घात करते हैं।

२७. घर-घर में दलना, पीसना, पोना (रोटी बनाना), चुल्हा जलाना आदि रूप में छहकाय के जीवों का आरंभ-सभारम्भ होता रहता है। अनंत जीवों का विनाश किया जाता है।

२८. कुछ सम्यग् दृष्टि देव होते हैं, उनके पास अपार शक्ति होती है। वे अढ़ाई द्वीप का आरम्भ(हिंसा) मिटाकर अनंत जीवों को बचा सकते हैं।

२९. देवता अढ़ाई द्वीप के मनुष्यों की भूख और प्यास को अचित्त अन्न, जल आदि पैदा करके सबको तृप्त कर सकते हैं।

३०-३१. विविध प्रकार के भोजन और विविध प्रकार के पकवान बना सकते हैं। विविध प्रकार के खादिम (मेवे) स्वादिम (ताम्बूल), विविध प्रकार के शीतल पेय। विविध प्रकार के शाक और विविध प्रकार के फल आदि से सब मनुष्यों को मनोज्ञ भोजन देवता अनेक बार करा सकते हैं।

३२. ठांम ठांम अचित पांणी तणा, कुंड भर भर राखें तांम जी।
वले भोजन विविध प्रकार ना, त्यांरा ढिगला करे ठांम ठांम जी॥

३३. च्यारूइ आहार अचित नीपाय नें, दीधां हुवें धर्म नें पुन तांम जी।
वले धर्म हुवें जीव वचावीयां, तो देवता करें ओहीज कांम जी॥

३४. देवता खांणों देवें मिनखां भणी, तो खेती रो आरंभ टल जाय जी।
वले गेंहणा कपड़ा देवें देवता, तो घणा जीव मरें नही ताहि जी॥

३५. घर हाट हवेली मेंहलायतां, इत्यादिक कमठांणा ताहि जी।
अें पिण निपजाय देवें देवता, तो अनंता जीव मरता रहि जाय जी॥

३६. ते छावणा लीपणा ना पड़ें, ते तों सुंदर नें सोभायमांन जी।
ते पिण दीसें घणा रलियांमणा, देवतां नें करतां आसांन जी॥

३७. एहवी करणी कीयां धर्म नींपजें, तो देवता आघो नही काढ़ंत जी।
आ करणी करे कर्म काट नें, कांम सिराडें देता चाढ़ंत जी॥

३८. दांन दीयां नें जीव वचावीयां, जो कर्म तणों हुवें सोख जी।
तो दांन दे जीव वचाय ने, देवता पिण जाअें मोख जी॥

३९. अनेरा नें दीयां पुन नीपजें, देवतां रे हुवें पुन रा थाट जी।
वले धर्म हुवें जीव वचावीयां, तो देव मोख जाए कर्म काट जी॥

४०. असंजती जीवां रों जीवणों, ते सावद्य जीतब साख्यात जी।
तिणनें देवे ते सावद्य दांन छें, तिणमें धर्म नही अंसमात जी॥

४१. धर्म हुवें तों सगळा मनखा तणें, रत्नां जड्या कर दे म्हेंल जी।
ते पिण थोड़ा में नीपजाय दें, देवतां नें करतां स्हेंल जी॥

३२. देवता स्थान-स्थान पर अचित्त पानी के कुंड भरकर रख सकते हैं और स्थान-स्थान पर विविध प्रकार के भोजन के ढ़ेर लगा सकते हैं।

३३. चारों प्रकार का अचित्त आहार निष्पन्न कर देने से यदि धर्म और पुण्य होता हो तथा जीवों को बचाने में धर्म होता हो तो समदृष्टि देवता यही काम करते।

३४. देवता यदि मनुष्यों को खाना देने लगे तो खेती करने का आरंभ टल जाए और यदि देवता आभूषण, वस्त्र देने लग जाए तो बहुत सारे जीव मरने से बच जाए।

३५. घर, दुकान, हवेली, महल आदि भी यदि देवता निर्मित कर दे तो अनंत जीव मरने से बच जाए।

३६. उन देव निर्मित मकानों को छाना और नीपना भी नहीं पड़ता है। वे तो सुन्दर एवं शोभायुक्त होते हैं और देवताओं के लिए उनको बनाना भी बहुत सरल है।

३७. ऐसी क्रिया करने से यदि धर्म होता हो तो देवता विलम्ब नहीं करते। इस क्रिया से कर्म काटकर अपना काम सिद्ध कर लेते।

३८. दान देने से और जीव बचाने से यदि कर्मों का क्षय होता हो तो दान देकर और जीव बचाकर देवता भी मोक्ष चले जाते।

३९. दूसरों को देने में पुण्य होता हो तो देवता के पुण्यों का ढ़ेर लग जाए और जीव बचाने में यदि धर्म होता तो देवता भी कर्म काटकर मोक्ष चले जाते।

४०. असंयति जीवों का जीवन प्रत्यक्ष सावद्य (पापमय) है। उन्हें जो दिया जाता है, वह सावद्य दान है। उसमें अंशमात्र भी धर्म नहीं है।

४१. धर्म होता हो तो सब मनुष्यों के लिए रत्न जटित महल बना दिए जाते। ये बस बहुत थोड़े में हो जाते, क्योंकि देवता के लिए ये सब आसान कार्य होते हैं।

४२. खाणों पीणों गहणा कपड़ादिक, ग्रहस्थ तणा सारा कांम भोग जी।
त्यांरी करें वधोतर तेहनें, बंधे पाप कर्म नों संजोग जी।।

४३. कांम नें भोग सारा ग्रहस्थ ना, दुख नें दुख री छें खांन जी।
त्यांनें किंपाक फल री ओपमा, उतराधेन में कह्यों भगवांन जी।।

४४. त्यांनें भोगवावें धर्म जांण नें, तिणरे बंधे छें पाप कर्म जी।
तिणमें समदिष्टी देवता, अंसमात्र न जांणें धर्म जी।

४५. केइ अग्यांनी इम कहें, श्रावक नें पोख्यां छें धर्म जी।
लाडू खवाय दया पलावीयां, तिणरा कट जाए पाप कर्म जी।।

४६. लाडूवां साटें उपवास बेला करें, तिणरा जीतब नें छें धिक्कार जी।
तिणनें पोखे छें लाडू मोल ले, तिणमें धर्म नही छें लिगार जी।।

४७. लाडूआ साटें पोसादिक करें, तिणमें जिन भाख्यों नही धर्म जी।
ते तो अह लोक रें अर्थे करें, तिणरो मूर्ख न जांणें मर्म जी।।

४८. धर्म हुवें तो समदिष्टी देवता, अचित लाडुआदिक नीपजाय जी।
वले पांणी पिण अचित नीपजाय नें, श्रावकां नें जिमावें ताहि जी।।

४९. जावजीव सगला श्रावकां भणी, लाडूआदिक अचित खवाय जी।
अढ़ी दीप तणा श्रावकां भणी, दया पलावें पोसा कराय जी।।

५०. त्यांनें आरम्भ करवा दें नही, त्यांनें कलपें ते देवता देत जी।
धर्म हुवें तों आघों नही काढ़ता, ओ पिण देवता लाहो लेत जी।।

५१. श्रावकां नें वस्त दें चावती, उणायत राखें नही काय जी।
धर्म हुवें तों आघों काढें नही, त्यांरें कुमीय न दीसें काय जी।।

४२. खाना, पीना, आभूषण, वस्त्र आदि सारे गृहस्थ के काम भोग है। जो उनकी वृद्धि करता है, उसके पाप कर्म के बंध का संयोग होता है।

४३. गृहस्थ के समस्त काम-भोग दु:ख है, दु:ख की खान है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान ने काम-भोग को किंपाक फल की उपमा दी है।

४४. उन काम भोगों का सेवन धर्म जानकर कराने में उसके पाप कर्म का बंध होता है। सम्यग् दृष्टि देवता उसमें अंशमात्र भी धर्म नहीं मानते।

४५. कुछ अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं, श्रावक का पोषण करने में धर्म है। लड्डू खिलाकर दया पलाने से पाप कर्म कट जाते हैं।

४६. लड्डुओं के बदले में जो उपवास, बेला करते हैं, उनके जीवन को धिक्कार है। लड्डू मोल लेकर जो उनका पोषण करते हैं, उसमें जरा भी धर्म नहीं है।

४७. लड्डुओं के बदले में पौषध करते हैं, उसमें जिनेश्वर देव ने धर्म नहीं कहा है। वे तो पौषध इहलोक के लिए करते हैं। मूर्ख आदमी इसका मर्म नहीं समझता।

४८. इसमें धर्म होता तो सम्यग् दृष्टि देवता अचित्त लड्डु एवं अचित्त पानी पैदा करके श्रावकों को जी भरकर खिलाते।

४९. यावज्जीवन तक अढ़ाई द्वीप के सभी श्रावकों को अचित्त लड्डु आदि द्रव्य खिलाते और पौषध कराकर दया पलाते।

५०. उन्हें हिंसा आदि आरंभ नहीं करने देते तथा श्रावकों के लिए जो कल्पनीय होता वह देवता लाकर देते। यदि इसमें धर्म होता तो उससे देवता नहीं चूकते, खूब लाभ उठाते।

५१. यदि धर्म होता तो देवता श्रावकों को मन चाही वस्तुएं देते। किसी प्रकार की कमी नहीं रखते और न ऐसा करने में विलम्ब ही करते। उनके किसी प्रकार की कमी नहीं दिखाई देती।

५२. जो धर्म हुवें श्रावक नें पोषीयां, तो देवता पिण करें ओ धर्म जी।
असंख्याता श्रावकां नें पोष नें, काटता निज पाप कर्म जी॥

५३. असंख्याता द्वीप समुद्र में, असंख्याता श्रावक छें तांम जी।
त्यांनें पोषें समदिष्टी देवता, जो जांणें धर्म नों कांम जी॥

५४. श्रावक रो खांणों पेंणों सर्वथा, इविरत में कह्यों छें आंम जी।
तिणसूं समदिष्टी देवता, एहवों किम करसी कांम जी॥

५५. सक्रइंद्र नें इसांणइंद्र छें, तिरछा लोक तणा सिरदार जी।
हाल हुकम छें सगलां उपरे, असंख्याता दीप समुद्र मझार जी॥

५६. मछ गलागल लग रही, सारा द्वीप समुद्रां माहि जी।
जो धर्म हुवें जीव वचावीयां, तो इंद्र थोडा में देवें मिटाय जी॥

५७. भगवंत कह्यों हुवें इंद्र नें, जीव वचायां धर्म होय जी।
तो दोनूं इंद्र जीव वचावता, आलस नही करता कोय जी॥

५८. मछ मछां आगा सूं छोडाय नें, मछां नें देता जीवा वचाय जी।
त्यांनें पिण भूखा नही राखता, अचित मछ कर देता खवाय जी॥

५९. यूं कियां जिन धर्म नीपजें, तों भगवंत सीखावत आप जी।
वले आगना देता तेहनें, वले चोड़ें करता आहीज थाप जी॥

६०. जीव नें जीवा वचावीयां, ओ तों संसार नों उपगार जी।
तठे जिन आगना जाबक नही, धर्म पिण नही छें लिगार जी॥

६१. छ काय रा सस्त्र वचावीयां, छ काय रों वेरी होय जी।
त्यांरो जीतब पिण सावद्य कह्यों, त्यांनें वचाया धर्म न कोय जी॥

५२. यदि श्रावक का पोषण करने में धर्म होता तो देवता भी यह धर्म करते। असंख्य श्रावकों का पोषण करके अपने पाप कर्म को काटते।

५३. असंख्य द्वीप-समुद्रों में असंख्य श्रावक रहते हैं। सम्यग् दृष्टि देवता यदि धर्म का काम समझते तो उनका अवश्य पोषण करते।

५४. श्रावक का खाना-पीना सब अव्रत में कहा गया है। इसलिए समदृष्टि देवता ऐसा कार्य क्यों करेंगे?

५५. तिर्यक् लोक के दो मालिक हैं-शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र। उनका आदेश असंख्य द्वीप-समुद्रों में सर्वोपरि है।

५६. सब द्वीपों और समुद्रों में जीव जीव को खा रहे हैं। यदि जीव बचाने में धर्म हो तो इन्द्र उस मच्छ गलागल को थोड़े से प्रयत्न से ही मिटा देता।

५७. भगवान महावीर ने इन्द्र को कहा होता कि जीव बचाने से धर्म होता है तो दोनों इन्द्र जीवों को बचाते। थोड़ा भी आलस्य नहीं करते।

५८. मत्स्य के मुंह से मत्स्य को छुड़ाकर उसे जीवित बचा लेते और उन बड़े मत्स्यों को भी भूखा नहीं मारते। निर्जीव मत्स्यों का निर्माण कर उन्हें खिला देते।

५९. ऐसा करने से यदि जिन धर्म होता तो भगवान स्वयं ऐसा सिखला देते, इन्द्र को ऐसी आज्ञा देते तथा प्रत्यक्ष रूप में यही स्थापना करते।

६०. जीव को जीवित बचाना यह तो सांसारिक उपकार है। जहां जिनेश्वर देव की किंचित भी आज्ञा नहीं है वहां जरा भी धर्म नहीं है।

६१. षट्कायिक जीवों के शस्त्ररूप जीव को बचाने से वह षट्कायिक जीवों का वैरी हो जाता है। उनका जीना सावद्य है। उनको बचाने में कोई धर्म नहीं है।

६२. असंजती रा जीवणा मझे, धर्म नही अंसमात जी।
वले दांन देवें छें तेहनें, ते पिण सावद्य साख्यात जी॥

६३. दांन देवों नें जीव वचायवों, ओं तों देवता नें आसांन जी।
यूं कीयां धर्म हुवें तो देवता, जाअें पांचमी गति परधांन जी॥

६४. जीव वचावणो नें सावद्य दांन ने, ओळखायो पुर सहर मझार जी।
संवत अठारें वर्ष सतावनें, काति विद चोदस नें सुक्रवार जी॥

६२. असंयति जीवों के जीने में अंशमात्र भी धर्म नहीं है और उन जीवों को जो दान दिया जाता है वह भी साक्षात् सावद्य है।

६३. दान देना और जीव बचाना ये दोनों ही कार्य देवताओं के लिए आसान है। ऐसा करने में धर्म होता तो देवता भी प्रधान-पंचमगति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते।

६४. सं १८५७, कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी शुक्रवार के दिन जीव बचाना और सावद्य दान—इन दोनों की पहचान पुर शहर में बताई।

आचार्य भीखण : एक परिचय

*** जन्म**

संवत् १७८३ आषाढ़ शुक्ला १३

कंटालिया (राजस्थान)

सन् १७२६, जुलाई १ मंगलवार

*** द्रव्य दीक्षा**

संवत् १८०८, मार्गशीर्ष कृष्णा १२

बगड़ी (राजस्थान)

सन् १७५१, नवम्बर ३, रविवार

*** बोधि प्राप्ति**

संवत् १८१५, राजनगर (राजस्थान)

सन् १७५८

*** अभिनिष्क्रमण**

संवत् १८१७, चैत्र शुक्ला ९

बगड़ी (राजस्थान)

सन् १७६०, मार्च २३, रविवार

*** भाव दीक्षा**

संवत् १८१७, आषाढ़ पूर्णिमा

केलवा (राजस्थान)

सन् १७६०, जून २८, शनिवार

*** प्रथम मर्यादा पत्र**

संवत् १८३२, मिगसर कृष्णा ७

बिठोड़ा (राजस्थान)

सन् १७७५, नवम्बर १४, मंगलवार

*** अन्तिम मर्यादा पत्र**

संवत् १८५९, माघ शुक्ला ७

सन् १८०३, जनवरी २९, शनिवार

*** महाप्रयाण**

संवत् १८६०, भाद्रपद शुक्ला १३

सिरियारी (राजस्थान)

सन् १८०३, अगस्त ३०, मंगलवार

*** ग्रन्थ रचना**

३८ हजार पद्य प्रमाण

आचार्य भिक्षु की रचनाएं

- श्रद्धा री चौपई
- अनुकंपा री चौपई
- नवपदार्थ
- आचार री चौपई
- शील री नवबाड़
- विरत अविरत री चौपई
- निन्व री चौपई
- मिथ्याती री करणी री चौपई
- निषेषां री चौपई
- जिनाग्या री चौपई
- पोतियाबंध री चौपई
- कालवादी री चौपई
- इन्द्रियवादी री चौपई
- परजायवादी री चौपई
- टीकम डोसी री चौपई
- एकल री चौपई
- मोहणी करमबंध री ढाल
- दशवें प्राछित री ढाल
- जिण लखणा चारित आवे न आवे तिण री ढाल
- सूंस भंगावण रा फल री ढाल
- गणधर सिखावणी
- संघकाजे चक्रवर्ती री ढाल
- सांमधर्मी सांमद्रोही री ढाल
- श्रावक ना बारे व्रत
- समकित री ढालां
- उरण री ढाल
- दान री ढालां
- वैराग री ढालां
- जुआ री ढाल
- तात्त्विक ढालां
- ब्याहुलो
- विनीत अविनीत री चौपई
- विनीत अविनीत री ढाल
- अविनीत रास
- निन्व रास
- भरत री चौपई
- जम्बू चरित
- धन्ना अणगार री चौपई
- गोशाला री चौपई
- चेड़ा कोणक री सिध
- चेलणा चोढ़ालियो
- सुदर्शन चरित
- नंद मणिहारो रो बखांण
- सास बहू रो चोढालियो
- तामली तापस रो बखांण
- उदाई राजा रो बखांण
- सुबाहु कुमार रो बखांण
- जिणरिख जिनपाल रो बखांण
- मृगा लोढ़ा रो बखांण
- सकडाल पुतर रो बखांण
- तेतली प्रधान रो बखांण
- पुंडरिक कुंडरिक रो बखांण
- उंवरदत्त रो बखांण
- द्रोपदी रो बखांण
- मल्लीनाथ रो बखांण
- थावच्चापुतर रो बखांण
- लिखतां रो संग्रह
- भिक्षु पृच्छा
- तीन सौ छह बोलां री हुण्डी
- १८१ बोलां री हुण्डी
- जीवादि पदार्थ ऊपर पांच–भावां रो थोकड़ो
- उदय–निष्पन्नादिक रा बोलां ऊपर पांच भावां रो थोकड़ो
- तेरा द्वार
- खुली चर्चा प्रश्नोत्तर
- पांच भावां री चरचा
- जोगां री चरचा
- आश्रव संवर री चरचा
- जिनाज्ञा री चरचा
- कालवादी री चरचा
- इन्द्रियवादी री चरचा
- द्रव्यजीव भावजीव री चरचा
- निषेपां री चरचा
- टीकम डोसी री चरचा